शचीरानी गुर्टू

महादेवी वर्मा

काव्य-कला और जीवन-दर्शन

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

महादेवी वर्मा

काव्य-कला और जीवन-दर्शन

महादेवी वर्मा

काव्य-कला और जीवन-दर्शन

सम्पादिका

शचीरानी गुर्टू

1963

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

MAHADEVI VARMA
Edited by
Sachi Rani Gurtu
Rs. 6.50

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज़ खास, नई दिल्ली
माई हीरां गेट, जालन्धर
चौड़ा रास्ता, जयपुर
बेगमपुल रोड, मेरठ
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
महानगर, लखनऊ-6

मूल्य : छः रुपए पचास नए पैसे
तीसरा संस्करण : 1963

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

अपने दृष्टिकोण से

साहित्य और कलानुरागियों को महादेवीजी से प्राय: शिकायत रही है कि उनके कृतित्व में सामाजिक-संघर्ष, हलचल एवं वैषम्य के घात-प्रतिघातों की सीधी और निर्बाध अभिव्यक्ति न होकर उनके अपने ऐकांतिक जीवन की पूर्णता के उत्प्रेरक चित्र हैं जो एक खास क्षितिज पर हल्की, धूमिल रेखाओं में रूपायित होकर ढले हैं। जहाँ तक महादेवीजी की कविता का प्रश्न है, बात कुछ हद तक सही कही जा सकती है। जीवन के बाह्य विरोधी वैविध्य में भीतर ही भीतर कुंठित रहकर और पीड़ा को आत्मसात् करके वे जिस अवचेतन स्थिति में अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त होती रहीं वह स्पष्ट और बहिर्गत न होकर बहुत कुछ कल्पनामय और मनोमय हो उठा। स्वच्छंद विचारधारा और नैतिक आतंक से सहम कर ज्यों-ज्यों उनकी प्रकृत भावनाओं का संयम और गोपन होता गया, त्यों-त्यों स्थूल के प्रति उनका आग्रह कम होकर एक अस्पष्ट कौतूहल में परिणत होता गया और वे छायावाद की झिलमिल छाया में जैसे आँखमिचौनी-सी खेलती रहीं।

"उसमें हँस दी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँखमिचौनी।"

वस्तुत: कविता में महादेवी के अंत:स्वर प्रकृत रूप में कम ही झंकृत हुए हैं। कवयित्री की तरल, सूक्ष्म, कोमल अनुभूतियाँ जीवन के जिस सत्य को लेकर प्रकट हुईं, वे चिंतन तक ही सिमटकर रह गईं, कर्म की प्रत्यक्ष प्रेरणा न दे सकीं। जिस सीमा-रेखा के भीतर जीवन अनेक बाधाओं से घिरा है उसे लाँघकर भीतर आने में कवयित्री को जैसे भय लगता है। जीवन की चाह जगते ही वह सहमकर ठिठक जाती है और स्थूल से उठकर सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति में प्रश्रय पाती है।

"कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित?
स्वर्ण - स्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में
कौन तुम मेरे हृदय में?"

महादेवीजी को जीवन में पीड़ा की बड़ी ही तीव्र अनुभूति हुई है, किन्तु इस

पीड़ा में भी वे एक प्रकार का आनन्द अनुभव करती हैं। उनकी कविता की अनेक पंक्तियाँ बतलाती हैं कि वे पीड़ा से छुटकारा नहीं चाहतीं, वरन् अन्य किसी भी वस्तु से वह उन्हें अधिक प्रिय है।

प्रश्न है, यह पीड़ा की अनुभूति कैसी—जिससे छुटकारे की कांक्षा न की जाए। उनका अभाव भरा-सा लगता है और रोने की इच्छा रखते हुए भी उनके प्राणों में पुलक है। जिस जिज्ञासा के समाधान में हम कहेंगे कि उनकी पीड़ा भावना की तरलता में डूबी अन्तस्थ ऊहापोह की सहज तृप्ति अथवा रागात्मक द्रवण है जिसमें उतनी मार्मिकता और विह्वलता नहीं है जितनी पीड़ा के मूल में अपेक्षित है। पीड़ा कवयित्री के मन की वह मधुर स्निग्धता है, जो गीतों में उभर कर किन्हीं अस्पष्ट उमंगों और धुँधले आवेगों की धूमिलता में फैल जाती है, जिसे ठीक-ठीक पकड़ा नहीं जा सकता, आँका नहीं जा सकता। शब्दों के माध्यम से इतनी सूक्ष्म मन:स्थिति को व्यक्त कर पाना सम्भव ही कैसे है, अतएव उनकी अभिव्यक्ति में वह दंशन और दाह नहीं है जो अपने अस्तित्व से घबराकर मध्याह्न की प्रखरता को ज्योत्स्ना की शीतलता और भीतर के कोलाहल को शान्ति में परिणत कर देने की ख्वाहिश करे। वे तो अपनी पीड़ा, छटपटाहट और बेचैनी को ज्यों का त्यों अक्षुण्ण बनाए रखना चाहती हैं।

"मैं पुलकाकुल,
पल-पल जाती रस-गागर ढुल,
प्रस्तर के जाते बन्धन खुल,
लुट रहीं व्यथा निधियाँ नव-नव।"

पीड़ा महादेवी के जीवन की सक्रिय पूरक है। उसमें वह व्यापक रसात्मक आवेग है (कचोट नहीं) जो एक छोर से दूसरे छोर तक संव्याप्त होने की क्षमता रखती है। इस स्थिति में कवयित्री कभी-कभी इतनी ऊँची सतह पर उठ जाती है कि पीड़ा, वेदना और विवशता में उसकी भावनाओं का तादात्म्य सा हो जाता है।

प्रेम तत्त्व का प्राधान्य होने से महादेवी के काव्य में विकास की एक स्पष्ट अंतर्धारा दीख पड़ती है। दृश्यमान पदार्थों के वास्तविक और बाह्य रूपों की अवहेलना कर वे अपने भीतर के सौन्दर्य को उपलब्ध करने में सदैव सचेष्ट हैं। भौतिक-जगत् की कदर्यता जैसे उनकी दृष्टि, मन और प्राणों को स्पर्श तक नहीं करती। उषा की आलोकभरी आभा में कभी उनके प्राण गा उठते हैं और कभी संध्या की अवसादमयी घनता में सिहर उठते हैं। उनके छन्दोमय अन्तर में शिशु का सा निरीह सारल्य है जो इन्द्रधनुष की रंजित शोभा के असंख्य बुलबुले आसमान में बनते-मिटते देखता है और जिसके मन की विचित्र उमंग, कौतुक की रंगीनी और आनन्द की पुलक कभी श्रांत होना नहीं जानती। दूर—बहुत दूर—असीम शून्य का मूक मौन जब कवयित्री के मन-क्षितिज पर उदभासित हो उठता

है और किसी भी तरह स्पष्ट-अस्पष्ट रूप में वे उसे अपनी कल्पना और सूझ के भाव-डोरों से बाँध रखना चाहती हैं तो उनके अन्तस्थ के किसी सुदूर, भीतरी कोने में उदासी उभर आती है और एक हल्का-सा, अजीब-सा बोझ छा जाता है। नीरव, एकान्त वातावरण में सृष्टि के विराट् और चरम सुन्दर रूप को निरखने की अदम्य चेष्टा में वे खोई-सी अवाक् बैठी रह जाती हैं और घनी गहरी वेदना में उन्हें एक चुटीली मिठास का अनुभव होता है। कभी उनका मन किसी अज्ञात वस्तु के साक्षात्कार की लालसा में तड़प उठता है, कभी जीवन की बृहत्तम शून्यता उन्हें अखरने लगती है, और कभी अन्तर-पट पर किसी निर्मम की चाह मचल उठती है, अधरों पर अनुराग बिखर जाता है और नयनों में विरह की छाया छट-पटा उठती है :

"अपनी लघु निःश्वासों में
अपनी साधों की कम्पन,
अपने सीमित मानस में
अपने सपनों का स्पन्दन।
मेरा अपार वैभव ही
मुझसे है आज अपरचित
हो गया उदधि जीवन का
सिकता-कण में निर्वासित!"

किन्तु कवयित्री की सृजन-शक्ति का यह अपरचित अपार वैभव कभी चुक नहीं पाता, उसकी अभिव्यंजना का आवेग कभी थकना नहीं जानता। उसके भीतर कला साधना की ज्योति उत्तरोत्तर दीप्त होती रही है और इसी आलोक ने उसे बाहर के अँधेरे की उपेक्षा करने की सामर्थ्य दी है।

महादेवी के काव्य में एक स्वप्निल मानसिक वातावरण और व्यथा का सम्मोहन है। प्रणयोन्माद और अंतः सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में उनके भाव जितने ही अन्तरगूढ़ होते हैं, उनकी भावाभिव्यंजना की कला भी उतनी ही सघन और दार्शनिक रहस्यात्मकता से आच्छन्न होती गई है। कौतूहल के बाद जिज्ञासा आई, फिर रंजित कल्पना और अन्ततः कोमलतम सूक्ष्म सौन्दर्य-भावना। उनके अन्तरतम में सहेजे उदात्त सपने धुँधली-सी, मीठी-मीठी, मादक उदासी में भरकर कविता में उभरे। माधुर्य की गूढ़ अनुभूति में सौन्दर्य का उनका आकर्षण उत्तरोत्तर अन्तर्मुखी होता गया और वास्तविक अनुभूतियों के गूढ़तम स्तरों में छिपी आन्तरिक उथल-पुथल को उन्होंने विविध रंगों, ध्वनियों और असाधारण लयमयता में झंकृत किया। किन्तु उनकी भाव-धारा में करुण उच्छ्वास, अश्रु और बेबसी की ग्रन्थि है। जीवन के अत्यन्त निकट होकर उनकी दृष्टि यथार्थता की ठोस भूमि पर नहीं, कोमल वस्तु पर टिकती है। उनका प्यार छलकता है, पर रुके जल-संघात के सदृश। उनके भीतर कुछ दुराव-सा है जो उन्हें यथार्थ के निकट आने से रोकता है और यह दुराव

अनजाने में ही क्रमशः बढ़ता गया है। भीतर दर्द है, कुछ अवरुद्ध-सा घुमड़ता हुआ उभरता भी है लेकिन कवयित्री उसे हवा में उड़ाना नहीं चाहती। वह दूरी का स्वाँग-सा करती हुई आध्यात्मिक-पाश में उसे जकड़ लेना चाहती है।

निम्न पंक्तियों में भाव-गुम्फन देखिए :

"रजत-रश्मियों की छाया में धूमिल घन-सा वह आता,
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत वहा जाता।
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सब के बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण-काव्य वह लिख जाता।"

यों महादेवी के काव्य में एक स्वतन्त्र दर्शन की नियोजना भी है, जो निराकार उपासना, सूफीवाद और बौद्ध दर्शन से प्रभावित है, किन्तु उसे भी एक बौद्धिक प्रयोग ही समझना चाहिए। जहाँ भाव की प्रमुखता में तथ्य दब जाता है, वहाँ व्यक्ति-जीवन के प्रसार में गहरी लीकें खिच जाती हैं। महादेवी के काव्य की दार्शनिक गूढ़ता अत्यधिक कल्पनाशीलता, सूक्ष्म चिन्तन, संशयात्मक बुद्धि और उनकी अपनी अनिर्दिष्ट स्थिति से उत्पन्न हुई है। वह अन्तःप्रकृति की ओर से नहीं, बाह्य-प्रकृति की ओर से है। इसलिए उसमें उनका निजत्व डूबता नहीं, वह जैसे अपार्थिव, अज्ञात आलम्बन के सहारे दूर टँगा-सा रह जाता है।

महादेवी के काव्य में कहीं-कहीं अव्यक्त, अमानवीय स्वर सुन पड़ते हैं। निर्वाक, स्तब्ध, वीतराग स्वर, स्वच्छन्द होकर भी अन्तप्रेरणा के असीम आदेशों में निगड-बद्ध है। किसी अज्ञात इच्छा से विह्वल उनके समस्त कृतित्व पर धुँधली-सी छाया पड़ी है। 'दीपशिखा' में जहाँ कवयित्री ने गीतों के साथ तूलिका का भी प्रयोग किया है, कल्पना की सूक्ष्मताओं के साथ रंगों का भी अभूतपूर्व सामंजस्य हो गया है। उसमें काव्य और कला का नवीन रूपान्तर है, कला की आत्मा का सजीव स्फुरण है और सूक्ष्म रंगों की कलामयता के साथ उनके भाव-गाम्भीर्य की अभिनव अभि-व्यक्ति है। चित्रों में अगणित संकल्प भर दिये गए हैं और कवयित्री की कला की अन्तरंग साधना गीतों के प्राणों में मुखर हो उठी है।

किन्तु सच्चे अर्थों में साधक वे हैं जो साधना की निविड़ता में बाह्य साधनों के ऊपर उठ जाते हैं। मानवीय अस्तित्व अपने भीतर चाहे कितनी ही गहराइयाँ और चाहे कितनी ही महत्ताएँ सन्निहित किये हुए क्यों न हो, इस प्रकार की प्रेम-योग-स्थिति सहज सम्भाव्य नहीं है। स्वयं महादेवीजी 'आधुनिक कवि' की भूमिका में लिखती हैं : "चिन्तन में हम अपनी बहिर्मुखी वृत्तियों को समेटकर किसी वस्तु के सम्बन्ध में अपना बौद्धिक समाधान करते हैं, अतः कभी-कभी वह इतना ऐकांतिक होता है कि अपने से बाहर प्रत्यक्ष जगत के प्रति हमारी चेतना पूर्ण रूप से जागरूक ही नहीं रहती और यदि रहती है तो हमारे चिन्तन में बाधक होकर।"

बौद्धिक होने के साथ-साथ महादेवी के दार्शनिक-चिन्तन में रस-सिद्धता अधिक है। उनके काव्य में रागात्मक उद्वेलन है, आत्मानुभूति नहीं। भिन्न-भिन्न रंगों के धूमिल आलोक में आध्यात्मिक-तत्त्व तिरोहित हो गए हैं और अदृष्ट बिन्दु पर उनकी भावनाएँ जैसे जड़ हो गई हैं, एकदम सीमित। उनमें फैलाव नहीं है, नारी के सरल, कोमल पाश को तोड़कर वे मानो आगे नहीं बढ़ पातीं।

किन्तु इसके ठीक विपरीत महादेवीजी अपने गद्य में उस रूप का निदर्शन कराती हैं, जिसमें केवल स्वात्म को गौरव और अनन्तता प्रदान करने वाले उपकरण ही नहीं, प्रत्युत हृदय को हिलकोरने वाली प्रेरणा-प्रदायिनी शक्ति है। वे अपने व्यक्तित्व को छोटे-से-छोटे व्यक्तियों में लय करके अपने दिल और दूसरों के दिलों की बात सुनने और सुनाने को तैयार हैं। उनका गद्य कविता की भाँति सौन्दर्य के भुलावे में डालकर हमें जीवन से दूर नहीं ले जाता, वह तो हमारी शिराओं में चेतना भरकर हमें यथार्थ जीवन में झाँकने की प्रेरणा प्रदान करता है। वहाँ साधना और व्यामोह नहीं है, जीवन के परस्पर पूरक चित्र हैं। आत्मा का सत्य शब्द-शब्द, पंक्ति-पंक्ति में सजीव होकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है :

'आज भी जब कोई मेरी रंगीन कपड़ों के प्रति विरक्ति के सम्बन्ध में कौतुक-भरा प्रश्न कर बैठता है तो वह अतीत फिर वर्तमान होने लगता है। कोई किस प्रकार समझे कि रंगीन कपड़ों में जो मुख धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगता है कि वह कितना करुण और कितना मुर्झाया हुआ है। कभी-कभी तो वह मुख मेरे सामने आने वाले सभी करुणक्लान्त मुखों में प्रतिबिम्बित होकर मुझे उनके साथ एक अटूट बन्धन में बाँध देता है।'

'स्मरण नहीं आता वैसी करुणा मैंने कहीं और देखी है। खाट पर बिछी मैली दरी, सहस्रों सिकुड़न-भरी मलिन चादर और तेल के कई धब्बे वाले तकिए के साथ मैंने जिस दयनीय मूर्ति से साक्षात् किया उसका ठीक चित्र दे सकना सम्भव नहीं है। वह अठारह से अधिक की नहीं जान पड़ती थी—दुर्बल और असहाय जैसी। सूखे होंठ वाले, साँवले पर रक्त-हीनता से पीले मुख में आँखें ऐसे जल रही थीं जैसे तेलहीन दीपक की बत्ती।"

'मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबन्ध किये हुए ही उन बेचारों को सफाई का महत्त्व समझाते-समझाते थका डालने की मूर्खता की। दूसरे इतवार को सब जैसे के तैसे ही सामने थे—केवल कुछ गंगाजी में मुँह इस तरह धो आए थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ ने हाथ-पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग जोड़े हुए से लगते थे और कुछ 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए कीट से मैले फटे कुरते घर ही छोड़कर ऐसे अस्थिपंजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे जिसमें उनके प्राण 'रहने का आश्चर्य है गए अचम्भा कौन' की घोषणा करते जान

पड़ते थे।' ('अतीत के चलचित्र' पृष्ठ 28, 63, 74)

'धूल से मटमैल सफेद किरमिच के जूते में छोटे पैर छिपाए, पतलून और पायजामे का सम्मिश्रित परिणाम जैसा पायजामा और कुरते तथा कोट की एकता के आधार पर सिला कोट पहने, उघड़े हुए किनारों से पुरानेपन की घोषणा करते हुए हैट से आधा माथा ढके, दाढ़ी-मूँछ विहीन दुवली नाटी जो मूर्ति खड़ी थी वह तो शाश्वत चीनी है। उसे सबसे अलग करके देखने का प्रश्न जीवन में पहली बार उठा।' ('स्मृति की रेखाएँ' पृष्ठ 22)

आश्चर्य है कि महादेवीजी, जिन्होंने अपनी रंजित कल्पना द्वारा कविता में मनोज्ञ सृष्टि करके असौन्दर्य को बहिष्कृत या गौण सिद्ध कर दिया था, वे गद्य में सचेत प्रयत्न द्वारा जीवन को एक पूर्णतर एवं दृढ़कर धरातल पर प्रतिष्ठित कर सकी हैं। वहाँ उन्होंने कलाकार की उस समृद्ध जीवन-दृष्टि को विकसित किया है जो दृढ़ वास्तविकताओं और कल्पनामूल सम्भावनाओं के साम्य-वैषम्य की विभाजक सीमा मिटा देती है। आन्तरिक रागातिरेक को उन्होंने अपने तक ही सीमित नहीं रखा, वरन् जिस-तिस व्यक्तित्वों और जीवन की अनन्त जटिल वास्तविकताओं में लय कर दिया है। 'अतीत के चलचित्र' में घीसा के गाँव की गँवई नारियों का कितना सजीव दृश्य चित्रित किया गया है, देखिए :

'दूर पास बसे हुए, गुड़ियों के बड़े-बड़े घरौंदों के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुते, कुछ जीर्ण-शीर्ण घरों से स्त्रियों का झुण्ड पीतल-ताँबे के चमचमाते मिट्टी के नए लाल और पुराने भदरंग घड़े लेकर गंगाजल भरने आता है, उसे भी मैं पहचान गई हूँ। उनमें कोई बूटेदार लाल, कोई निरी काली, कोई कुछ सफेद और कोई मैल और सूत में अद्वैत स्थापित करने वाली, कोई कुछ नई और कुछ छेदों से चलनी बनी हुई धोती-पहने रहती है। किसी की मोम लगी पाटियों के बीच में एक अँगुल चौड़ी सिंदूर-रेखा अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी के कड़वे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा बनी हुई छोटी-छोटी लटें मुख को घेरकर उसकी उदासी को और भी केन्द्रित कर देती है। किसी की साँवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रहकर हीरे-से चमक जाते हैं और किसी के दुर्बल काले पहुँचे पर लाख की पीली मैली चूड़ियाँ काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की मोटी लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने गिलट के कड़े-युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न-सा करती रहती है और कोई चाँदी के पछेली-ककना की झंकार के साथ ही बात करती है। किसी के कान में लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी-कभी झाँक भर लेती है और किसी के ढारें लम्बी ज़ंजीर से गला और एक गाल करती रहती है। किसी के गुदना गुदे हुए गेहुँए पैरों में चाँदी के कड़े सुडौलता की परिधि से लगते हैं और किसी की फैली उँगलियों और सफेद एड़ियों के साथ मिली हुई स्याही राँगे और काँसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियाँ बना देती हैं। ('अतीत के चलचित्र' पष्ठ 76)।

निःसन्देह, मानव जीवन इतना बिखरा हुआ और विविधता से पूर्ण है कि उसे देखने-समझने के लिए अशेष चक्षुओं की आवश्यकता है। महादेवीजी ने अतीत की अनगढ़, सामंजस्यहीन, बिखरी हुई स्मृतियों को सरस विश्वास के सुकोमल धागे में पिरोया है। उन्होंने जीवन में जो कई मोड़, उथल-पुथल, आवर्तन-प्रत्यावर्तन और उनसे प्राप्त स्थिर विवेक और स्थिति को परखने वाली आत्म-विश्वासमयी दृष्टि-प्रसार की कला सीखी, उससे अपने सपनों के सरल, किंतु मार्मिक चित्र खींचने में उन्हें पर्याप्त सुविधा हो गई। उनका सरल, तरल, सजीव-स्नेह भूखे, नंगे, निराश्रय बालकों को देखकर उमड़ पड़ा और उनका कोमल हृदय अभावग्रस्त, भर्त्सनाओं की शिकार, पीड़ित, उपेक्षिता, पुरुषों द्वारा रौंदी और सामाजिक बंधनों में जकड़ी नारियों की आशा-निराशा, हास्य-रुदन और अंतर्बाह्य ऊहापोहों से द्रवित हो उठा। जहां कहीं उन्हें परवश, असहाय विधवाएँ अथवा कुसुमकली-सी कोमल अल्पवयस्का पति-विहीना, किन्तु किसी युवक की विकृत वासनाओं की शिकार, अवैध संतति से विभूषित कोई किशोरी बाला दीख पड़ी, वहीं उनके भीतर का तकाज़ा और भी अधिक दुर्दम्य, कठोर और आत्म-वेदना से आलोड़ित होकर प्रकट हुआ।

'यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि 'बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें।'

न केवल उपेक्षिताओं, परित्यक्ताओं, विधवाओं और अवैध सन्तान वाली माताओं के प्रति उनका असाधारण प्रेम और सहानुभूति जाग्रत हुई, अपितु पुरुषों की सम्भोगेच्छा की प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखा बनकर रूप का गर्हित व्यापार करने वाली वेश्याओं तक के प्रति भी उनकी सद्भावना है। जिनकी ज़िन्दगी के मूल्य नित्य घटते-बढ़ते रहते हैं, वे समाज में हेय और पतित समझकर भले ही ठुकरा दी जाएँ, किन्तु उनके पतन में पुरुष का स्वार्थ और उसके भीतर घुमड़ता हुआ कुत्सित वासनाओं का तूफान ही सहायक होता है।

'इन स्त्रियों ने, जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से सम्बोधित करता आ रहा है, पुरुष की वासना की वेदी पर, कैसा घोरतम बलिदान दिया है, इस पर कभी किसी ने विचार भी नहीं किया। पुरुष की बर्बरता, रक्त-लोलुपता पर बलि होनेवाले युद्ध-वीरों के चाहे स्मारक बनाये जावें, पुरुष की अधिकार-भावना को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रज्ज्वलित चिता पर क्षण भर में जल मिटनेवाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलानेवाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो बूंद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा। ('श्रृंखला की कड़ियाँ' पृष्ठ 113)

महादेवीजी ने वर्तमान सामाजिक-व्यवस्था और परम्परागत संस्कारों पर

कहीं-कहीं इतना दारुण आघात किया है कि पाठक तिलमिला उठता है और उनकी अंतरंग करुणा एवं कठोरता से प्रेरित गतिशील अभिव्यक्ति को सजीव रंगों में चित्रित देखता है। सामाजिक जीवन की गहरी पर्तों को छूनेवाली इतनी तीव्र दृष्टि नारी-जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आँकनेवाली इतनी जागरूक प्रतिभा और निम्न-वर्ग के निरीह, साधनहीन प्राणियों का ऐसा हार्दिक और अनूठा चित्रण अन्यत्र कम ही मिलेगा। यथार्थ की ठोस भूमि पर जब कलम चलती है तो उसमें अनुभव की गहराई होती है, आत्मविश्वास की सक्रिय सजगता निवास करती है, उसमें टीस होती है, मिठास होती है, चिरंतनता सांस लेती नज़र आती है। महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में उनके सूक्ष्म अंतर्भाव सतह पर उठनेवाली लहरियों की भाँति नहीं, वरन् अंतस् के गहन-गंभीर आलोड़न से उत्पन्न तीखे ठोस बिंदु हैं जो मर्म पर चोट करते हुए अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं, मानो भीतर की सारी शक्ति संचित होकर शब्दों में सजीव हो उठती है।

जीवन-दर्शन

कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भी श्रेष्ठ कलाकार की महत्ता का मापदण्ड उसकी अनुभूति की गहराई और उसकी विषय-वस्तु का फैलाव है। कलाकार ज्यों-ज्यों अपनी भावनाओं को विश्वात्मा की एकरूपता में लय कर देता है, त्यों-त्यों उसके आत्म-भाव की परिधि व्यापक होती जाती है और तब प्रत्येक ज्ञेय वस्तु, उसकी बुद्धि का विषय न होकर, अनुभूति का विषय बन जाता है। जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, महादेवी के काव्य में विषण्ण वातावरण की सृष्टि हुई है, उनकी अस्पष्ट, आकारहीन चाहनाएँ आंतरिक विवशता का परिणाम हैं। बाह्य परिस्थितियों की अनुकूलता शक्य न होने से उनमें जो आत्मपीड़न और अनासक्ति है, उसी ने जीवन के प्रति उनका तन्मय विश्वास खोकर उनमें खीझ, निराकार आक्रोश, पलायन-भावना और झिझक उत्पन्न कर दी है। गद्य में यह आंतरिक विद्रोह और भी अधिक तीखा और खुलकर व्यक्त हुआ है। अंतर्संघर्ष और असंतोष के साथ-साथ उनमें सामाजिक परिस्थितियों से तनाव है और यह तनाव, यह अनासक्ति ही उनके सारे दर्शन का आधार है। गद्य में सामाजिक जीवन की ह्रासोन्मुखी गतानुगति के प्रति स्वस्थ एवं सबल विद्रोह होते हुए भी उनमें गतिशील क्रांतिकारी चेतना और सजग क्रियाशीलता के चिह्न नहीं हैं। उनमें राग है, कशाघात नहीं; पराजय है, प्रतिकार-भावना नहीं; कोमलता है, कठोरता नहीं; निर्मम वास्तविकताओं के प्रति मूक स्वीकृति है, उनके निदान का कोई स्पष्ट उपचार नहीं। महादेवी में विद्रोही तत्त्व सांघातिक सामाजिक निरंकुशता सहन नहीं करते, अतएव उनमें प्रतिरोध और विरक्ति है, जिसमें विषाद का गहरा पुट भी है। कहीं-कहीं जहाँ ठेस गहरी है, उनकी बद्ध आत्मा तड़प उठती है। उनके भीतर में

विद्रूप बज उठता है, नारीत्व का अहं चीत्कार कर उठता है और वे अधिकाधिक कठोर हो जाती हैं। समाज की विभिन्न ह्रासोन्मुखी विकृतियों का पर्दाफाश करते हुए उनमें हृदय की मधुर पीड़ा की कराहट सुन पड़ती है, जो पाठक के मस्तिष्क में अमिट चिह्न लगा जाती है।

इसी को अधिक स्पष्ट करें तो हम कहेंगे कि गद्य और पद्य में महादेवी के जीवन-दर्शन की दो पृथक् धाराएँ विकसित हुई हैं। उनके पद्य की कसौटी है असामंजस्य और आत्मपीड़न, जिसमें वाह्य परिस्थितियों से आस्था न होने के कारण अंतर्मुखी चिंतन है, विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभूति नहीं। आत्म-दर्शी जिन अनुभूतियों में रमता है, उनका उसमें अभाव है, अतएव उनका पद्य रागात्मक कल्पना का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता हुआ भी इतना लोकसंवेद्य न हो सका जो मन में उतर पाता। इसके विपरीत महादेवी के गद्य का अपना पृथक् अस्तित्व है, पद्य के अन्तर्गूढ़ स्वरों को उन्होंने गद्य में मुखर किया है और जीवन को सच्चे अर्थों में प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देखा है। लोक-सामान्य संवेदनीयता की भाव-भूमि पर उन्होंने गहरे-हल्के रंगों के सम्मिश्रण से जीवन के जो चित्र आँके हैं वे अर्थपूर्ण अनुभूतियों के आधार पर यथार्थ का सच्चा निरूपण करते हैं।

'यामा', 'दीपशिखा' और 'आधुनिक कवि' की भूमिकाएँ कवयित्री के अंतर्मंथन और प्रमुख संकल्पों की विचारात्मक प्रतिक्रिया है, जिससे अपने पक्ष-समर्थन का आग्रह अधिक, वस्तुस्थिति की निर्दिष्ट दिशाओं का संश्लेषण कम है। कहीं-कहीं दार्शनिक-चिंतन की बोझिलता से उनकी भाव-व्यंजना सहज दुर्विज्ञेय हो गई है।

जीवन और कृतित्व में वैषम्य

महादेवीजी के मैंने कभी दर्शन नहीं किए, किन्तु सुना है वे हँसती बहुत हैं और कभी-कभी विपरीत स्थिति में भी बहुत हँसती हैं। जीवन के प्रति 'ट्रेजिक' दृष्टिकोण रखने वाली कवयित्री का यह रूप बहुतों को आश्चर्य में डाल देता है।

मानव मन का सीमांत क्या है—यह तो बताना कठिन है किन्तु किसी भी शारीरिक अथवा मानसिक असम्बद्धता, असंगति या विपर्यय से सजग चेतन का अचेतन से संयोग होने के कारण मनुष्य का पराजित मन बाह्य-संघर्षों से ऊबकर एक काल्पनिक, झूठी मस्ती अथवा मन बहलाने वाली मादकता का प्रश्रय लेता है और अपनी फक्कड़पन से भरी अनुभूतियों की आवेगपूर्ण अभिव्यंजना करने लगता है। यह एक प्रकार का लक्ष्यहीन लक्ष्य है, जो उसे काल्पनिक सुख देता है। अनेक बार बाहरी असफलताएँ और भीतरी विवशता भावुक व्यक्तियों को प्रमादग्रस्त बना देती है, उसकी वेदना में जैसे करुण आवेग की प्रचुरता होती है, उसी प्रकार उसकी विपरीत प्रतिक्रिया हर्ष भी विचित्र और आवेगपूर्ण होता है। महादेवीजी की हँसी निराशा, पलायन, आवेग, अतृप्ति, असंतोष और भीतरी

विवशता का परिणाम है जिसे अनन्त संघर्षों से परे मुक्तावस्था कहा जा सकता है। यदि हम उनकी हँसी का विश्लेषण करें तो उसके अतल में उतनी रसात्मक अनुभूति नहीं जितनी असम्बद्धता, असंगति और उथलापन पाएँगे। उनके रुदन की भाँति उनका हास्य भी संक्रामक है। असम्बद्ध बातों और विपरीत स्थिति में हँसना इसी संक्रमण से प्रेरित होता है।

जब चेतन-अचेतन स्थिति में हृदयस्थ भाव, विचार एवं आलम्बन एक हो जाते हैं तब हम किसी विशेष बात पर नहीं हँसते, न किसी वस्तु को हास्यास्पद जानकर हँसते हैं, वरन् यों ही अपने-आप हँसते हैं; तब हँसी भीतर से नहीं, बाहर से आती है। महादेवीजी अपनी हँसी को स्वकीय भाव से नहीं, मुक्त-भाव से अपनाती हैं। उनके बाह्य सुख-दुख, जय-पराजय, मान-अपमान, हानि-लाभ और प्रिय-अप्रिय प्रसंग उनकी आत्मिक-दृढ़ता से टकराकर मुक्त हँसी में बिखर जाते हैं। हँसी का विश्लेषण करती हुई एक स्थल पर महादेवीजी स्वयं लिखती हैं :

'जब हमारी दृष्टि में प्रसार अधिक रहता है, तब हम किसी एक में उसे केंद्रित नहीं कर सकते। प्रत्युत् हमारी विहंगम दृष्टि एक ही क्षेत्र में एक साथ अनेक को स्पर्श कर आती है। इससे जिस सीमा तक हमारा ज्ञान बढ़ जाता है उसी सीमा तक हमारी दृष्टि के विषयों का महत्त्व घट जाता है। इसके विपरीत जब हमारी हँसी में मुक्त विस्तार नहीं होता, तब हम हवा के झकोरे के समान उसका सुखद स्पर्श सब तक नहीं पहुँचा सकते। उस स्थिति में हमारे हास-परिहास व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को केंद्र बनाकर सीमित हो जाते हैं। कलाकार की दृष्टि एक-एक पर ठहर कर ही प्रत्येक को अपना परिचय देती है और उसकी हँसी एक साथ सबको स्पर्श करके ही आत्मीयता स्वीकार करती है। इस परिचय और आत्मीयता के अभाव में जीवन का यह आदान-प्रदान सम्भव नहीं होता, जिसकी साहित्य और कला में पग-पग पर आवश्यकता रहती है।'

महादेवी भाव-प्रधान कवयित्री हैं। भावोन्मेष ही उनमें जीवन-साधक आशा, आनन्द, तुष्टि, साहस, आस्था, उद्योग और व्यष्टि-समष्टि सम्बन्धी व्यापक अनुभूति और विरोधी तत्त्वों को उन्मीलित करने की शक्ति देता है। इसी भाव-भावना से उनमें आत्मनिष्ठा उत्पन्न हुई है।

अनेक बार उनके रेखाचित्रों और संस्मरणों को पढ़ते हुए यह विचार मन में उठा कि महादेवीजी ने अपने कृतित्व में वैवाहिक-पहलुओं पर क्यों न प्रकाश डाला अथवा पति से सम्बन्धित किन्हीं भी अनुकूल-प्रतिकूल अनुभवों को क्यों न शब्दों में बाँध दिया, जैसा कि उन्होंने अपने जन्म, बचपन, स्वभाव और माता-पिता, भाई-बहिन और सम्पर्क में आए अन्य छोटे-छोटे व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में किया है। वस्तुतः महान् साहित्य-साधक के सम्मुख उसका अपना 'स्व' पृथक् अस्तित्व नहीं रखता और पार्थक्य एवं भेद-भाव व्यापक आत्मानुभूति में लय हो जाते हैं।

किन्तु जब व्यथा सघन होती है तो भाव स्तब्ध और अनुभूति-शक्ति शिथिल हो जाती है, न उसका विश्लेषण ही हो सकता है और न उसकी व्याख्या सम्भव है।

"रात सी नीरव व्यथा तम सी अगम मेरी कहानी।"

क्या जाने वह अगम कहानी महादेवीजी के लिए भी उतनी ही दुर्भेद्य और अनजानी रह गई हो कि वे स्वयं आज तक उसके अतल में न पैठ पाई हों और अपने अन्तर्मन की सूक्ष्म प्रक्रियाओं और जीवन-सूत्रों का उस घटना से कोई सामंजस्य न बैठा पाई हों।

जब साधक आत्मनिष्ठा जगा लेता है तो उसे जीवन के आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं रह जाती और न वह अपने जीवन में सामंजस्य-असामंजस्य ढूँढ़ने की चेष्टा में ही अपनी शक्ति व्यय करता है। उसे न किसी के संरक्षण की अपेक्षा है और न कोई बंधन ही उसे अपनी सीमा में बाँध सकता है। महादेवीजी लिखती हैं: 'स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है तब पुरुष उसके लिए न महत्त्व का विषय रह जाता है, न भय का कारण।'

महादेवीजी आज उस सतह पर पहुँच गई हैं जहाँ तिमिर की सीमा पार करके वे निस्सीम पथ की पन्थी हैं और उस पथ की अशेषता को जानते हुए भी उनके धैर्य और विश्वास का अवसान नहीं है। उसकी अंतश्चेतना जगकर आज अपने अव्यय रूप में सुस्थिर हो गई है, उन्हें न विजय की आकांक्षा है और न पराजय ही उनके उन्नति-पथ की अवरोधक है। कला की अमर साधना ही उनके जीवन का प्रथम और अंतिम ध्येय बन गई है।

7/23, दरियागंज, दिल्ली

शचीरानी गुर्टू

क्रम

——

1

सुश्री महादेवी वर्मा (प्रश्नोत्तर)

जैनेन्द्रकुमार

(प्रश्नकर्तृ—शचीरानी गुर्टू)

['महादेवीजी की कविता का धरातल बौद्धिक है या कहें बौद्धिक सहानुभूति। उनके काव्य में भाव की उतनी कच्ची भूमिका नहीं है। उससे अधिक तल्लीनता है, पर जैसा कि मैंने माना है कविता में उनकी निजता डूबती नहीं है, बुद्धि की डोर से वह जैसे अलग थमी रहती है।

घायल घाव नहीं चाहता। जो अभी घाव ही चाहता है, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवीजी विरह और वियोग में रस अधिक ढूंढ़ती हैं, इसका अर्थ है विकलता उतनी अनुभव नहीं करतीं।

बुद्धि जानती है, इसी कारण वेदना में घुलने नहीं देती यानी वह भक्ति से भिन्न है। भक्ति में एक विह्वलता है, महादेवी के काव्य में इतनी अधिक कविता है कि उसी के कारण हम जान लेते हैं कि विह्वलता नहीं है। विह्वलता में भाषा के किनारे टूटे-फूटे बिना नहीं रह सकते, जबकि महादेवी जी की कविता सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण है। वेदना वह जो बुद्धि को भिगो दे। बुद्धि से अलग जिसे थामे रह सकती है, वह पीड़ा शायद बुद्धिगत है, प्राणगत नहीं; जबकि वेदना का मूल प्राण में है।']

प्रश्न : सुना है महादेवीजी नब्बे प्रतिशत हँसती हैं, बातें कम करती हैं।

उत्तर : बात तो कम नहीं करतीं, पर प्रतिशत हँसी के पक्ष में अधिक हो सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि वह हँसी सर्वथा बात में से निकली हुई नहीं होती। कुछ असम्वद्ध भी होती है।

प्रश्न : क्या उनकी हँसी असम्बद्ध से अस्वाभाविक भी हो जाती है ?

उत्तर : अस्वाभाविक महादेवीजी की ओर से नहीं कहा जा सकता। चर्चा के प्रसंग की ओर से भले ही अस्वाभाविक कह लिया जाए।

प्रश्न : महादेवी जी की हँसी में मनोवैज्ञानिक तथ्य क्या है ?

उत्तर : मुझे लगता है, महादेवीजी अपने और दूसरे के बीच अन्तर बनाए रखना चाहती हैं, उसको सहज, फिर भी अनिवार्य बनाए रखने के लिए, बीच में

यह हँसी डाल देने का उपाय है। इस तरह वह स्वयं किंचित् दुर्ज्ञेय बनती हैं।

प्रश्न : हँसी का तरीका उन्होंने क्यों अख्तियार किया? उन्हें दुर्ज्ञेय बनने की प्रेरणा कैसे और क्यों होती है?

उत्तर : आपके प्रश्नों का पूरा उत्तर मुझसे कैसे मिल सकता है। दुर्ज्ञेय बनने की आवश्यकता स्वयं दुर्ज्ञेय नहीं होनी चाहिए। अपने को न खोलने की इच्छा हम सभी में है। एक स्त्री में सहज भाव से वह अधिक हो सकती है, कवयित्री में और भी अधिक; किन्तु महादेवीजी व्यवहार में शिष्ट सहानुभूति से दूर नहीं जा सकतीं। दूसरा उनकी जगह होता तो अपने को गुम-सुम या गरिमा-मय बनाकर सुरक्षित कर लेता। महादेवीजी का शिष्टाचार उन्हें ऐसा नहीं करने दे सकता, वह उन्हें हार्दिकता दिखलाना चाहता है। वह हार्दिकता उतनी सहज उनके लिए नहीं है। कारण, वह पारदर्शी सन्त प्रकृति की नहीं हैं। ऐसी हालत में खिलखिलाहट से भरी हँसी ही आवरण का एकमात्र उपाय रह जाता है। लगता है, इस हँसी में वह खुल रही हैं, पर वही उनको ढक रही होती है।

प्रश्न : महादेवीजी से आप सर्वप्रथम कब मिले थे?

उत्तर : ठीक तिथि याद नहीं है, लेकिन पहली बार जब मिलना हुआ उसको अब से बीस वर्ष होते होंगे।

प्रश्न : परस्पर में क्या-क्या बातें हुईं? यदि कुछ याद हो तो बताने की कृपा करें।

उत्तर : बातें पूरी तो याद नहीं हैं। वह इलाहाबाद शहर में तब किसी कन्याशाला में थीं, उनकी कविता ने नया-नया लोगों का ध्यान खींचा था। मुझे याद है कि पाठशाला के बन्द दरवाज़े पर मुझे कुछ देर रुकना पड़ा था। फिर कुछ देर अन्दर प्रतीक्षा में बैठना पड़ा। मालूम हुआ कि खबर दी गई है, नहा रही हैं, अभी आ रही हैं। वह 'अभी' मुझे कुछ समय अभी नहीं मालूम हुआ। काफी देर में वह आईं। जान पड़ता है वह देर मुझे रुचिकर न हुई थी। और आते ही इसी की झल्लाहट मैंने उन पर उतारी। कहने की आवश्यकता नहीं कि वह भी झल्लाहट के रूप में नहीं उतरी। मैंने कहा था कि देखिए, पहले आपने यह ग़लती की कि कविता लिखी, फिर यह कि छपने दी तिस पर सबसे बड़ी ग़लती यह कि वह कविता अच्छी लिखी। किसी ने आपसे यह नहीं कहा था कि आप एक पर एक ये ग़लतियाँ करती चली जाएँ। यह आपका अपना काम था। कोई भी आपके साथ इसके दोष को बँटा नहीं सकता। अब अपने कर्मफल से आप बच नहीं सकतीं। यानी अपनी कविता से आपने ध्यान खींचा है तो आप अपने को उस ध्यान से बचाने की अपात्र हो गईं। बात इसी ढंग से शुरू होकर न जाने कहाँ-कहाँ घूमती-फिरती रही। जान पड़ता है उनका असमंजस और मेरा क्षोभ अधिक

देर हमारे बीच ठहरा नहीं। यही साहित्य-वाहित्य की कुछ गप-शप होती रही होगी।

जी, आप पूछना चाहती हैं कि वह हँसी थीं और कितनी बार हँसी थीं। नहीं, उस समय एक बार भी उनके हँसने का स्मरण नहीं है। तब वह गुरुजी थीं भी तो नहीं। शायद विद्यार्थिनी थीं और एम० ए० आरम्भ नहीं तो बी० ए० अन्तिम की परीक्षा दे रही थीं।

प्रश्न : आप अभी हाल में भी महादेवीजी से मिले होंगे, तब के और अब के उनके व्यक्तित्व में क्या अन्तर पड़ा है ?

उत्तर : हाँ, मिला हूँ और मिलता ही रहता हूँ, अन्तर वही ठीक बीस वर्ष जितना पड़ा है। तब सलज्जा थीं, अब बातचीत में दूसरे को लज्जित करती हैं। जीवन में तब प्रवेश कर रही थीं, और कहाँ उनका स्थान है और होगा, इसके बारे में हर धारणा से रीती और हर आशा से भरी थीं। अब सब घटित घटना है। न धारणा के लिए और न आशा ही के लिए स्थान है। इसलिए व्यवहार में अबोधता नहीं रह गई है। सिद्धदक्षता आ गई है। इत्यादि इत्यादि कितना मुझसे कहलाइएगा, खिलती वय से आरम्भ होकर उसके अनन्तर बीस वर्ष का अन्तर अपने-आपमें समझ लेने की बात है।

प्रश्न : महादेवीजी की कविता का धरातल क्या है ?

उत्तर : देखिए, मैं अकवि हूँ, उनकी कविता का धरातल शायद बौद्धिक है या कहें बौद्धिक सहानुभूति है। शायद वह अनुभूति से किंचित् भिन्न वस्तु है।

प्रश्न : महादेवीजी को कविता की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई ?

उत्तर : यह प्रश्न महादेवी से करने योग्य है।

प्रश्न : मेरे पूछने का तात्पर्य यह है कि महादेवीजी को कविता की प्रेरणा उनके जीवन की बाह्य परिस्थितियों के कारण है अथवा उनकी प्रेरणा भीतरी साधना में निहित है ?

उत्तर : बाहर की परिस्थिति और भीतर की साधना मेरे लिए ये दो निरपेक्ष तत्त्व नहीं हैं। भीतर-बाहर में क्रिया-प्रतिक्रिया चलती ही रहती है। इस तरह मैं उनकी या किसी की कृतित्व-प्रेरणा को किसी खास खाने में बिठाकर नहीं देख सकता।

प्रश्न : महादेवीजी गृहिणी या माता होतीं तो क्या उनकी कविता का रूप यही होता ?

उत्तर : नहीं, यह नहीं होता, तब वह कविता न इतनी सूक्ष्म होती, न जटिल, न गूढ़। तब वह अधिक प्रकृत होती।

प्रश्न : महादेवीजी में भ्रान्ति, जड़ता, मूक प्रणयानुभूति अधिक है। वेदना है, किन्तु उसमें वह घुलती नहीं हैं; वरन् वह सुख का अनुभव करती हैं, ऐसा क्यों है ?

उत्तर : प्रश्न में शब्द बड़े हैं। उनमें से मुझे राह-बूझ नहीं मिलती। वेदना वाली बात समझ में आती है। वेदना में घुलना या न घुलना मेरे विचार में यह आदमी के अपने निर्णय की बात नहीं है। यदि कोई नहीं घुलता, तो कहना यह होगा कि वेदना की मात्रा पर्याप्त से कम है। महादेवीजी वेदना में घुल गई हैं ऐसा मैं भी नहीं मान पाता। इसी से मुझे मानना होता है कि वेदना वह समग्र नहीं, किंचित् बौद्धिक है। आपके पहले प्रश्न के उत्तर में जो मैंने कहा था कि मेरी दृष्टि में उनके काव्य का धरातल बौद्धिक है या बौद्धिक सहानुभूति है तो इसका यही मतलब था। बुद्धि जानती है, इसी कारण घुलने नहीं देती यानी वह भक्ति से भिन्न है। भक्ति में विह्वलता है, महादेवी के काव्य में इतनी अधिक कविता है कि उसी के कारण हम जान लेते हैं कि विह्वलता नहीं है। विह्वलता में भाषा के किनारे टूटे-फूटे बिना नहीं रह सकते, जबकि महादेवीजी की कविता सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण है। इसमें मैं वेदना की कुछ कमी ही को कारण देखता हूँ। वेदना वह जो बुद्धि को भिगो दे। बुद्धि अलग से जिसे थामे रह सकती है, वह पीड़ा शायद बुद्धिगत है, प्राणगत नहीं है, जबकि वेदना का मूल प्राण में है।

प्रश्न : 'She is pathetic, not tragic.' क्या आप महादेवीजी के सम्बन्ध में इस धारणा से सहमत हैं ?

उत्तर : इन दो शब्दों में contrast तीव्र है। Tragic गुण तो महादेवी के काव्य में मुझे कम ही मिलता है, पर pathetic उसे कह देकर भी मुझे छुट्टी नहीं मिलती। Pathetic विशेषण के नीचे भाव की मानो बहुत ही कच्ची धरती माननी होगी। उस काव्य में भाव की उतनी कच्ची भूमिका नहीं है। उससे अधिक तल्लीनता है, पर जैसा कि मैंने माना है कविता में उनकी निजता डूबती नहीं है, बुद्धि की डोर से वह जैसे अलग थमी रहती है। इसी से ट्रेजिक (tragic) भाव उत्पन्न होने से वहाँ कुछ बच ही जाता है।

प्रश्न : महादेवीजी और मीरा की पीड़ा में क्या अन्तर है ?

उत्तर : उत्तर मुझे अनुमान से ही देना होगा। अनुमान खतरनाक भी होता है। महादेवीजी मेरे लिए समकालीन हैं, मीरा ऐतिहासिक। पर जहाँ तक सम्भव है, मैं व्यक्तित्वों पर से अनुमान नहीं लगाता। अनुमान काव्य से लगता है। महादेवीजी की पीड़ा चाह कर अपनाई हुई है, मीरा की अनिवार्य। मीरा अपने में बेबस और अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए विकल हैं। वह प्यासी हैं इसलिए उनमें पानी की पुकार है। महादेवी प्यास को ही चाहती मालूम होती हैं, इससे अनुमान होता है कि प्यास को उन्होंने जाना नहीं है। घायल घाव नहीं चाहता। जो अभी घाव ही चाहता है, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवीजी विरह और वियोग में रस अधिक ढूंढती हैं। इसका अर्थ है, विकलता उतनी अनुभव नहीं करतीं। मीरा तो अपने

गिरिधर गोपाल के पीछे सारी लाज लुटा बैठी हैं। महादेवी के लिए सामाजिक सम्भ्रान्तता उतनी नगण्य वस्तु नहीं है। कोई गिरिधारी उनके लिए इतना मूर्त्त और वास्तव नहीं बन सकता, जो उन्हें उधर से असावधान कर दे। यानी अपने इष्ट को वह विचार-रूप में ही ग्रहण कर सकती हैं, प्रत्यक्ष रूप में नहीं चाह सकतीं। प्रत्यक्ष होकर उसे शरीर तक मिलने की दु:सम्भावना हो आती। महिला-जनोचित उनके स्वभाव के लिए वह सर्वथा असह्य है। इस तरह मीरा और महादेवी की पीड़ा में मैं किसी प्रकार भी समकक्षता नहीं देख पाता हूँ।

प्रश्न : महादेवी के काव्य में प्रणयानुभूति के अतिरिक्त सत्य, सुन्दर कहाँ तक साध्य और साधन है ?

उत्तर : मैं प्रश्न को ठीक तरह हृदयङ्गम नहीं कर पाया। मेरे लिए तो प्रत्येक सम्बन्ध सघन होकर प्रणय बन जाता है। मूर्त्त के लिए ही नहीं, अमूर्त्त के प्रति भी प्रणय होता है। प्रणय अपनी प्रकृति से मूर्त्त को अमूर्त्त और अमूर्त्त को मूर्त्त बना देता है। अर्थात् प्रणयानुभूति से अतिरिक्त काव्य में कुछ और होने का अवकाश ही कहाँ है ? पर हाँ, महादेवी के काव्य में वैसा अवकाश रहा है, क्योंकि बुद्धि वहाँ डूबी नहीं है, भीगी नहीं है। किंचित् स्वस्थ और सुरक्षित रह गई है। मीरा से पूछने चलो तो गिरधारी से अलग कोई सत्य और सुन्दर उसके लिए जँचता ही नहीं। जिसके प्रति प्रणयानुभूति एवं प्रणय निवेदन हो, उसके अतिरिक्त सत्यी और सुन्दर को होने के लिए अधिष्ठान ही कहाँ है ? यदि है तो मानूँगा कि काव्य की त्रुटि है। इसी अर्थ में मैंने कहा कि आपके प्रश्न को मैं पूरी तरह हृदयंङ्गम नहीं कर पाया।

प्रश्न : महादेवीजी काव्य को किन अर्थों में लेती हैं, 'कला के लिए कला का सिद्धान्त' उनके काव्य पर कहाँ तक लागू होता है ?

उत्तर : प्रश्न के पहले भाग का उत्तर महादेवीजी से लीजिए।

'कला कला के लिए' यह सूत्र महादेवीजी के काव्य से कितनी तृप्ति पाता है यह भी उस सूत्र के सूत्रधार से मालूम करने की बात है। मैं समझता हूँ माने जाने वाले लौकिक उद्देश्यों में से किसी के साथ उस कविता को जड़ित कठिनाई से ही देखा जा सकेगा। निरुद्देश्य तो उसे या किसी को कैसे कहा जा सकता है। पर क्योंकि हम किसी स्थूल और स्पष्ट लौकिक हेतु से उसे नहीं जोड़ सकते, इसलिए उस काव्य-कला को 'कला के लिए' ही स्रष्ट माना जाय तो कुछ अन्यथा न होगा।

प्रश्न : पद्य में वह अपने-आप में सिमटी हैं, किन्तु गद्य उनकी सहानुभूति को कहाँ तक बिखेरता है ?

उत्तर : आपकी बात में कुछ ऐसा आशय तो है, जिससे मैं सहमत हो सकता हूँ। पद्य में जैसे उन्होंने अपने को टटोला है, और अन्त में अपने को निवेदित किया

है, उसके प्रति जो उनके अपने आत्म से भिन्न नहीं है। इस तरह घूम-फिर-कर उनका पद्य अधिकांश उन तक ही लौट आता है। उसमें जगत् नहीं है, मेरे विचार से जगत-पिता भी नहीं है। इसलिए वह काव्य कुछ इतना वायव्य और सूक्ष्म है कि अनुभूति तक में मुश्किल से आता है। यह सुविधा गद्य में तो है नहीं। गद्य इतना पर-निरपेक्ष हो ही नहीं सकता है। इसलिए उनके गद्य में सहज भाव से हम, तुम की चर्चा हुई है। उनमें मानव-पात्र हैं और वास्तव परिस्थितियाँ हैं। केवल आत्म ही आत्म वहाँ नहीं है।

सहानुभूति की गति आवश्यक रूप से अपने से इतर के प्रति है। महादेवीजी के पद्य में वह इतर लगभग लुप्त है। इससे यह कहना कुछ हद तक ठीक ही है कि गद्य में इनकी सहानुभूति अपेक्षाकृत अधिक खिली है।

प्रश्न : महादेवी के रेखा-चित्रों के सम्बन्ध में आपकी क्या धारणा है ?

उत्तर : रेखाचित्र से मतलब शायद आपका उन शब्दचित्रों से है जो उनकी पुस्तक 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में मिलते हैं। मेरे ख्याल में वे शब्दचित्र सुन्दर बन पड़े हैं और हम में सहानुभूति-परक स्पन्दन जगाते हैं। यह कि वे महिम्न माने जाने वाले नायक-नायिकाओं के कल्पना-चित्र नहीं हैं, एक अच्छी ही बात है। साहित्य ने असाधारण को पर्याप्त से अधिक महत्त्व दिया है। असाधारण किंचित् अपसाधारण भी होता है। समय है हम साधारण के महत्त्व को पहिचानें। एक समय किसी साहित्य-चर्चा में अमुक साहित्यपंडित से 'साधारणीकरण' शब्द सुना था। उसका शास्त्रीय अर्थ मैं नहीं जानता, लेकिन इस अर्थ में 'साधारणीकरण' मुझे प्रिय और मान्य होता कि प्रत्येक निजता को हम इस रूप में लें और दें कि सार्वजनिक से विषम न रह जाए। महादेवीजी को इसके लिए यानी उनके रेखाचित्रों के लिए मैं बधाई दे सकता हूँ। इसका मतलब यह कि मैं उनके प्रति उस सृष्टि के लिए कृतज्ञ हूँ।

प्रश्न : महादेवीजी की चित्रकला में विरहिणी नारियों के ही धुंधले चित्र मिलते हैं, ऐसा उनसे जान में हुआ है या अनजान में ?

उत्तर : जान-अनजान दोनों में।

प्रश्न : महादेवीजी की चित्रकला के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर : महादेवी की रचनाओं में मैंने उनके बनाए चित्र देखे थे। पर उन्होंने जो अपने कमरे की भीतों पर चित्र काढ़े हुए थे, उनका मुझ पर अधिक प्रभाव पड़ा। पहली बार वहाँ जाने पर मैं उन भीत-चित्रों को मुग्ध-सा देखता रह गया। काव्य-पुस्तकों में अंकित या स्वतन्त्रचित्र भावों को मूर्त्त करने के प्रयत्न में बने हैं। जीवन-प्रसंग से वे इतने जुड़े नहीं हैं। इससे वे पूरी तरह अनुभूति की पकड़ में नहीं बैठते। यों तो अज्ञेयता भी एक प्रकार का रस है। पर उसकी बात यहाँ नहीं करूँगा। हम गर्व में रहते हैं, इससे जब हमारी बुद्धि

कहीं अकृतकार्य होती है तो किंचित अच्छा भी लगता है। वैसी दुर्बोधता उन चित्रों में है, पर मुझ-जैसे को कुछ देते नहीं जान पड़े। कमरे की भीतों पर जो चित्र थे, वे उस प्रकार भाव-कैवल्य में से नहीं बने थे। उन्हें घटनात्मक भी कहा जा सकता है। जीवन-प्रसंग से उनका सीधा सम्बन्ध था। शायद इसीलिए रेखांकन आदि की अपनी सम्भव त्रुटियों के बावजूद मुझे विभोर कर सके। मानना होगा कि महादेवीजी की चित्रकला जीवन से अधिक चिन्तन की ओर उन्मुख है। जीवन तो मांसलता माँगता है। उसके बिना वह चलता नहीं। पर चिन्तन के लिए शरीर ही बाधा है, इसलिए अशरीरी चित्रण चिन्तनाभिमुखता के लिए अधिक अनुकूल पड़ सकता है। इसको फिर चाहे उसकी विशेषता कहा जाए चाहे मर्यादा।

प्रश्न : क्या आपके मन्तव्य से इस वस्तुस्थिति पर भी प्रकाश पड़ता है कि उनके चित्रों में विरहिणी नारी का चित्रण विशेष है ?

उत्तर : हाँ, अपने निज के भाव पर आश्रित रहने के कारण और बाहर के घटना-जगत् से विमुख होने के कारण उनके चित्रों में एकाकिनी नारी का स्थान पाना सहज सम्भव ही है। उस एकाकिनी को निश्चय ही अनेक भावों और रूपों में आना होगा। परस्परता के बीच उसकी एकान्तता एवं अभावात्मकता उस तरह निभ नहीं सकेगी। इसलिए उन चित्रों में उस प्रकार की सामाजिक परस्परता का अभाव स्वाभाविक मानना चाहिए।

प्रश्न : महादेवी के काव्य पर बुद्ध, रवीन्द्र, अरविन्द का प्रभाव कहाँ तक है ?

उत्तर : उस 'तक' के अनुपात का मुझे कुछ पता नहीं है। प्रश्न में आए तीनों व्यक्ति रहस्यवादी या आध्यात्मिक माने जाते हैं। आध्यात्मिक पर-प्रभाव को उस रूप में ले सकता ही नहीं है। उसे नितान्त मौलिक होना होता है। मौलिक से मतलब हर प्रभाव उसकी आत्मता में घुलकर ही उसे अङ्गीकृत हो पाता है। इस तरह कह सकते हैं कि परत्व को स्वत्व भाव से ही वह ले पाता है। महादेवीजी के सम्बन्ध में अनुपात का यद्यपि मुझे पता नहीं है तो भी यह इनकार करते नहीं बनता कि रवीन्द्र, बुद्ध आदि का उन पर प्रभाव है। प्रभाव है यह कहते बनता है, इसी में आशय है कि वह प्रभाव कुछ अलग से भी झलक आता है। स्वत्व में वह एकदम खो नहीं गया है। क्या मैं कहूँ कि अपने को जो पूरी तरह स्वीकार करने का आभास उनकी रचनाओं में नहीं है, वह बहुत कुछ 'पर' को अपनाए रहने के कारण भी है।

प्रश्न : महादेवी और जैनेन्द्र के साहित्य में किसकी कृतियाँ अधिक स्थायी रहेंगी ?

उत्तर : जैनेन्द्र की तो चिर-चिरान्त स्थायी रहने वाली हैं। उसका अभिमान इससे कम मानने को क्यों तैयार हो ? महादेवीजी की रचनाओं की जन्म-पत्री को भृगु-संहिता से मिलाकर देख लेना चाहिए, तब ठीक-ठीक उनकी आयु के वर्ष, पल, छिन का पता लग सकेगा।

प्रश्न : आपके उत्तर में तो उपहास है। क्या प्रश्न को आप उपहास के ही योग्य समझते हैं ?

उत्तर : और नहीं तो क्या ! आप ही कहिए प्रश्न में से विनोद के सिवा और क्या आशय लिया जा सकता है।

प्रश्न : तो क्या आप कविता को इतना अस्थायी मानते हैं कि वह कुछ क्षणों या पलों में ही सीमित है ?

उत्तर : नहीं, लेकिन उसकी आयु का निर्धारण कैसे हो ? हमसे जुड़ा हुआ सब कुछ 'अहं' से भी जुड़ा है। अहं तो नाशवान है। इससे आगे-पीछे हमारी रचनाओं को भी नाश को प्राप्त होना है। काल तो अनन्त है, जिसको हम चिर-स्थायित्व कहें उसकी क्या उस अनन्तता में बूँद जितनी भी गिनती है ! महादेवी की कविता मर्म को छूती है ! मर्म सबका एक है ! उसी को आत्मा कहें। अपने शुद्ध रूप में वही परमात्मा है। उस अवस्था में वह कालाबाधित सत्य है। उसके नाश का प्रश्न ही नहीं। अतः यत्र-तत्र मार्मिक भी हो जाने के कारण केवल सामयिक भाव से जीकर समाप्त हो जाने वाली कविता वह नहीं है।

2

महाश्वेता महादेवी

देवेन्द्र सत्यार्थी

['टिमटिमाते तारों में कवयित्री अपना इतिहास खोजती है, मधु-बयार जीवन का सन्देश लाती है। कभी वेदना उसके मन पर छा जाती है और वह 'नीर भरी दुख की बदरी' से अपनी तुलना करने लगती है। आँसू ही उसके प्रिय साख हैं। फिर पग-पग पर संगीत प्रतिध्वनित हो उठता है और वह गायक को सम्बोधन करती है—

'दीपक-राग के स्पर्श से सभी दीप जल उठते हैं, फिर जीवन के मन्दिर में कैसे अन्धकार रह सकता है ?'

रात का अन्धकार वेदना लाता है, भोर होने पर जीवन का उल्लास उभरता है। भोर होने पर किसी को सोना नहीं चाहिए—

'फिर सजग आँखें उनींदी आज कैसे व्यस्त बाना ?
जाग तुझको दूर जाना !'

कविता में कवयित्री अपने ही जीवन की आवाज प्रस्तुत करती है और जिस ईमानदारी और सचाई से वह अपना स्वर छेड़ती है उसपर पाठक को सन्देह नहीं होता। पग-पग पर एक प्रतीक-सा उभरता है। इस कविता में इतनी क्षमता है कि जीवन को अपने पंखों में समेट ले।']

महादेवी को मैंने जब भी देखा, खादी की उसी सफेद धोती में। एक ही अन्तर दिखाई दिया। अब वह अति गम्भीर मुद्रा के स्थान पर खुलकर हंसने में अधिक विश्वास रखती हैं।

अठारह साल पहले हुई थी पहली भेंट। वह देहरादून के कन्या गुरुकुल के दीक्षान्त समारोह में भाषण देने आई थीं। बस, वहीं मैंने उन्हें देखा। खादी की सफेद धोती में लिपटा हुआ शरीर, मुख पर गाम्भीर्य की रेखाएँ। मैं जैसे एकदम उनके रौब में आ गया। उनकी वाणी में अवश्य एक आकर्षण था—उसी से खिंचा हुआ मैं उनकी ओर बढ़ा। दीक्षान्त-समारोह के पश्चात् उन्हें अनेक व्यक्तियों ने अपनी बातों में उलझा रखा था। वह जल्द-जल्द सबसे विदा ले रही थीं—उस समय मुझे उन खानाबदोशों का ध्यान आया जो एक स्थान में थोड़ा समय बिताकर

आगे जाने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। उतनी ही उत्सुकता से महादेवी देहरादून से विदा लेने जा रही थीं। हाँ, फर्क सिर्फ इतना ही था कि आगे आने की बजाय वह पीछे को लौट जाना चाहती थीं—वहीं इलाहाबाद।

मुझे ख्याल आया कि इससे डेढ़ वर्ष पूर्व मैं इलाहाबाद गया तो न जाने कैसे महादेवी के यहाँ जाने से चूक गया था। अब तो वह सामने खड़ी थीं। सोचा, ज़्यादा से ज़्यादा यही होगा न कि वह एक-दो मिनटों में 'जी हाँ-जी हाँ' कह-सुनकर विदा लेने के लिए हाथ जोड़ने की औपचारिक मर्यादा दिखाने लगेंगी, पर ऐसा नहीं हुआ। मैंने बात शुरू की। स्वयं अपना परिचय देने का दायित्व निभाया। वह चलने के लिए तैयार खड़ी थीं, पर जैसे उनके पैर रुक गए हों। बीच में ख्याल आया ज़रूर कि यह तो ठीक नहीं कि मैं ही बोलता चला जाऊँ और वह खामोश खड़ी सुनती रहें। लोकगीतों के बारे में मैंने अपनी योजना बताई। "मैं इनके बारे में अधिक नहीं जानती"—उनसे यह सुनकर जैसे मेरा हौसला बढ़ा। आज सोचता हूँ कि कैसे मैंने हौसला किया, कैसे झट यह मान लिया कि वे लोकगीतों के बारे में अधिक नहीं जानतीं!

हिन्दी कवयित्री के नाते महादेवी का नाम मेरे लिए एकदम नया तो न था। अब जैसे उनसे मिलकर उनकी कविता मेरे लिए कुछ-कुछ सहज हो गई। इस कविता में प्रार्थना के स्वर थे, आँसू थे, और थे वेदना के हृदयस्पर्शी बोल। अब उनकी कविता मेरे लिए एक प्रश्न-चिह्न प्रस्तुत करने में समर्थ हुई। जो कवयित्री देखने में इतनी गम्भीर है वह यों रो भी सकती है क्या? यह था प्रश्न। इसका उत्तर कभी मैं यों देने का यत्न करता—इसमें कठिन होने की क्या बात है? इसे कहते हैं एक प्रश्न को दूसरे प्रश्न द्वारा पराजित करने का तर्क। यही तो मैं कर सकता था। बार-बार देहरादून में देखा हुआ उनका वह रूप सामने आ जाता जिस पर गाम्भीर्य की गहरी तहें देखने में समर्थ हुआ था—हँसी तो जैसे उन्हें छू तक न गई थी।

कई बार मुझे उस पंजाबी लोकोक्ति का ध्यान आता जिसमें कहा गया था—इतना मत हँसो, रोना पड़ेगा। बस, मैं यही सोच लेता कि महादेवी ने भी हँसने का अपराध किया होगा कभी न कभी—उसी का यह परिणाम है कि उन्हें कविता में रोना पड़ रहा है।

उनसे पहली भेंट के पाँच साल बाद मैं बम्बई में था। सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी मासिक 'एरियन पाथ' में महादेवी की पुस्तक 'सान्ध्य गीत' आलोचना के लिए आई। इस पत्र के सम्पादक श्री वाडिया ने यह पुस्तक आलोचना के लिए मुझे दी। मैंने इसे लेते समय सबसे ज़्यादा यही सोच लिया था—लीजिए, महादेवी के दर्शन का एक और अवसर हाथ आया।

'सान्ध्य गीत' का प्रकाशन मुझे बहुत सुन्दर लगा। इसे बड़े गर्व से किसी भी भाषा के प्रकाशनों के सम्मुख रखा जा सकता था। अनेक चित्र इस प्रकाशन की

विशेषता थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कवयित्री ने स्वयं तूलिका से काम लिया था। कवयित्री और चित्रलेख के व्यक्तित्वों का सम्मिश्रण मेरे मन की गहराइयों को कई दिन तक गुदगुदाता रहा।

एक दिन सहसा श्री वाडिया से भेंट हो गई। बोले, "वह आलोचना लाइए।"

मैंने कहा, "अभी तो 'सान्ध्य गीत' को पढ़ रहा हूँ बराबर।"

वह चमककर बोले, "आप उसे पढ़ रहे हैं? इस तरह तो आप उससे प्रभावित हो जाएँगे।"

मैं ज़रा घबराया। उन्होंने हँसकर बताया कि यदि कोई आलोचक पुस्तक पर इतना समय लगाए तो कैसे काम चलेगा। सबसे बड़ी कठिनाई उनकी दृष्टि में यही थी कि यदि आलोचक किसी पुस्तक पर भावुक होकर रीझ उठे तो उसमें वह तटस्थ बुद्धि कैसे काम कर सकती है जो किसी भी नाप-तोल के लिए आवश्यक होती है और विशेष रूप से उस अवस्था में जब कि सही-सही नापतोल का सवाल हो।

खैर, मैंने किसी तरह बात को समेटते हुए शीघ्र ही 'सान्ध्य गीत' की आलोचना लिखने का वचन दिया।

सच बात तो यह थी कि मैं व्यवसायी आलोचक न था और मेरे लिए यह बिलकुल कठिन था कि पुस्तक के पन्ने इधर-उधर से पलटकर कुछ लिख डालूँ।

अगस्त, 1937 के 'एरियन पाथ' में प्रकाशित 'सान्ध्य गीत' की आलोचना को हिन्दी रूप में यहाँ प्रस्तुत करने की बात अप्रासंगिक न होगी। मैंने लिखा था—

"आधुनिक हिन्दी कविता महादेवी वर्मा पर गर्व कर सकती है। उनमें बड़ी प्रतिभा है। उनकी तीन पुस्तकें—'नीहार', 'रश्मि' और 'नीरजा' प्रशंसा प्राप्त कर चुकी हैं। अब वह अपनी नई पुस्तक 'सान्ध्य गीत' के साथ हमारे सम्मुख आती हैं। इसमें पैंतालीस गीत उपलब्ध हैं। पुस्तक का नाम झट से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इसी नाम की पुस्तक का स्मरण दिला जाता है। अब तक महादेवी वर्मा से हम एक प्रतिभामयी कवयित्री के रूप में परिचित थे, पर अब पता चला कि उन्हें रंग और रेखा पर भी पूरा अधिकार है। उनके छः रंगीन चित्रों और अनेक रेखा-चित्रों पर हम मुग्ध हो उठते हैं जिनके द्वारा इस पुस्तक को सजाया गया है।

"प्रस्तावना में कवयित्री ने अपने इस विषय में लिखा है। कवयित्री ने अपनी तुलना उस समृद्ध प्रवासी से नहीं की जो आशातीत विभूति लेकर घर लौटता है और अपरिचित भी परिचितों के समान पूछ बैठते हैं, 'क्या तुम वही हो?' कवयित्री ने अपनी उपमा उस सम्बलहीन वामन से दी है जिसे अपनी सीमाएँ मालूम हैं और जो अपने घर का द्वार छोड़कर दूर जाने का साहस नहीं करता। उसने स्वयं स्वीकार किया है कि जब 'नीहार' के धुंधलेपन में उसने हिन्दी कविता के मन्दिर में प्रवेश किया वह सहमी हुई-सी थी। इस लाज-संकोच में वह स्वतन्त्रता

से तो आगे कैसे जा सकती थी ? पीछे लौटने का प्रश्न भी न उठा। उसका हृदय यहीं रम गया। अनेक प्रमुख हिन्दी लेखकों ने उसे देखकर ही उसकी सीमाओं को भाँप लिया होगा और उसके बारे में अधिक जानने का उनका कुतूहल भी मिट गया। आगे चलकर कवयित्री अपने वक्तव्य में कहती है कि 'नीहार' के रचना-काल में उसकी अवस्था उस बालक की-सी थी जो उषा को देख सकता है, पकड़ नहीं सकता और यों उसे एक विचित्र-सी वेदना होती है। फिर वह समय आया जब उसे जीवन के सुख-दुख में सामंजस्य नज़र आने लगा और उसने 'नीरजा' की रचना की। सुख-दुख के उसी आध्यात्मिक सामंजस्य से इन सान्ध्य-गीतों की सृष्टि हुई है।

"कवयित्री ने तूलिका और रंग के प्रति अपने आकर्षण का इतिहास भी छुआ है। वह हमें बचपन की ओर ले जाती है। हम उसे माँ का सिन्दूर चुराकर एक कोने में बैठे देखते हैं, जहाँ वह फर्श पर इस सिन्दूर से चित्र बना रही है। फिर हम उसे एक वयोवृद्ध चित्रकार से चित्र बनाने का अभ्यास करते देखते हैं। अभी कुछ रेखाएँ खींचीं, अभी उनमें रंग भरने की उत्सुकता जग उठी। दिन में हम उसे अपने गुरु के निरीक्षण में चित्र बनाते देखते हैं, रात के समय वह दिन में बनाए चित्र पर दूसरे ही रंग लगाने के लिए उत्सुक नज़र आती हैं और अक्सर वह यों पहले चित्र को नष्ट कर डालती है। पर उसे इसमें भी आनन्द आता है। गीतों की चर्चा करते हुए हम कवयित्री को अपनी उपमा संध्या के आकाश से देते देखते हैं, वह अपने स्वप्नों की उपमा रंग-बिरंगे मेघों से देती है। सुख-दुख उसे उन पक्षियों के रूप में नज़र आते हैं, जो संध्या समय अपने-अपने नीड़ की ओर लौटते हैं। तब वह पूछती है—

'क्या न तुमने दीप बाला ?
क्या न इसके शीत अधरों—
से लगाई अमर ज्वाला ?'

"टिमटिमाते तारों में वह अपना इतिहास खोजती है, मधु बयार नव-जीवन का सन्देश लाती है। कभी वेदना उसके मन पर छा जाती है और यह 'नीर भरी दुख की बदरी' से अपनी तुलना करने लगती है। आँसू ही उसके प्रिय सखा हैं। फिग पग-पग पर संगीत प्रतिध्वनित हो उठता है और वह गायक को सम्बोधन करती है। दीपक राग के स्पर्श से सभी दीपक जल उठते हैं। फिर जीवन के मन्दिर में कैसे सन्धकार रह सकता है ? रात का अन्धकार वेदना लाता है, भोर होने पर जीवन का उल्लास उभरता है। भोर होने पर किसी को सोना नहीं चाहिए। एक गीत यों आरम्भ होता है—

'चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ?
जाग तुझको दूर जाना !'

"यूनानी गाथा के एक पात्र के समान, जो जिस वस्तु को छता था, उसे

स्वर्ग में परिणत कर देता था, महादेवी वर्मा जीवन की यथार्थवादी वाणी की कविता में परिणत कर देती हैं जो कहीं न कहीं रहस्यवाद को छू लेती है। इसमें सदैव कला का चमत्कार रहता है। मुझे विश्वास है हिन्दी कविता के सभी पाठक 'सान्ध्य गीत' का हार्दिक स्वागत करेंगे।"

'सान्ध्य गीत' की कवयित्री के रूप में महादेवी ने वस्तुतः हिन्दी कविता का सिर ऊँचा किया। इन गीतों के साथ आधुनिक हिन्दी कविता में उस लोच और लालित्य का समावेश हुआ जिनके विना कोई भी गीत गायक के होठों पर थिरक नहीं सकता।

शायद मैं अपने पथ से थोड़ा दूर जा पड़ा, क्योंकि मैं महादेवी के व्यक्तित्व पर हा अपना समूचा ध्यान केन्द्रित करने जा रहा था। पर किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व को उसकी रचनाओं से एकदम अलग करके देखना न सहज है, न वांछनीय।

महादेवी की समूची कविता का अध्ययन करते समय 'सान्ध्य-गीत' के पश्चात हमारी दृष्टि 'दीप-शिखा' पर आ टिकती है। इसकी विशेषता यह है कि कवयित्री ने अपनी सभी रचनाएँ ब्लॉक द्वारा हस्तलिपि में ही प्रस्तुत की हैं। साथ ही इस संग्रह में कवयित्री की तूलिका द्वारा अंकित चित्र उसके व्यक्तित्व को हमारी दृष्टि में और भी ऊँचा उठा देते हैं। कविता में भी अधिक गहराई आ गई है। कवयित्री अपने ही जीवन की आवाज़ प्रस्तुत करती है और जिस ईमानदारी और सचाई से वह अपना स्वर छेड़ती है उस पर पाठक को सन्देह नहीं होता। पग-पग पर एक प्रतीक-सा उभरता है। इस कविता में इतनी क्षमता है कि जीवन को अपने पंखों में समेट ले।

जैसे हिम-मण्डित शिखरों को पार करता हुआ पक्षी ऋतु आने पर मैदानों की ओर चल पड़ता है और कुछ महीने मैदानों में गुजारकर ऋतु बदलने पर फिर से अपने देश की ओर उड़ चलता है—कुछ ऐसे ही महादेवी कभी लेखनी लेकर कविता लिखने बैठ जाती हैं तो कभी तूलिका लेकर चित्र अंकित करने लगती हैं।

'दीप-शिखा' के बारे में खटकने वाली बात यही है कि जो लोग हस्तलिपि पढ़ने के स्थान पर टाइप में छपी हुई लिपि पढ़ने के अभ्यस्त हैं, इसे पूरी तरह पढ़ नहीं पाते। अच्छा हो यदि 'दीप-शिखा' का एक संस्करण उनकी अन्य पुस्तकों की तरह छापे के टाइप में प्रस्तुत किया जा सके।

महादेवी का दूसरा कमाल यह है कि उन्होंने पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में लेखनी के प्रयोग किए हैं। गद्य लिखने से उनका बहुत वचाव हो गया है। क्योंकि मैं समझता हूँ कविता में जिस सामाजिक तत्त्व की कमी इस युग के पाठक को बुरी तरह खटक सकती है, वह उनके गद्य में नहीं खटकती। 'स्मृति की रेखाएँ,' 'अतीत के चलचित्र' और 'शृंखला की कड़ियाँ'—ये तीन पुस्तकें

महादेवी के गद्य की पताका फहराती हैं। इनमें संस्मरण और रेखाचित्रों का संग्रह मिलेगा। कविता में महादेवी एक आधुनिक मीरा के समान विरह का गान गाती हैं, यह और बात है कि मीरा के समान उनका 'प्रिय' सशरीर प्रतीत नहीं होता, बल्कि वह सकल ब्रह्माण्ड में रमी हुई किसी 'अदृश्य' शक्ति का प्रतीक है। जो हो, आज के युग में केवल व्यक्तिगत साधना की प्रयोगशाला में ही कविता को बन्द रखना उचित नहीं। युग की माँग क्या है? सामाजिक चेतना कवि से क्या चाहती है? अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना का महादेवी की कविता में एकदम अभाव है, क्योंकि उनके गीतों में तो बस, किसी अदृश्य 'प्रिय' को ही सम्बोधन किया जाता है। भाषा की कोमलता इन गीतों की विशेषता है। मानव-मन के तार छेड़ सकने की क्षमता भी है इन गीतों में, सुख-दुःख के स्वरों पर निराशा और वेदना का गहरा रंग उस अवस्था का परिचायक है जब कवयित्री बाहर देखने की बजाय भीतर देखना ही अधिक पसन्द करती है। पर महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्र सामाजिक तत्त्वों की पृष्ठभूमि में उभरते हैं और यों लगता है कि जो बात कवयित्री महादेवी न कह पाई वह इन संस्मरणों और रेखाचित्रों की लेखिका महा देवी ने बड़ी आसानी से कह दी।

मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि कविता और चित्रकला के क्षेत्र से कहीं अधिक संस्मरण और रेखाचित्र के क्षेत्र में महादेवी का दर्शन मुझे अधिक प्रिय लगता है।

बंगाल के अकाल की व्यथा से द्रवीभूत होकर महादेवी ने एक कविता लिखी थी। उन दिनों यदि महादेवी ने इस दिशा में कुछ और भी लिखा होता तो उनकी कविता को नई ही दिशा प्राप्त हो सकती थी।

बड़ी हैरानी होती है कि गीत लिखते समय महादेवी के मन को वे सब विचार क्यों नहीं छूते जो संस्मरण और रेखाचित्र लिखते समय छू-छू जाते हैं। जिस मेहतरानी को लेकर उन्होंने सुन्दर संस्मरण लिखा, क्या उसे कविता के क्षेत्र में एकदम 'अछूत' ही समझना चाहिए।

जहाज़ का काम है खुले पानी पर चलना, एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक जाना। इसी तरह कोई भी साहित्यकार, चाहे वह कवि हो या गद्य-लेखक, अपने साहित्य में सामग्री और शैली के प्रयोगों में यातायात का प्रयोग कहता रहे, यह वांछनीय है। इससे उसे समय-समय पर नई दिशा प्राप्त हो सकती है, और सच पूछा जाए तो सौ दिशाओं की एक दिशा है सामाजिक चेतना। यह न हो तो साहित्य का रंग नहीं जमता।

महादेवी के सम्बन्ध में हिन्दी के एक बड़े साहित्यकार ने कहा था—'इतनी-सी मटकी और उसमें मनों आँसू !' मैं समझता हूँ, आज के युग में महादेवी से यह शिकायत अवश्य की जानी चाहिए। उस साहित्यकार के मतानुसार महादेवी को अपने गीतों में इतना रोना नहीं चाहिए। महादेवी के गीतों में केवल रोना ही रोना

हो, यह बात नहीं। पर जिस चीज का अतिरेक अखरता है वह है एकमात्र 'प्रिय' की प्रतीक्षा। कवयित्री जन-जीवन की शृंखलाओं को कविता का विषय क्यों नहीं मानती ? अन्तराभिमुख अभिव्यक्ति के स्थान पर वह जन-जीवन की खुली अभिव्यक्ति से कविता को अनुप्राणित करने की बात क्यों स्वीकार नहीं करती ? ये प्रश्न हैं जो महादेवी से अवश्य पूछे जा सकते हैं। इस युग की अन्तर्राष्ट्रीय कविता में जो चेतना नज़र आती है, तुर्की कवि नाज़िम हिकमत और स्पेनी भाषा के कवि पाब्लो नेरूदा में जन-जीवन की प्रगति के लिए जो आग धधकती है उसका महादेवी की कविता में एकदम अभाव है।

सन् 1947 में एक बार महादेवी दिल्ली पधारीं। उन दिनों मुझे उनसे मिलने का अवसर मिला। पहली भेंट के बाद तक उनके साहित्य को पढ़कर जो चित्र मेरे मन पर अंकित हुआ था उससे यह कल्पना भी न कर सकता था कि महादेवी इतना खिलखिलाकर हँस सकती होंगी। वही खादी की सफेद धोती। यों लगा जैसे उनकी हँसी का रंग भी एकदम सफेद हो। यों लगा जैसे महादेवी की यह हँसी उस रुदन की ही प्रतिक्रिया हो जिसका समावेश उनके गीतों में हुआ है। कुछ हद तक तो उनकी हँसी चौंकाने वाली थी। जैसे इस हँसी का आविर्भाव एक जीवित प्राणी से नहीं, बल्कि एक 'आटोमैटिक मशीन' से रहा हो। इस बात का सन्देह मुझे यों हुआ कि 'निराला' जी को लेकर बात हो रही थी, और इस दुखद समाचार से मेरी आत्मा झकझोर-सी हो गई थी कि हिन्दी का युग-प्रवर्तक कवि 'निराला' पागल हो गया। उसे पागल किसने बनाया ? इस प्रश्न के उत्तर में महादेवी उन सभी लोगों को जिम्मेवार ठहराने में मुझसे सहमत थीं जिन्होंने इस कवि का अधिकाधिक शोषण किया और कभी भूलकर भी उस कमायी का न्यायपूर्ण अंश 'निराला' को देने की बात न सोची जो उन्हें कवि की रचनाओं से हुई। मैं समझता था कि बात बड़ी संजीदा है। पर महादेवी को इतनी हँसी आ रही थी, जैसे एकदम नदी का बाँध टूट गया हो और हँसी की बाढ़ अब रुक न सकती हो।

इससे अगले वर्ष या उससे थोड़ा और बाद महादेवी दोबारा दिल्ली पधारीं। वही खादी की सफेद धोती। मैंने महाश्वेता को झुककर प्रणाम किया। दिल्ली की सुप्रसिद्ध कहानी-लेखिका सत्यवती मल्लिक ने अपने निवास-स्थान पर महादेवी को आमंत्रित किया था और समय से पूर्व सूचना मिलने पर सवेरे-सवेरे मैं भी वहाँ जा पहुँचा।

बहुत-सी बातें हुईं। घूम-फिरकर गीत की टेक यों उभरती—'तुम्हारी दिल्ली हमें तो पसन्द नहीं !' मैं कहना चाहता था —'महाश्वेता, क्या यही बात तुम्हारी किसी कविता की दागवेल नहीं डाल सकती ?'

इस अवसर पर मैंने आग्रह किया कि उनका एक फोटो अवश्य ले लूँ। मैंने अपना कैमरा साथ रख छोड़ा था। वह बोलीं, "फोटो तो ले लो, छपवाना मत !" मैंने वचन दिया कि अनुमति के बिना यह फोटो कहीं नहीं भेजा जाएगा। खैर,

मैंने दो फोटो लिये—एक महादेवी का और एक सत्यवतीजी के साथ।

फोटो खींचने के बाद मैंने 'आजकल' के लिए कविता माँगी। वैसे तो मुझे स्वयं हँसी आ गई। क्योंकि मैं जानता था कि वह क्या उत्तर देंगी। वही हुआ भी। बोलीं, "सरकारी पत्र में मेरी कविता कैसे छपेगी ?"

वह जल्दी में थीं। उसी दिन उन्हें राष्ट्रपति से मिलना था। इसलिए बातचीत में विलम्बित लय तो न रह सकती थी। जो बातें हुईं उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण विषय था कॉपीराइट का प्रश्न। इस सम्बन्ध में उनका आग्रह यही था कि लेखक के अधिकार सुरक्षित रखने का उचित प्रबन्ध किया जाए जिससे प्रकाशकों को इतनी हिम्मत न हो कि मनमानी किया करें और लेखक के शोषण द्वारा अपने महल खड़े करते रहें।

मैं उन्हें नीचे कार तक पहुँचाने गया। कार में बैठते ही वह खिलखिलाकर हँसीं। उस समय मैं उस गाम्भीर्य की कल्पना भी न कर सकता था, जिसका अनुभव मुझे पहली भेंट में हुआ था। सच पूछो तो कार के दूर निकल जाने पर भी मुझे महाश्वेता की खादी की सफेद धोती और मुख पर उससे भी कहीं अधिक सफेद-सी हँसी का आभास होता रहा, जैसे महाश्वेता का रूप हवा की लहरों पर मूर्तिमान हो उठा हो !

उस दिन मैं घर लौटा तो न जाने कैसे यह विचार मन पर हथौड़ी-सी चलाने लगा कि जहाँ कुछ व्यक्ति मेंटलपीस पर रखे हुए नक्काशीदार फूलदान की तरह होते हैं वहाँ कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनकी उपमा थर्मामीटर से दी जा सके। महादेवी को इस दूसरी श्रेणी में बड़ी आसानी से रखा जा सकता है—इस विचार से मुझे सन्तोष हुआ क्योंकि मेरे देखने में ऐसे लेखक बहुत कम आए थे जो लेखनी से थोड़ा अवकाश लेकर समकालीन लेखकों के अधिकारों के लिए 'कॉपीराइट' के विषय में इतने चिन्तित नज़र आते हों।

फिर बहुत दिनों तक महादेवी से भेंट न हुई। इस बीच मैं यही कर सकता था कि 'आजकल' के लिए महादेवी से एकाध कविता का तकाज़ा करूँ। न कभी पत्र का उत्तर आया, न कभी कविता प्राप्त हुई। संस्मरण या रेखाचित्र माँगने का तो ऐसी अवस्था में कैसे साहस कर सकता था ?

इसी वर्ष की बात है। एक दिन अचानक इलाहाबाद से तार मिला। यह महादेवी का तार था। साहित्यकार संसद् के वार्षिक अधिवेशन पर पहुँचने का आमंत्रण।

मैं इलाहाबाद पहुँचा। साथ में श्रीमती को लिया और नन्ही अलका को। साहित्यकार संसद में गंगा के किनारे जिस महादेवी को देखा उसे भी महाश्वेता ही कहा जा सकता था। वही खादी की सफेद धोती। मुख पर हँसी—वह भी उतनी ही सफेद जितनी कि किसी भी महाश्वेता के मुख पर शोभा दे सकती है और नीचे गंगा की पावन लहरें।

दूसरे कई प्रान्तों से भी साहित्यकारों को बुलाया गया था। भीड़-भड़क्के में महादेवी को इतनी फ़ुरसत न थी कि किसी एक व्यक्ति से खुलकर बात कर सकें। पर जिस रात संगीत और नृत्य का कार्यक्रम था उस दिन महादेवी मेरे समीप ही आ बैठीं। सभा में कुछ युवकों ने फिक्रे कसने की प्रवृत्ति दिखाई। महादेवी ने उन्हें वह डाँट पिलाई कि वे भी क्या याद रखेंगे। मैंने देखा कि महादेवी की एक ही डाँट से फिर किसी युवक को चूँ-चरा करने की हिम्मत न हुई और संगीत तथा नृत्य का कार्यक्रम निर्विघ्न समाप्त हुआ।

एक दिन सवेरे ही संगम-स्नान का कार्यक्रम रखा गया। जिस बस में अनेक साहित्यकारों को संगम ले जाने की व्यवस्था की गई थी उसी में महादेवी भी बैठी थीं, जिस आत्मीयता का परिचय इस बस में मिला वह पहले कभी नहीं प्राप्त हुआ था।

संगम पहुँचकर नौका में सभी लोग एक साथ सवार हुए। मैंने देखा कि महादेवी छोटे-बड़े प्रत्येक साहित्यकार के प्रति बड़ी बहन का स्नेह रखती हैं। नन्हीं अलका को भी उनका स्नेह प्राप्त हुआ।

स्नान के लिए वह मेरी पत्नी को अपने साथ ले जाना चाहती थीं। पर मेरी पत्नी गंगा पर पहुँचकर भी गंगा-स्नान का पुण्य प्राप्त करने के लिए राजी न हुई। महादेवी यह देखकर खुश हुईं कि नन्हीं अलका कपड़े उतारने की जिद कर रही है और गंगा-स्नान का महत्त्व न समझते हुए भी स्नान के लिए उत्सुक हो उठी है।

स्नान के पश्चात् गंगा के किनारे तिलक लगाने वाले एक ब्राह्मण के स्थान पर रुककर महादेवी ने स्वयं अपने हाथ से प्रत्येक साहित्यकार के माथे पर चन्दन का तिलक लगाया। मैं भी उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में था जिनके माथे पर महाश्वेता ने चन्दन का तिलक लगाया।

फिर स्वयं महाश्वेता के माथे पर गंगा के ब्राह्मण ने तिलक लगाया। महादेवी का वह रूप क्या कभी भूलने की वस्तु है? मैंने कैमरा खोला और झट से शटर दबा दिया। यह सोचकर मैं खुशी से उछल पड़ा कि इस प्रकाश में यह फोटो अवश्य ठीक आया होगा, और हुआ भी यही—'गाम्भीर्य की मूर्ति' कुछ ऐसा ही शीर्षक हो सकता है इस फोटो का।

अगले दिन कौशाम्बी यात्रा का कार्यक्रम था। कौशाम्बी में एक बार फिर मुझे महाश्वेता का फोटो लेने का अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रा में बस के धचकों ने शरीर की एक-एक कल हिला डाली, साथ ही महाश्वेता के क़हक़हे मन की गहराइयों में गूँजते चले गए।

साहित्यकार संसद् के अधिवेशन से कुछ ही दिनों बाद दिल्ली में संस्कृति-संगम का अधिवेशन हुआ तो लालकिले में महादेवी के दर्शन हुए। वह भी अचानक। रात के गहरे अँधियारे में बिजली का प्रकाश पर्याप्त न होने पर भी मैंने सड़क पर

तीन स्त्रियों को आते देखा। मैं आ रहा था और वे किले के बाहर की ओर जाने के लिए मेरे पास से गुज़र गईं। पीछे से अचानक महादेवी की आवाज़ कान में पड़ी। मैं लपककर मुड़ा। क्षमा याचना की। मैंने कहा—"मैं देख ही नहीं पाया था।" "अब आप क्यों देखने लगे?" महादेवी कह रह थीं, "इलाहाबाद से लौटकर पत्र तक न लिखा कि दिल्ली पहुँच गए।"

मैं कहना चाहता था कि सचमुच मुझसे बड़ी भूल हुई। साथ ही मैं यह भी कहना चाहता था, 'ओ महाश्वेता, क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यही प्रश्न क्या किसी यथार्थवादी कविता का विषय नहीं बन सकता?'

मैं उन्हें कार तक छोड़ने गया। पता चला कि ये उसी रात इलाहाबाद के लिए गाड़ी पकड़ने जा रही हैं। सच कहता हूँ लालकिले के अँधियारे में महाश्वेता का व्यक्तित्व लालकिले की दीवारों से भी ऊँचा प्रतीत हुआ। साथ की दोनों स्त्रियाँ तो उनके व्यक्तित्व से इतनी प्रभावित थीं कि उनके वास्तविक क़द कुछ-कुछ कम-से दिखाई देने लगे।

महादेवी के व्यक्तित्व में जहाँ इस वस्तु का आभास होता है कि इस स्त्री ने अपने को छोटा मानकर ऊँचा उठने के लिए निरन्तर प्रयत्न किया है, वहाँ उनकी सचाई और ईमानदारी का रंग सदैव अपनी सात्विकता को स्थिर रखता है।

महादेवी के व्यक्तित्व की छाप उनके समकालीन साहित्यकारों ने मुक्त-कंठ से स्वीकार की है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक बार साहित्यकार संसद् में 'दिनकर' जी का अभिनन्दन करने के लिए आयोजित एक सभा में भाषण देते हुए ठीक ही कहा था—"मेरी प्रयाग-यात्रा केवल संगम-स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिए मुझे सरस्वती (महादेवी) के दर्शनों के लिए प्रयाग महिला-विद्यापीठ जाना पड़ता है। संगम में कुछ फूल-अक्षत भी चढ़ाना पड़ता है, पर सरस्वती के मन्दिर में कुछ प्रसाद मिलता है। संसद् हिन्दी के लिए उन्हीं का प्रसाद है।"

हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि निराला ने एक स्थल पर महादेवी के व्यक्तित्व पर अर्घ्य चढ़ाते हुए लिखा है—

"हिन्दी के विशाल मन्दिर की वीणा-पाणी,
स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महादेवी ने अपनी कविता में जिस व्यक्तिगत साधना की बात उठाई है उसका महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जब वे कहती हैं—

"दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अकम्पित।
पथ न भूले एक पग भी
पर न खोए लघु विहग भी
स्निग्ध लौ की तूलिका से आँक सब की छाँह उज्ज्वल।"

तो हम उनके शब्दों में एक ऐसे व्यक्ति की साधना देख सकते हैं जिसमें जन-कल्याण की अटूट भावना भरी हुई है। जन-कल्याण की इसी अटूट भावना से प्रेरित होकर महादेवी ने इलाहाबाद में 'साहित्यकार संसद्' की स्थापना करने के लिए अनथक परिश्रम किया। गंगा के किनारे सुन्दर वातावरण में संसद् के लिए स्थान चुना और संसद् के भवन का निर्माण कराया।

महाश्वेता महादेवी की कविता एक ओर रखिए, उनकी तूलिका द्वारा अंकित चित्र दूसरी ओर रखिए, संस्मरण और रेखाचित्र एक ओर रखिए—और साहित्यकार संसद् के लिए उनकी साधना को अलग से देखिए। यह कहना कठिन है कि इनमें से किसी भी वस्तु को दूसरी वस्तुओं से अलग हटाया जा सकता है, क्योंकि वे सभी एक-दूसरे की पूरक हैं। सर्वत्र एक ही व्यक्तित्व की छाप नज़र आती है—वह व्यक्तित्व जिसे दीपक की तरह जलते रहने की चाह है, जिसे अँधियारे में प्रकाश की रेखाओं द्वारा एक नूतन चित्र अंकित करने की चाह है।

अभी-अभी एक मित्र ने बात सुनाई कि महादेवी की एक विशेषता यह भी है कि वह अपने यहाँ दर्पण नहीं रखतीं। मालूम नहीं यह बात कहाँ तक ठीक है। महादेवी मिलेंगी तो अब वे शायद इस बारे में पूछने का साहस कर सकें। ऐसी प्रत्येक बात जो किसी व्यक्ति के चरित्र में ही नहीं, उसके दृष्टिकोण में भी कोई नूतन रंग भर सकती है, मेरे लिए विशेष रूप से अध्ययन का विषय रही है। महादेवी का व्यक्तित्व बहुमुखी है—उनकी महाश्वेता प्रतिभा के समान ही बहुमुखी।

3

श्रीमती महादेवी वर्मा (एक रेखाचित्र)

शिवचन्द्रर नागर

['महादेवी जी की पलकों की ओट में करुणा के अनन्त आँसू हैं और उनके अधरों की ओट में संसार को देने के लिए हँसी का अक्षय भण्डार। इन आँसुओं को उनके काव्य में अभिव्यक्ति मिली है और इस हँसी को उनके जीवन में।

महादेवी जी में दम्भ-जैसी कोई वस्तु नहीं, पर एक कलाकार का-सा स्वाभिमान है।

जो कोई भी अपनी समस्या लेकर इनके पास पहुँचा है, उसकी सहायता के लिए यह सदैव तैयार रही हैं। इनके यहाँ से दीनता कभी भी निराश नहीं लौटी।

महादेवी जी की क्रियाशीलता और सृजनात्मकता केवल काव्य और चित्रों तक ही सीमित नहीं। वह जहाँ एक ओर कल्पना के पंखों से काव्य के स्वप्निल नभ में विचरण करने वाली कवयित्री हैं वहाँ, दूसरी ओर इस धरा की पीड़ा को अपने अन्तर में समेटती हुई, अपनी सहानुभूतिपूर्ण भावना से उनके आँसू पोंछती हुई, दोनों हाथों से दान देती हुई दानेश्वरी, वरदायिनी महादेवी भी हैं।']

जब हम किसी कलाकार की कोई कृति पढ़ते हैं या देखते हैं तो उसमें हम उसके आंतरिक व्यक्तित्व की छाया पाते हैं। यदि उस कलाकार को हमने नहीं देखा तो उसी छाया के बल पर हमारी कल्पना उस कलाकार की मूर्ति खड़ी करने लगती है। लगभग पाँच वर्ष हुए, मैंने महादेवी जी की 'यामा' पढ़ी थी। मैं उसे कितना समझा और कितना नहीं, यह तो मुझे याद नहीं, पर हाँ, पढ़कर मुझे ऐसा अवश्य लगा था कि इस कवयित्री के प्राण करुणा से सिक्त हैं और अन्तर-पीड़ा से ओत-प्रोत। इसी के बल पर मैं कल्पना करने लगा कि वह कैसी होंगी?

मेरी कल्पना के क्षितिज पर आँसुओं से डबडबाए दो नेत्र आ खड़े हुए और उन्हीं के साथ मैंने एक गम्भीर मुद्रा वाली महिला का चित्र अपनी कल्पना में बना लिया। अब मैं जब कभी 'यामा' के पन्ने पलटता, या संध्या समय 'सांध्य-गीत' के गीत गुनगुनाता तो मेरी किशोर-कल्पना में वही मूर्ति विचरण किया करती।

महादेवी जी के प्रथम दर्शन

पर सत्य कल्पना से बिलकुल भिन्न होता है। ऐसा ही यहाँ भी हुआ। जब मैं महादेवी जी से सबसे पहली बार इनके निवास स्थान—नं० 1. एलगिन रोड पर मिला तो देखा कि खादी के श्वेत वस्त्रों में एक महिला ड्राइंग रूम के नीले पर्दों के बीच से आकर सोफ़े पर बैठ गई थी, जिसके अधरों से हास फूटा पड़ रहा था और जिसके नेत्रों से छलकी पड़ रही थी प्रतिभा की सुधा-धारा। आँखें अधिक काली नहीं थीं और न अधिक बड़ी ही, पर फिर भी उनमें से निकलती हुई सात्विकता की किरणें सामने वाले के मन में एक आदर-भावना जाग्रत करती थीं। इस महिला का रंग गेहुँआ था और उसमें मिला हुआ हल्का पीलापन उनकी अस्वस्थता का परिचय दे रहा था (उन दिनों वे अस्वस्थ थीं)। चेहरा गोल और हँसमुख था। हम उन्हें शारीरिक दृष्टि से सुन्दर नहीं कह सकते, फिर भी उनके मुख पर आंतरिक सौन्दर्य की आभा विराज रही थी। उनके बाल गहरे काले थे और ध्यानपूर्वक देखने पर ऐसा लगता था जैसे हाथ से ही उसका विभाजन कर ऊपर को कर लिया गया हो। खादी के श्वेत परिधान में, तिरंगे उपधानों के सहारे बैठी हुई वह ऐसी लग रही थीं जैसे कोई संसार से विरक्त तपस्विनी साधिका बैठी हो। वह महिला थीं श्री श्रीमती महादेवी वर्मा।

उस दिन उनसे केवल दस-पन्द्रह मिनट बातचीत हुई। इसके उपरांत जब मैं घर लौटा तो मुझे ऐसा लगा जैसे उन्होंने मेरा अंतर अपनी हँसी से भर दिया हो और मेरा मस्तिष्क अपनी बातचीत से। उस दिन जितनी देर मैं वहाँ बैठा रहा और बातचीत हुई, उन सबको यदि किसी विज्ञान यंत्र द्वारा वातावरण में से पकड़ लिया जाए और फिर उसका विश्लेषण किया जाए तो विश्लेषक को पता लगेगा कि उसमें आधी हँसी थी और आधी बातचीत। कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने जाए और वह कितना ही उदास क्यों न हो, वह अधरों पर मुस्कान लिए लौटेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। अपने यहाँ आये हुए अतिथियों के लिए उनके पास हँसी का अक्षय भण्डार है। पर जिस कवयित्री का काव्य वेदना और करुणा से भीगा हुआ है उसके पास इतनी हँसी कहाँ से आई। यह प्रश्न अनेकों के मन में उठा होगा और भविष्य में उठेगा भी, पर सत्य दोनों ही बातें हैं। और सत्य के अपने-अपने अध्ययन को लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्त किया है।

उनकी अनोखी हँसी

कुछ लोगों का कहना है कि यह हँसी उनके अन्तर की हँसी नहीं, यह तो अपने अन्तर की पीड़ा को संसार के व्यक्तियों से छिपाने के लिए केवल एक कृत्रिम आवरण मात्र है; पर यदि यह हँसी उनके अन्तर की हँसी न होती तो उसमें अस्वाभाविकता आ जाती और ऐसी हँसी से सामनेवाले का मन ऊब जाना अधिक सम्भव था। पर मैंने एक नहीं अनेकों बार देखा है, उनकी हँसी में न तो अस्वाभा-

विकता है और न कोई ऐसी बात कि सामनेवाले का मन ऊब जाए। बल्कि उनकी हँसी तो बातचीत को और भी सरस और सुन्दर बना देने वाली है।

किसी ने कहीं महादेवी जी की हँसी के विषय में कहा है कि इनकी हँसी निरर्थक है। सच बात तो यह है कि महादेवी जी का निरर्थक तो कुछ भी नहीं और फिर हँसी तो बहुत बड़ी चीज़ है। उनकी हँसी बातचीत के साथ-साथ चलती है, कहीं वह बातचीत के आशय से सम्बन्धित भूमिका बनाती है, और कहीं पिछली बातचीत को बल देने के लिए आती है और कहीं विषय के अनुसार बातचीत के साथ-साथ चलती है। उनकी हँसी कभी भी बातचीत की धारा से दूर नहीं जा पड़ती इसलिए वह निरर्थक नहीं, बल्कि बातचीत को अधिक प्रभावशाली बना देने वाली है।

अब तीसरी बात यह है कि उनकी हँसी कहीं ऐसी तो नहीं जैसे किसी ज्वालामुखी पर छिटकी हुई चाँदनी ? पर मैंने तो उन्हें जितनी बार देखा है, शान्त ही पाया है। महादेवी जी एक तो क्रोध करती ही नहीं और विवशतावश जब कभी करती भी हैं तो उनके मुख की रेखाएँ वक्र नहीं हो पातीं, फिर तो निश्चित् ही है कि उनके अन्तर में ज्वालामुखी-जैसी कोई चीज़ नहीं। एक बार उन्होंने कहा भी था कि "मेरे अन्तर में कोई ऐसी खरोंच नहीं जो संसार के किसी व्यक्ति से मिली हो।"

श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित महादेवी जी जब ज़मीन में फ़र्श पर पल्थी मारकर बैठ जाती हैं तो ऐसी ही लगती हैं जैसे शान्त और गम्भीर हिमालय की उच्चतम हिमाच्छादित श्रेणी का ऊपरी भाग काटकर किसीने पृथ्वी पर लाकर रख दिया हो। वास्तव में उनकी हँसी ऐसी ही है जैसे उसमें से फूटकर बहती हुई श्वेत पुष्पों की पावन मंदाकिनी।

उनके अधरों से फूटता हुआ अविरल मुक्तहास उस तरह है जैसे किसी शान्त भूधर के अंचल में कोई दूध-से श्वेत पारदर्शी जल का निर्झर फूट रहा हो और उसको धरा की रज मलिन न कर पाई हो। कोई भी व्यक्ति उनसे मिलने जाए तो यदि उसे और कुछ भी (फल, मिष्ठान्न, चाय इत्यादि) न मिले तो वह इस निर्झर में स्नान करने के सुख से वंचित न रह पाएगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

एक बार डाक्टर रमेशचन्द्र वर्मा मेरे साथ महादेवी जी से मिलने गए। लौटती बार रास्ते में वह अपने-आप ही कहने लगे कि "स्त्रियों का मुक्तहास मुझे अच्छा नहीं लगता, पर ऐसी वात्सल्यमयी हँसी मुझे जीवन में कभी नहीं मिली।" सचमुच महादेवी जी की हँसी निर्मल, निश्छल और अकृत्रिम है फिर चाहे वह अन्तर से फूटी हो या अधरों से।

बातचीत एक कला

बातचीत भी एक कला है और पश्चिम में इस कला का जितना महत्त्व समझा जाता है उतना अभी पूर्व में नहीं। यही कारण है कि हमारे यहाँ इस कला में बहुत

ही कम व्यक्ति दक्ष होते हैं। फिर भी अपने छोटे से जीवन में जितने सुन्दर बातचीत करने वाले स्त्री-पुरुषों के सम्पर्क में मैं आया हूँ, उनमें यह गुण महादेवी जी को सबसे अधिक मिला है। आप उनसे किसी विषय पर कहीं से बातचीत कीजिए, आपको निराश न होना पड़ेगा। मैंने कभी-कभी उनसे तीन-तीन घंटे तक बातचीत की है, पर मुझे यह पता नहीं रहा कि बातचीत में कितना समय बीत गया। सबसे बड़ा गुण उनमें यह है कि वह सहज भाव से थोड़ी देर में सामने वाले व्यक्ति की चेतना और बुद्धि के स्तर को ताड़ लेती हैं और फिर उसी स्तर पर उतरकर बातचीत करती हैं। यही कारण है कि सामने वाले को ऐसा लगता है कि मानो उनसे कभी का पुराना परिचय है।

वह अपने पांडित्य को किसी पर थोपती नहीं, और न अपने व्यक्तित्व को उसके चारों ओर छा देने का ही प्रयत्न करती हैं। चाहे सामनेवाला व्यक्ति पास के किसी गाँव का निरक्षर ग्रामीण हो या कोई कहीं का महापण्डित, उससे बातचीत करने में न तो वे घबराती ही हैं और न उसको घबरा डालने का ही प्रयत्न करती हैं।

वह सामनेवाले से उसकी भाषा में बातचीत करना चाहती हैं न कि अपनी भाषा में। यही कारण है कि इनको रसूलाबाद (जहाँ साहित्यकार संसद् भवन है) के सभी ग्रामीण तथा घाट के सभी मल्लाह जानते हैं। चाहे वे इनके महादेवी नाम से परिचित न हों, पर आप रसूलाबाद जाकर घाट पर किसी मल्लाह से पूछ लीजिए कि—"गुरुजी कहाँ रहती हैं?" तो वह तुरन्त आपको साहित्यकार-संसद् भवन (इनके निवास स्थान) पर पहुँचा देगा।

इन ग्रामीणों की कहानी वह सहानुभूति तथा मन से सुनती हैं, इसलिए उनमें उन्होंने एक ऐसा व्यक्ति पा लिया है, जिसके पास वे कभी भी विश्वास के साथ अपनी सुख-दुख की धरोहर रख सकते हैं। सचमुच महादेवी जी का मन इतना बड़ा है कि उसमें संसार-भर का दुख समा सकता है और संसार के लिए इनके पास इतनी हँसी है कि ये संसार के समस्त दुख का अपनी हँसी से विनिमय कर सकती हैं।

हाँ, मैं उनकी बातचीत की बात कर रहा था। जब वह विद्वानों से बात करती हैं तो बिना रुके हुए धाराप्रवाह इतना सुन्दर बोलती हैं कि यदि उसे ज्यों का त्यों लेखनी-बद्ध कर लिया जाए तो वह साहित्य की एक सुन्दर पुस्तक बन सकती है। यह तो रही उनकी बातचीत में व्यवस्था और भाव-गांभीर्य की बात। पर दूसरी विशेषता यह है कि आप उनसे जितनी बार भी बात करेंगे आपको भावों की और विचारों की नवीनता ही मिलेगी। नित्य-नवीनता इनकी बातचीत का प्राण है।

बातचीत करने वाले के पास यदि बातचीत करने के लिए कुछ भी न हो तो यह उसे बातचीत का सूत्र पकड़ा देती हैं और इस प्रकार उसे इस विचार-चक्र से मुक्ति मिल जाती है कि मैं क्या बात करूँ, क्या न करूँ।

मैंने महादेवी जी को कभी पढ़ाते हुए नहीं देखा, पर इनके बातचीत के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि महादेवी जी एक सफल अध्यापिका होंगी। बातचीत करना इनका स्वभाव है और यही कारण है कि अपनी बातचीत में ही यह काव्य और कला के गहन-से-गहन तत्त्वों को सहज-भाव से सरल-से-सरल भाषा में समझा देती हैं। अपनी बात को समझाने के लिए इनके पास कभी भी सुन्दर उदाहरणों तथा अनुकूल परिभाषाओं की कमी नहीं रहती।

इनकी बातचीत बड़ी प्रभावशाली होती है। बातचीत करने पर ऐसा लगता है कि सभी विषयों पर महादेवी जी के विचार बहुत सुलझे हुए हैं। इतने सुन्दर बातचीत करने वाले मैंने बहुत कम व्यक्ति देखे हैं।

किसी भी व्यक्ति के सम्पर्क में आप आइए, उसके व्यक्तित्व की महानता अथवा लघुता का परिचय इसी से मिलता है कि जितना आप उसके निकट आते-जाते हैं, आपके स्नेह, प्रेम, आदर या श्रद्धा की भावना बढ़ती जा रही है अथवा घटती जा रही है। महादेवी जी के सम्पर्क में आप आइए, आपके मन में आदर या श्रद्धा की भावना तो उनका पहला परिचय ही भर देगा, पर जैसे-जैसे आपका सम्पर्क बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे उस भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि उनके महान् व्यक्तित्व की परिचायक है।

मैं ऐसे एक-दो व्यक्तियों को जानता हूँ जो इनके पक्के विरोधी थे। पर जब वे एक बार इनसे मिल लिए और बातचीत करने पर इनके ड्राइंग रूम से बाहर निकले तो मैंने उनको इनकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते पाया। आगन्तुक के साथ इनका इतना सुन्दर व्यवहार होता है।

यह संभव है कि किसी व्यक्ति को इनके यहाँ से बार-बार लौटना पड़ा हो और इनके दर्शन न हो पाये हों, पर इनसे भेंट हो जाने पर कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो इनके यहाँ से मन भारी लिए लौटा है और यदि इन्हें पता लग जाए कि यह आदमी पहले चार-पाँच बार बिना मिले हुए लौट गया है तो एक ही वाक्य में ये उसके मन का जमा हुआ धुआँ भी धो डालती हैं।

कलात्मक बैठक

आप उनके ड्राइंग रूम में एक बार जाइए, पैर रखते ही आपका मन कह उठेगा कि यह किसी कलाकार का कमरा है। कमरे में रखे हुए चित्र, मूर्तियाँ और फूलों की व्यवस्था देखकर आप इनकी सुन्दर कलात्मक रुचि का अनुमान लगा सकते हैं। चित्रकार होने के नाते उनका रंगों का ज्ञान बड़ा ही विशद है। वह ठीक से जानती हैं कि किस रंग के साथ कौन-सा रंग अच्छा लगेगा और इस प्रकार उनके कमरे की व्यवस्था बहुत ही सुन्दर है।

वहाँ लगे हुए चित्र, वहाँ रखी हुई मूर्तियाँ सजीव-सी लगती हैं और वहाँ का सब कुछ ऐसा लगता है जैसे महादेवी जी की विचारधारा समझने के लिए वह एक

विशद पृष्ठभूमि हो। महात्मा बुद्ध, ईसामसीह, महात्मा गांधी और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर कदाचित् इनके आदर्श पुरुष हैं और सरस्वती तथा श्रीकृष्ण इनके उपास्य देवता हैं। इन्हीं की मूर्तियाँ वहाँ विराजती हैं। उनके ड्राइंग-रूम में से यदि सोफे और कुर्सियाँ निकाल दी जाएँ तो वह एक सुन्दर कला-मंदिर लगने लगे। वहाँ सदैव ही ऋषियों के आश्रम की-सी शान्ति विराजती रहती है।

महादेवी जी के सौन्दर्य ज्ञान की दूसरी अभिव्यक्ति आपको उनकी संस्था 'साहित्यकार-संसद्' जाने पर मिलेगी। वहाँ की फूलों की क्यारियाँ, उनका क्रम, और उनकी किस्में देखने पर आप कह उठेंगे कि किसी कुशल माली के हाथ का काम है, पर आप निश्चित समझिए कि वह कुशल माली महादेवी जी के अतिरिक्त और कोई नहीं।

मुझे तो ऐसा लगता है कि कदाचित् ही कोई ऐसा फूल अथवा कोई ऐसी चिड़िया हो जिसका नाम महादेवी जी न जानती हों। बहुत-से अंग्रेजी फूलों के उन्होंने अपने हिन्दुस्तानी नाम रख लिए हैं। वैसे तो इन्हें सभी फूल अच्छे लगते हैं पर कदाचित् रजनीगंधा तथा हरसिंगार इन्हें विशेष प्रिय हैं। एक बार मैंने एक खाली पंक्ति की ओर इंगित करते हुए कहा कि "इसमें गुलाब लगवा दीजिएगा।" वे बोलीं—"गुलाब को देखकर मुझे अधिक प्रसन्नता नहीं होती, क्योंकि यह फूल विदेश का है।"

विशाल परिवार

महादेवी जी ने गार्हस्थ्य स्वीकार नहीं किया और न अपने को उन्होंने किसी परिवार की परिधि में ही बाँधा, पर इसका अर्थ यह नहीं होता कि उनका परिवार है ही नहीं। उनका परिवार बड़ा ही विशाल है और उसकी परिधि में सभी जातियों तथा सभी उम्र के स्त्री-पुरुष ही नहीं आते बल्कि फूल, वृक्ष और चिड़ियाँ भी आती हैं। इनकी सहानुभूति विश्वव्यापी हो गई है। वह एक पेड़ को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर इसलिए नहीं लगातीं कि वह सूख न जाए। वह एक फूल को इसलिए नहीं तोड़तीं कि वह मुरझा न जाए। वह किसी भी जीव की मृत्यु, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, अपनी आँखों से देखना नहीं चाहतीं। मुझे याद है एक बार जब मेरे एक साथी महोदय ने कालीन पर चढ़े आते हुए एक चींटे को अँगुली से दूर फेंक दिया तो ये उसके मर जाने के डर से घबरा उठीं और दूसरी बार जब एक बार उनकी बिल्ली सुनयना ने इनकी आँखों के सामने एक जानवर की हत्या कर डाली तो इनकी आँखों में आँसू झलक आए और कहने लगीं कि "अब इस बिल्ली को अपने यहाँ नहीं रक्खूंगी।" तब से पता नहीं सुनयना कहाँ चली गई, मैंने उसे नहीं देखा।

विश्व के किसी कोने से किसी की भी पीड़ा की कहानी सुनकर इनका मन उसकी पीड़ा में डब जाता है। अपने द्वारा यह किसी को पीड़ा पहुँचाना भी नहीं

चाहतीं, इसीलिए वह कभी भी आदमी से खींचे जाने वाले रिक्शे में नहीं बैठतीं।

उनके विशाल परिवार में सभी जातियों के बहुत-से छोटे-छोटे बच्चे भी हैं और अपने मुंडन, कर्णछेदन तथा यज्ञोपवीत के अवसर पर ये महादेवी जी के खिलौनों तथा मिठाइयों से वंचित नहीं रह पाते।

महादेवीजी से मिलने आने वालों की संख्या बहुत अधिक है, कोई इन्हें 'जीजी' कहता है, किसी की ये 'दीदी' हैं और किसी की 'वा' (माँ) पर सबसे अधिक व्यक्ति इनको 'गुरुजी' कहने वाले हैं। इनसे मिलने आने वालों में विद्यार्थी तथा विद्यार्थिनियों की संख्या सबसे अधिक है। दूसरे नम्बर पर साहित्यिक तथा पत्रों के सम्पादक आते हैं तथा तीसरे नम्बर पर इधर-उधर के व्यक्ति।

महादेवी जी में दम्भ-जैसी कोई वस्तु नहीं, पर एक कलाकार का-सा स्वाभिमान है।

अधिकतर कवियों से आप उनकी कविता का अर्थ पूछने जाइए तो कह देंगे—"हमें याद नहीं हमने किस मूड में लिखी थी।" पर महादेवी जी में यह बात नहीं। मुझे याद है, एक बार एक विद्यार्थी घबराया हुआ अपनी पुस्तक लिए इनके कमरे में आया। इन्होंने पूछा—"क्यों ?"

"महादेवीजी यहीं रहती हैं ?" उसने पूछा।

"हाँ, भाई मैं ही हूँ, क्या काम है ?" महादेवी जी ने कहा।

"जी, आपकी एक कविता 'टूट गया यह दर्पण निर्मम' हमारी किताब में है। हमारे पंडित जी से भी इसका अर्थ नहीं आया और परसों को मेरा इम्तिहान है।"

इस पर मुझे तो हँसी आ गई पर, पर महादेवी जी बोलीं—

"अच्छा तो भाई, सुबह को आना, बता देंगे।"

यह तो एक विद्यार्थी की बात है। पर जो कोई भी अपनी समस्या लेकर इनके पास पहुँचा है उसकी सहायता के लिए ये सदैव तैयार रहीं हैं। इनके यहाँ से दीनता कभी भी निराश नहीं लौटी।

बाल्यावस्था से ही महादेवी जी की स्मृति बड़ी ही तीव्र रही है। यही कारण है कि अपने अध्ययन-काल में भी सदैव उनका नाम दर्जे की तेज़ विद्यार्थिनियों में रहा है। अब भी, रुपये-पैसे की ओर से उदासीन रहने के कारण, अपनी ताली-कुंजी तथा बटुआ तो चाहे भूल जाएँ, पर और कुछ नहीं भूलतीं।

महादेवीजी सीना-पिरोना, कातना-बुनना, काढ़ना, भोजन और मिठाई बनाना इत्यादि सभी घरेलू कलाओं में सिद्धहस्त हैं और ललित कलाओं में काव्य, संगीत और चित्रकला तीनों का वरदान इन्हें मिला है।

भाषाओं में इन्हें हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, पाली, प्राकृत, बँगला, गुजराती और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान है।

वेद, उपनिषद् और बौद्ध-साहित्य में उनकी विशेष रुचि है और इन्हीं तीनों

का प्रभाव इनके जीवन तथा काव्य में परिलक्षित होता है।

मुझे उनके काव्य अथवा साहित्य के विषय में यहाँ कुछ नहीं कहना, पर इसमें सन्देह नहीं वह हमारे भारतवर्ष के महान् कलाकारों में से एक हैं। उनके काव्य पर हिन्दी साहित्य को गर्व है और उनके चित्रों की निकोलिस रोरिक जैसे विश्व-विख्यात कलाकार ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

महादेवी जी की क्रियाशीलता और सृजनात्मकता केवल काव्य और चित्रों तक ही सीमित नहीं। वह जहाँ एक ओर कल्पना के पंखों से काव्य के स्वप्निल नभ में विचरण करने वाली कवयित्री हैं, वहाँ दूसरी ओर इस धरा की पीड़ा को अपने अन्तर में समेटती हुई, अपनी सहानुभूतिपूर्ण भावना से उनके आँसू पोंछती हुई दोनों हाथों से दान देती हुई, दानेश्वरी, वरदायिनी, महादेवी भी हैं।

राष्ट्र-सेविका

जब कभी देश में कोई देश-व्यापी आन्दोलन छिड़ा है अथवा देशवासियों पर कहीं कोई विपत्ति आ पड़ी है तो महादेवी जी ने केवल पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ और लेख देकर अपनी शाब्दिक सहानुभूति प्रकट नहीं की बल्कि सदैव अपना सक्रिय सहयोग दिया है।

इनके ड्राइंग-रूम को देखकर कौन अनुमान लगा सकता है कि इस महिला ने जेठ-असाढ़ की जलती हुई दोपहरी में पैदल चल उन गाँवों की धूल छानी होगी, जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्यशाही की गोलियों ने 1942 का आन्दोलन कुचलने के लिए बरबाद कर दिया था, जिनके आदमी गिरफ्तार कर लिए गए थे और जिनकी स्त्रियों तथा बच्चों को रोटी-कपड़े का भी ठिकाना न था। ऐसी अवस्था में कहीं से भी जुटाकर इन्होंने उन स्त्री-बच्चों को निरन्तर भोजन की सामग्री और कपड़ा पहुँचाया है और जलती हुई दोपहरी में गाँव की गरम-गरम धूल छानी है।

यह अधिकतर नगर में रही हैं और अब भी रहती हैं, पर गाँवों तथा गाँव वालों के विषय में बहुत कुछ जानती हैं। नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीणों से इनका अधिक परिचय है। अपना अध्ययन छोड़ने के उपरान्त इन्होंने अपने जीवन के बहुत-से रविवार ग्रामीणों के बीच में बिताए हैं।

महादेवीजी चाहे कुछ भी सहन कर लें पर उनसे दूसरे का दुःख नहीं देखा जाता। वह अपने को सदैव 'नीर भरी बदरी' सा चाहती हैं जिसके यहाँ से पीड़ा जनित दीनता की तृषा कभी निराश न लौटे। एक बार मैंने कहा कि "प्रत्येक व्यक्ति पर तो दया नहीं की जाती। पात्र, अपात्र भी तो देखना पड़ता है।" तो बड़े ही सहज-भाव से कहने लगीं कि "जब बदली बरसती है तो स्थान नहीं देखती।"

भारतवर्ष में होने वाली ऋतुओं में महादेवी जी को बरसात अत्यधिक प्रिय है, कदाचित् महादेवी जी ने बरसात में अपने जीवन की निकटता, साम्य और अपनापन पाकर उसमें अपने मन की सखी-भावना स्थापित कर ली है।

सन् 1942 की ही बात नहीं, जब बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा था तो उन्होंने अकाल पीड़ितों के लिए, कपड़े भोजन और दवाइयाँ इकट्ठी कीं। 'बंग-दर्शन' नामक पुस्तक का सम्पादन किया, जिसका पूरा रुपया अकाल पीड़ितों के सहायताकोष में गया था।

अब भी नोआखली पीड़ितों के लिए इन्होंने हिन्दी के लेखकों से रुपया इकट्ठा किया और लेखक-निधि के नाम से हिन्दी लेखकों की सहानुभूति के रूप में वहाँ भेजा था। पंजाब शरणार्थी फण्ड में भी ये सदैव कुछ-न-कुछ देती ही रहती हैं।

आँसू

महादेवीजी को सभी ने हँसते हुए देखा है, उनके आँसू कदाचित् ही किसी ने देखे हों ; पर मैं वह संध्या शायद कभी भी न भूल सकूँगा जब एक दिन नौकर ने बहुत से अखबार इनके सामने लाकर डाल दिए थे और पंजाब के हृदय-विदारक हिन्दू-मुस्लिम हत्याकाण्ड के समाचार पढ़कर इनके नेत्र सजल हो आए और उस वातावरण की गम्भीर उदासी बढ़ी आती हुई सन्ध्या की उदासी में मिल गई थी।

उनकी पलकों की ओट में करुणा के अनन्त आँसू हैं और उनके अधरों की ओट में संसार को देने के लिए हँसी का अक्षय भंडार। इन आँसुओं को उनके काव्य में अभिव्यक्ति मिली है और इस हँसी को इनके जीवन में।

करुणा में इनका विश्वास है, सहानुभूति इनका धर्म है और दानशीलता इनकी आदत।

इनके पास रुपया कभी भी नहीं जुड़ पाया, पर रुपये की कभी कमी भी नहीं पड़ी। रुपया जोड़ने की इनकी इच्छा भी नहीं। पहले जो रुपया इनको पिता जी से मिला था, वह तो इन्होंने आसपास के गाँवों में छोटी-छोटी पाठशालाएँ खोलने में लगा दिया था और अपने अध्यापन-काल में जो रुपया बचा, वह अब 'साहित्यकार संसद्' में लगा दिया। इन्होंने बहुत-से बड़े-बड़े कामों को हाथ लगाया है, पर धनाभाव के कारण इनका अभी तक कोई भी काम नहीं रुका।

महिला-विद्यापीठ, जिसकी ये प्रधान अध्यापिका हैं, इनकी आदर्श शिक्षा संस्था है और अपने जीवन का बहुत-कुछ समय इन्होंने भारतीय सांस्कृतिक सिद्धान्तों के आधार पर इसका निर्माण करने में लगाया है।

हिन्दी के साहित्यिकों की दशा सुधारने के लिए इन्होंने अन्य साहित्यिकों के साथ मिलकर 'साहित्यकार संसद्' नामक संस्था की स्थापना की है। इस संस्था का उद्देश्य साहित्यिकों को संगठित करना तथा असमर्थ साहित्यिकों को ऐसी सुविधाएँ देने अथवा दिलाने का है, जिनमें रहकर वे उत्तम तथा उच्च कोटि के साहित्य का सृजन कर सकें।

महिला विद्यापीठ, ग्रौर 'साहित्यकार संसद्' दोनों पर ही इनका माँ-जैसा स्नेह है।

राजनीतिज्ञों की तरह कलाकारों के स्मारक तथा कीर्ति-स्तम्भ खड़े नहीं किए जाते, पर महादेवी जी ने साहित्य ग्रौर समाज के क्षेत्र में सब-कुछ इतना किया है कि उनमें उनकी स्मृति तथा कीर्ति ग्रमरता की मुद्रा से मुद्रित होकर ग्रमिट ग्रक्षरों में ग्रंकित हो गई है।

महादेवीजी को दस साल हो गए, कहीं भी कवि-सम्मेलनों में कविता सुनाने तथा सभा-सोसाइटियों में बोलने नहीं जातीं। यही कारण है कि जहाँ रेडियो पर हम दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियों की कविताएँ सुन लेते हैं वहाँ महादेवी जी की कविताएँ उनके मुख से सुनने को नहीं मिलतीं। इसका ग्रर्थ ग्राप यह न लगाएँ कि महादेवी जी को गर्व ग्रथवा दर्प है, पर उनकी ऐसी धारणा है कि 'भीड़ में व्यक्ति को समझा नहीं जाता।' सभाग्रों की ग्रोर से सम्मान-पत्र तथा फूल-मालाएँ महादेवी जी को ग्रच्छी नहीं लगतीं।

महादेवीजी के सम्बन्ध में एक-दो बातें ऐसी हैं कि जिन्हें जानकर प्रत्येक साधारण व्यक्ति को ग्राश्चर्य होगा।

महादेवीजी ग्रपने विषय में कुछ नहीं पढ़तीं, लगभग सभी पत्र-पत्रिकाग्रों में इन पर ग्राए दिन ग्रनेकों लेख, ग्रालोचनाएँ ग्रौर कविताएँ निकलती रहती हैं, ग्रौर उनके सम्पादक ग्रथवा लेखक उनकी प्रतियाँ भी इनके पास भेज देते हैं। पर ये उन्हें कभी भी नहीं पढ़तीं, ग्रौर तो सब-कुछ पढ़तीं हैं, पर ग्रपने विषय में कुछ नहीं। ग्राप कहेंगे कि कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो ग्रपने विषय में दूसरों की धारणा नहीं जानना चाहता, पर महादेवी जी ऐसी ही हैं।

दर्पण-विमुखता

दूसरी बात तो ग्रौर भी विस्मित करने वाली है—महात्मा गांधी की तरह महादेवीजी कभी शीशा नहीं देखतीं। एक बार इनका एक चित्र एक साप्ताहिक में छपा था, मैंने कहा—"ग्रापका एक चित्र ग्रमुक साप्ताहिक में निकला है, पर वह ग्रापसे बिलकुल नहीं मिलता।"

मेरी बात पर ध्यान भी न देती हुई वे बोलीं—"मुझे तो पता नहीं, मिलता है या नहीं।"

मेरे पास वह साप्ताहिक था। मैंने उसका वह चित्र वाला पृष्ठ उनके सामने खोलते हुए कहा—"ग्राप चाहे शीशे में मिलाकर देख लीजिएगा।"

बड़े ही सहज-भाव से व्यंगपूर्ण हँसी हँसकर बोलीं—"तो भाई, ग्रब इसके लिए एक शीशा भी रखना होगा।"

ग्रपने बालों में कंघे का प्रयोग भी ये कदाचित् ही करती हों, पर शीशा तो इनके यहाँ निश्चित रूप से नहीं, हाँ—कोई छोटा-मोटा ग्रतिथियों के लिए रख

छोड़ा हो तो मैं नहीं कह सकता।

महादेवीजी काठ के एक कठोर तख्ते पर सोती हैं और बहुत कम सोती हैं। इनके अधिकांश साहित्य का सृजन भी रजनी के दूसरे याम में ही हुआ है। सभी तरह से ये साहित्य-साधिका यथार्थ में तपस्विनी है।

संसार के व्यक्तियों को देने के लिए आदर, स्नेह और वात्सल्य के अतिरिक्त इनके पास और कुछ नहीं; सभी के साथ इनका व्यवहार स्नेह सिक्त, कोमल और सुन्दर होता है, पर संसार में रहती हुई भी ये संसार से विरक्त-सी ही हैं। सांसारिक सम्बन्धों के प्रति इनका मन ऐसे ही है जैसे बालू-कणों के लिए कमल-दल।

'हिमवत्'

गत होलिकोत्सव के दिन जब महादेवीजी अपने जीवन के चालीस वर्ष पार कर इकतालीसवें वर्ष में प्रवेश कर रही थीं, तो इनके जन्म-दिवस पर मेरे एक श्रद्धास्पद मित्र ने अपनी 'बहन महादेवी को' निकोलिस रोरिक की एक पुस्तक भेजी थी, उसका नाम था 'हिमवत्'। तब मुझे ऐसा लगा था कि भेजने वाले ने शब्दों में अपने मन की बात न कहकर पुस्तक के नाम में अपनी भावना व्यक्त कर दी है। सचमुच महादेवी जी सभी तरह महान् हैं—हिमालय-सी महान्—हिमवत्···।

मैं जब कभी भी इस सात्विक, सौम्य और हँसमुख महिला से बातचीत कर अथवा दर्शनकर लौटा हूँ, तब प्रत्येक बार मुझे ऐसा लगा है कि मेरे मन और प्राणों ने आध्यात्मिक स्नान कर लिया है, आपको भी ऐसा लगेगा या नहीं कौन जाने ?

4

महादेवी जी से एक भेंट

भानुकुमार जैन

['महादेवीजी पारंगत हैं, व्यवहार कुशल हैं। उनमें लोक-संग्राहक शक्ति हैं। उनमें दिव्यता की झलक है। उनमें नारी की चहुँमुखी प्रतिभा निहित है। पर छायावादी अभिव्यक्ति से ऊपर उठकर, व्यष्टि की समस्याओं को सामाजिक परिणति देकर जिस दिन महादेवी जी लोक संघर्ष के लिए उद्यत होंगी, उसी दिन उनकी सार्थकता है। अहं का विलय ही मनुष्य को इस जीवन में सच्चा मोक्ष दिला सकता है।']

जवानी के प्रथम क्षणों में भावुकता का अंकुर जब फूटा था, मैंने महादेवीजी का अध्ययन पुस्तकों के जरिये किया था।

"अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली।
प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली।"

उपर्युक्त और अनेक पंक्तियाँ मुझे अब तक याद हैं। 'नीहार', 'रश्मि' और 'यामा' की भूमिकाओं की भावनाएँ मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हैं। महादेवीजी द्वारा 'चाँद' के सम्पादन-काल में दी गई अभिव्यक्तियों का भी, जो 'शृंखला की कड़ियाँ' नामक पुस्तक में आबद्ध हैं, खयाल रह गया है। महादेवीजी के गद्य 'स्मृति की रेखाएँ' मन को भा गए थे। महादेवीजी 'स्मृति की रेखाएँ' में और पद्य की अपेक्षा उनके लिखे गद्य में मुझे ज़्यादा पसन्द आई। वह गद्य में अन्तर्मुखी-मात्र न रहकर परोन्मुखी भी हो गई हैं। उनका संवेदन 'स्व' से 'अपर' हो गया है। महादेवीजी के चित्र, जो 'दीपशिखा' में अंकित हैं, मेरे सम्मोहन का कारण नहीं है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि कला को मैं पहचानता नहीं, कला का अंकन-चित्रण भर मैं नहीं कर सकता। रंगों के टेकनीक का विश्लेषण भी मैं नहीं कर सकूँगा; पर सफल कला की अभिव्यक्ति उसकी रेखाओं और रंगों से मुझे स्पष्ट मालूम हो जाती है—वह किसी की भी क्यों न हो और किसी भी स्कूल की क्यों न हो।

महादेवीजी को बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ में दीक्षान्त-भाषण देने के लिए मैंने कई बार आमन्त्रण दिए। खास व्यक्तियों से भी कहलवाया, पर उत्तर नदारद।

एक बार उन्हीं के स्कूल के तरीके से लिखने की सूझी। मैंने लिखा—'तुम्हें माँ कहूँ या बहन कहूँ ?' इस पर तुरन्त उत्तर गया। महादेवीजी के बारे में सुन रखा था कि वे खूब हँसोड़ हैं, निस्संकोच हैं।

1947 में मैं व्यवसाय के दौरे के सिलसिले में इलाहाबाद पहुँचा। व्यक्तित्व के आकर्षण के नाम पर जिनसे मैं कुछ अपनापन रखता आया हूँ, इलाहाबाद में सिर्फ दो ही व्यक्ति मेरे ध्यान में थे—एक डा० बेनीप्रसाद, जो अब इस लोक में नहीं हैं, और दूसरी श्री महादेवीजी। महादेवीजी को विद्यापीठ में दीक्षान्त-भाषण देने के लिए राजी करना था। इसलिए मैं प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की बगलवाली कोठी में उनसे मिला। जब मैं पहुँचा, तो दरवाज़े पर एक रिक्शा खड़ा था और अन्दर एक सज्जन बैठे महादेवी जी से बातें कर रहे थे। बँगले की रख-वाली पर एक अत्यन्त बूढ़ी अम्माँ दिखलाई पड़ीं, जिनका स्केच महादेवीजी ने 'स्मृति की रेखाएँ' में दे रखा है। उन्हीं को मैंने अपने नाम का पुर्जा दिया। आध घण्टा बगीची में चहल-कदमी की। स्थापत्य की कुछ मूर्तियाँ रखी थीं। एक और विद्यार्थी भी महादेवी जी के दर्शन के लिए किसी अन्य नगर से आया था।

जब आगन्तुक चले गए, तो मैं और वह विद्यार्थी अन्दर गए। उसने महादेवी जी की वन्दना की और मैंने नमस्कार किया। मेरे सामने उसने बातें नहीं की थीं; पर मेरा भाँपना सही निकला कि वह आफ़त का मारा महादेवीजी के यहाँ आश्रय लेने आया था। महादेवी जी प्रणतपाल हैं, भावुक मन की प्रश्रयशीला हैं।

मेरी कल्पना के अनुरूप एकमात्र नारी महादेवीजी ही मेरे देखने में आईं। उनमें कमी मात्र साहस, निश्चय और दृष्टिकोण की है। महादेवीजी अत्यन्त भावुक, गद्गद, उत्फुल्ल और प्रफुल्ल हैं; पर अन्तर-मन से दुखी हैं। उन्होंने निज का संसार 'स्व' से 'पर-अपर' तो किया; लेकिन समाज नहीं बनाया, जन की ओर वे उत्कीर्ण नहीं हुईं।

कमरे में 'दीपशिखा' के अंकित चित्र भित्ति पर टँगे थे। शान्त-रस की, दिव्य झलक की एक मूर्ति एक काँच की अलमारी में स्थापित थी। महादेवीजी की मनोभूमि का प्रखर चित्र उस सुसज्जित कमरे में शोभायमान था। महादेवीजी ने भावनामय स्वागत किया। जब वे बोलती हैं, तो उनकी वाचा की गति नहीं रुकती। श्रोता को मन्त्रमुग्ध की भाँति चुप रह जाना पड़ता है। वे इतनी प्रभावक हो उठती हैं कि उन्हें सुनते रहने को ही जी चाहता है। साहित्यकार-संसद्, निराला जी, पन्त जी, लोकायन और अन्य विषयों पर मैंने उनके वचन सुने। निराला जी के लिए तो वे अत्यन्त दुखी थीं। वे चाहती हैं कि निराला जी की जिम्मेदारी तमाम हिन्दी-जगत्—तमाम भारत—ले ले।

महादेवीजी ने मुझे निरालाजी के दर्शन कराए। तीसरे दिन 'साहित्यकार-संसद्' जाने का तय हुआ। दुर्भाग्य से बाढ़ आई हुई थी। मेरे बाल-बच्चे भी साथ

थे। उन्होंने तीन ताँगे किए। हम लोग संसद् गए। पास के गाँव से नाव में बैठकर संसद् के प्रांगण में हमें उतरना पड़ा। संसद् का बगीचा, बिजली के तार आदि सब कुछ जलमग्न था। नौकर को पहले ही सूचना दे दी गई थी। निरालाजी मकान के अन्दर थे। अंधियारे में उन्हें ढूँढ़ना पड़ा। महादेवीजी ने मुझे उनके पास ले जाकर मेरा परिचय कराया। मैंने नमस्कार किया। वे 'स्वगत मूड' में थे। कुछ देर बाद हम लोग कमरे से बाहर आकार दालान में बैठे। निरालाजी भी बाहर आ गए। वे स्वगत में कभी हिन्दी में, कभी अंग्रेजी में, कभी संस्कृत में और कभी बंगला में कुछ कह जाते थे। मैं क़रीब घंटे-भर तक उनकी इस प्रक्रिया को देखता रहा। लोगों ने न जाने उन्हें क्या समझ रखा है। मेरा विश्वास दूसरों के अनुभव से अलग है। निरालाजी सदा होश में हैं। मात्र वे खोये हुए हैं। मेरा मतलब है, उनकी उद्विग्नता गहरी है। हममें से कई कभी-कभी किसी गहरी दुश्चिन्ता या उद्विग्नता में इस तरह बैठे रहते हैं कि पास से गुजरने वाली बारात के बैण्ड-बाजे भी कान पर असर नहीं करते। निरालाजी ने कभी कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया, जिससे किसी की आत्मा को कष्ट हुआ हो या जिससे किसी का कुछ बिगड़ा हो। फिर उनके मन की स्थिति,जिसे लोग कुछ और कह बैठते हैं, उस रूप में सत्य कैसे मानी जा सकती है ?

निरालाजी ने मेरे सामने महादेवीजी से कहा—'देवीजी, आप चिन्ता न कीजिएगा। बिड़ला के बैंक में मेरा रुपया जमा है। मुझे वहाँ जाना-भर है हिसाब कर चुकता ले आना है। हमने सत्तर किताबें जो लिखी हैं, उनकी रायल्टी भी तो है।' फिर स्वगत अंग्रेज़ी और संस्कृत के संवाद वे बोल गए, जैसे आशुकवि पद्य-नाटक की रचना कर रहे हों। इधर-उधर घूम-फिरकर मेरी ओर मुखातिब होकर पूछ बैठे—'कहिए, कब आए आप ? देवीजी इन सबका स्वागत हो।' महादेवी जी ने घर पर नमकीन और मिठाई से स्वागत किया था और यहाँ भी पहले से इन्तजाम करवा दिया था। उनका खुद का स्वभाव और निरालाजी की प्रकृत आकांक्षा—जिसका पूर्व भान महादेवीजी को था ही और उनकी हर इच्छा की पूर्ति करना उनका प्रेय—दोनों ही बातें मिल गईं। "सब तैयार है"—उनके कहते ही भृत्य ने तश्तरियाँ सामने लाकर रख दीं। 'निराला-दर्शन, साहित्य और साहित्यकार-दर्शन, कवि और कवि की आत्मा के दर्शन, सजीव साहित्य और जीवन-साहित्यदर्शन' उस दिन मैंने पाया।

निरालाजी फिर घूमने लगे। एक लुङ्गी-मात्र पहने थे। विराट् डील-डौल और गहरी तेज़ आँखें, जैसे साक्षात् शिवशंकर बम-भोले ! वे फिर बौखलाए—'बिजली कम्पनी ने लाइट अब तक मरम्मत नहीं की ?' बाढ़-पीड़ित ग्रामीणों के दुख के लिए उनके उद्‌गार निकले। वे आर्त्त थे, उनके घोंसलों के लिए बेहद चिन्तित। फिर सहसा उन्हें अपने किसी मित्र की (यह मित्र शायद कोई ताँगे वाला था) याद हो आई। वह मर गया था। उसकी बुढ़िया माँ की असहाय

अवस्था पर उन्हें तरस आ गया। उसके प्रति सहानुभूति जतलाना और उसकी मदद करना उनके लिए परमावश्यक था। कह उठे—'देवीजी, रुपया हमारे पास है नहीं और लखनऊ जाना जरूरी है। आप इन्तजाम कर देंगी न?' निरालाजी के प्रश्न पर उन्होंने स्वीकृतिसूचक गर्दन हिला दी।

महादेवीजी को प्रत्यक्ष देखने पर मेरे लिए वे अधिक स्पृहणीय हो गई हैं। निरालाजी के प्रसंग में महादेवीजी ने उत्तर प्रदेश के एक प्रकाशक की दुर्गत बतलाई। निरालाजी उससे अपने रायल्टी चाहते थे। वह मूजी कब देनेवाला था? निरालाजी को क्रोध चढ़ा, तो महादेवीजी को प्रकाशक ने तार दिया। तब उसने राहत पाई। महादेवीजी ने बतलाया कि किस प्रकार निरालाजी ने एक दिन अपनी नयी बनी रजाई एक वृद्धा भिखारिन को ठिठुरते देखकर दे दी। पूछने पर उत्तर में उन्होंने कहा—'यह मेरी धोती जो है, खोलकर आधी ओढ़ लूँगा।'

एक वार तीन या चार सौ रुपये लेकर निराला जी ने पच्चीस-पच्चीस रुपये के कई मनीआर्डर भेजे। ये मनीआर्डर किसी अनाथ को, किसी विधवा को, किसी मोची को और कुछ ऐसे व्यक्तियों को भेजे गए, जो दीन-हीन हैं और जिनका समाज में कोई स्थान नहीं है। निरालाजी के पास शेष कुछ भी नहीं रहा। जिन्हें ये मनीआर्डर भेजे गए थे, वे इस महादानी के मित्र थे, किसी रक्षाबन्धन के दिन निरालाजी ने महादेवी जी से कहा—'देवीजी, हमारी कोई बहन नहीं है, कौन हमें रक्षा बाँधेगा?' महादेवीजी ने कहा—'मैं बाँध दूँगी।' महादेवीजी ने बताया कि उस दिन निरालाजी शहर में नारियल ढूँढ़ते रहे। कहने लगे—'आज से मैं अभिषिक्त भाई हूँ।' निरालाजी के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। उस समय तक संसद् में रहते उन्हें छः मास बीत चुके थे। महादेवीजी ने बतलाया कि निराला जी ने कभी कोई ऐसी-वैसी चीज़ खाने-पीने की उनसे नहीं माँगी। निरालाजी की उदारता का ताज़ा उदाहरण पाठकों को मालूम ही होगा कि उत्तर प्रदेशीय सरकार ले 2,500) मिलने पर उन्होंने तुरन्त ही अपने स्वर्गीय मित्र मुंशी नवजादिकलाल की पत्नी को भेज दिये। अशेष दान का ऐसा शुभ्र-शालीन उदाहरण किस भारतीय साहित्यिक ने प्रदर्शित किया है? महादेवीजी जब-जब भी निराला जी की चर्चा करतीं, आर्द्र हो जातीं। हृदय बोझिल, अन्तरात्मा दर्दीली, गंगा-जमुनी आँखों से आँसुओं की लड़ी और उत्फुल्ल हंसी—यही महादेवीजी का संक्षिप्त परिचय है।

तीसरे दिन फिर महादेवीजी से मिलने का वादा था, पर चूक गया। पाँचवें दिन ताँगे पर मुझे जाते देखकर वे बोलीं—"मैं तो समझ रही थी, दुष्ट विना मिले ही चला गया।" मैंने दूसरे दिन आने का वादा किया। दूसरे दिन जब मैं वहाँ पहुँचा, तो वहाँ मुझे एक युवक मिला। उससे परिचय कराते हुए महादेवीजी बोलीं—'यह मेरा एक छोटा भाई है, कुछ काम नहीं करता।" और मेरा परिचय

उनसे कराते हुए बोलीं—"यह मेरा छोटा भाई है, बम्बई में रहता है, बहुत काम करता है।" फिर निरालाजी सम्बन्धी बात छिड़ने पर मैंने उस दिन महादेवीजी से कहा कि निराला जी को उन्माद नहीं है। वे शत-प्रतिशत भावुक, अत्यन्त प्रामाणिक, आदर्शवादी और शोषण देखकर खिन्न हो उठे व्यक्ति है। व्यक्ति-व्यक्ति के कष्ट और उत्पीड़न से उनकी कोमल, पर दृढ़ आत्मा इतनी बेकाबू हो गई है कि उनको मुक्ति कैसे मिले, यह वे सोच ही न पाते। आज के समाज-जीवन की विशृंखल व्यवस्था से उनका हृदय क्षार-क्षार हो गया है। आदर्शवादी के नाम पर वे अन्यथा नहीं सोच पाते, यही अच्छाई है, और इसलिए व्यक्तिगत सहन-शीलता में वे वज्रपौरुष हैं। काश, महाभिनिष्क्रमण का प्रगतिशील दृष्टिकोण समय से पूर्व उनके ध्यान में आ जाता।

निरालाजी को अच्छा करने का एकमात्र इलाज है—उन्हें ऐसी जगह में रखना, जहाँ शोषण और कष्ट न हों। पृथ्वी में एक ही स्थान है मास्को। थोड़े ही दिनों में निरालाजी वहाँ चंगे हो जाएँगे। बिड़ला के बैंक से रुपया निकालने की बात, सत्तर पुस्तकों की रायल्टी वसूल लेने की बात और अपाहिजों, कष्ट-पीड़ितों तथा अपेक्षितों को रुपया भेजने की घटनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि निरालाजी का कष्ट पूँजीवाद से व्याप्त कष्ट है। उनके हृदय को अपार, अवर्णनीय, असहनीय कष्ट है। उनकी चाह है कि उनके मित्र की असहाय बुढ़िया माँ तथा बच्चों की परिवरिश हो सके। वे भरी जवानी में छैला बने ताँगे वाले को मरता न देख सकें।

वे मुंशी नवजादिकलाल की पत्नी को विधवा बनते न देख सकें। इसके बाद मैंने कहा—'उग्र' से सब डरते हैं। भ्रष्ट साहित्यिकों में उन्हें गिनाने का ठेका कई ले बैठे हैं। पर उन जैसे ईमानदार और आत्म-स्वीकृति वाले साहित्यिक हिन्दी-वालों में नगण्य हैं। आत्म-संशोधन के लिए 'उग्र' सदैव तत्पर रहते हैं, यह मेरा अनुभव है। 'उग्र' और 'निराला' दोनों को कुटुम्ब के अभाव ने और भी उच्छृंखल बना दिया है। सिर्फ पौरुष भर रह गया है। प्रकृति की ऊष्मा उन्हें नहीं मिली। अति सख्त प्रकृत न बनने के लिए पौरुष को प्रकृति की आवश्यकता है, ऐसी कुछ श्रेष्ठियों की मान्यता है।

मीरा के बाद भारतीय साहित्य में महादेवीजी का स्थान माना जाता है। भक्ति-काल में मीरा प्रकट हुई थीं। ज़माने को देखते हुए मीरा पहली विद्रोहिणी भारतीय नारी थीं। राजनीतिक विरोध की तुलना में सामाजिक विरोध अधिक कठिन कार्य है। उस युग में मीरा अत्यन्त साहसी और कृतनिश्चय नारी हुई हैं; लेकिन दृष्टिकोण के अभाव में वे पत्थर पर ही सिर पटककर रह गईं। महादेवी जी की भी त्रुटि यही है। इस सड़ाँद भरी समाज-व्यवस्था में अनेक चित्र-विचित्र अवास्तविक धाराएँ आदर्श और नैतिक मानी जाती हैं। जीवन के स्वाभाविक कार्यक्रम को समाज-विरोधी करार दिया जाता है। इन्हीं मान्यताओं की एक

शिकार महादेवीजी भी हैं। मैं जिम्मेदारी के साथ यह कह सकता हूँ कि मीरा के अधूरे समर्पण को महादेवीजी पूर्णता दे सकतीं, तो···! फिर भी इतना आवश्यक था कि जब तक शोषणहीन समाज-व्यवस्था न हो, तब तक निरालाजी जैसे मस्तिष्क का ठिकाने पर रहना कठिन कार्य है।

मेरा सुझाव है कि महादेवीजी उग्रजी को साहित्यकार-संसद् में सृजन के लिए स्थान दें। उनका सम्पर्क उग्रजी के लिए उल्लास और विवेक में परिणत होगा। महादेवीजी सब समझती हैं। 'विवेक' ज्ञान की परिभाषा है, जिसमें सूझ का समावेश है। महादेवीजी का विवेक पूर्ण जाग्रत हो, यही मेरी कामना है।

5

हमारी महादेवी बहिनजी

सावित्रीदेवी वर्मा

['महादेवीजी को एकांत आरम्भ से ही पसन्द था। कदाचित् इससे उन्हें साधना में सुविधा मिलती थी। पेड़ों के नीचे, झाड़ियों के पीछे, बगीचे के किसी कोने में, किसी मुड़ी हुई डाल पर बैठकर, तने का ठेका लगाकर, वे घंटों गुज़ार देती थीं।

जहाँ चार बच्चे मिलकर खेलते, या झगड़ते होते, वे दूर से खड़ी होकर उनकी बातचीत और भावभंगी का अध्ययन-सा करने के लिए रुक जाती थीं। कहीं गिलहरी को कुतरते देख लिया, अथवा चिड़िया अपने बच्चे को चोगा देते दिखाई पड़ी कि उनके लिए एक तमाशा खड़ा हो गया।

उनकी चमकती हुई आँखें और खिलखिलाकर हँसना मनुष्य को बरबस अपनी ओर खींच लेता था किन्तु उनकी हँसी भी उनके अंतस्तल में छिपी उदासी को छिपाने में असफल रहती थी। मुँह पर मुस्कराहट हमेशा खेलती रहती, परन्तु आँखों में से एक उदासीनता झाँका करती थी।"]

"अरे क्या हुआ, रो क्यों रही हो?" क्रास्टवेट स्कूल के छात्रावास में एक सोलह वर्षीया किशोरी ने एक छोटी बालिका को पुकारते हुए पूछा। बालिका दुलार पाकर, सिसकियाँ भर-भर के रोने लगी।

"अच्छा यहाँ आओ, क्या बात है, अरे तुम्हारी जलेबियाँ किसने बिखेर दीं?" किशोरी ने फिर पूछा।

"चील झपट्टा मारकर गिरा गई–" सिसकियाँ भरते हुए बालिका ने उत्तर दिया।

रोने का कारण जानकर उनके मुँह पर मुस्कराहट आ गई, बोलीं—"अच्छा आओ हमारे कमरे में, हम तुम्हें और मिठाई देंगे।"

उपरोक्त घटना को लगभग तीस वर्ष हुए, मैं उसी साल क्रास्टवेट स्कूल में दाखिल हुई थी। उन दिनों महादेवी बहिनजी उसी स्कूल में आठवीं या नवीं कक्षा में पढ़ रही थीं। बोर्डिंग हाउस में यह नियम था कि प्रातःकाल छः बजे सबको प्रार्थना में उपस्थित होना पड़ता था। जग्गू हलवाई एक बड़े टोकरे में जलेबी या दाल-सेव दोनों में सजाकर प्रतीक्षा में बैठा रहता था। प्रार्थना के बाद जिज्जा

(छात्रावास की सुपरिण्टेण्डेण्ट) प्रत्येक कन्या को एक दोना मिठाई देती थीं। मेरा जलेबी का दोना उस दिन चील झपट्टा मारकर गिरा गई, और मैं शान्तिलता की बेल की ओट में खड़ी होकर रोने लगी। न जाने कितनी देर तक इसी प्रकार रोती रहती यदि महादेवी बहिनजी मुझे बहलाने न आतीं। वे मुझे अपने कमरे में ले गईं, पुचकारकर उन्होंने मुझे अपने दोने में से चार जलेबी खाने को दीं। मैं तो जलेबी खाने में लगी थी और वे मेरी मोटी चोटी से खेल रही थीं। उन्होंने मेरी चोटी को दबाते हुए पूछा, तुम इतने लम्बे बाल कैसे सँभालती हो, कौन तुम्हारी चोटी गूँथता है? मैंने कहा, हम दोनों बहिन एक-दूसरे की चोटी गूँथ देती हैं।

"क्या तुम्हारी कोई बड़ी बहिन भी है?" उन्होंने पूछा।

जलेबी कुतरते हुए मैंने उत्तर दिया, "नहीं छोटी बहिन है।"

कुछ याद-सा करती हुई बोलीं, "ओ! वो ही न! गोल मुँह की गोरी-सी लड़की, क्या नाम है शकुन्तला!" मैंने सिर हिला दिया, जलेबी का रस मेरे फ्रॉक पर गिर गया था, उन्होंने गीले तौलिए से मेरा मुँह और फ्रॉक साफ करके मुस्कराकर कहा, "अच्छा, आया करो कभी-कभी मेरे कमरे में, अकेले खड़े होकर रोया नहीं करते।" मैं शरमा कर भाग गई।

उस दिन से महादेवी बहिनजी के प्रति मेरे दिल में एक लगाव-सा पैदा हो गया। वे मुझसे आयु और कक्षा में बड़ी थीं। अतएव अधिक परिचय बढ़ाने का साहस तो मैं नहीं कर सकी, परन्तु जब भी प्रार्थना-भवन या रसोई अथवा ग्राउंड में वे मुझे मिलतीं, तो देखकर, जरा गर्दन टेढ़ी करके मुस्करा देतीं। उनका व्यक्तित्व ऐसा प्रभावशाली था कि सादगी में भी, आकर्षक प्रतीत होता था। उनकी चमकती हुई आँखें और खिलखिलाकर हँसना, मनुष्य को बरबस अपनी ओर खींच लेता था। बच्चों के प्रति उनकी दिलचस्पी, गरीबों पर दया तथा प्रत्येक काम को अनूठे ढंग से करने की आदत का, मुझे उन चार सालों में जो उनके साथ बोर्डिंग हाउस में व्यतीत किए, भली प्रकार पता लग गया था। जहाँ चार बच्चे मिलकर खेलते या झगड़ते होते, वे दूर से खड़ी होकर उनकी बातचीत और भाव-भंगी का अध्ययन-सा करने के लिए, रुक जाती थीं। उनकी साथ की सहेलियाँ झुँझलाकर बोलतीं, "अब आगे चलती भी हो कि यहीं रम गईं, बस तुम्हें साथ लेकर कहीं समय पर पहुँचना कठिन है, कहीं गिलहरी को कुतरते देख लिया, या चिड़िया अपने बच्चे को चोगा देते दिखाई पड़ी कि तुम्हारे लिए तो एक तमाशा खड़ा हो गया।" महादेवी कहतीं, भाई जरा देखो न इन्हें, ये बच्चे भी खूब हैं, इनकी आँखें कैसी चमकती हैं, अभी रो रहे हैं, अभी हँस देंगे, उधर लड़े और इधर फिर हेल-मेल हो गया। कितना प्राकृतिक है इनका व्यवहार। मन में मैल नहीं। जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता है, उसके दिल में मैल जमता जाता है।" सहेलियाँ हँसकर पूछतीं, "अब तुम चलोगी कि कविता-तरंग में गोता लगाओगी।"

महादेवीजी को एकान्त तो आरम्भ से ही पसन्द था। कदाचित् इससे उन्हें

साधना में सुविधा मिलती थी। पेड़ों के नीचे, झाड़ियों के पीछे, बगीचे के किसी कोने में, किसी मुड़ी हुई डाल पर बैठकर, तने का ठेका लगाकर, वह घंटों गुज़ार देती थीं। स्कूल की मैटर्न भी उनके मौजी स्वभाव से वाकिफ़ हो गई थीं। अगर खाने पर वे नहीं पहुँचीं, या दोपहर की टिफिन के समय दिखाई न पड़तीं, वे उनका खाना या नाश्ता उठवाकर रख देती थीं।

एक दिन की घटना है कि वह इसी प्रकार कविता तरंग में डूबकर चम्पा के पेड़ के नीचे सो गईं। उनसे कुछ दूरी पर एक धामिन सर्प मेंढकों का नाश्ता कर, कुण्डली मारकर पड़ा था। इतने में चौकीदार भग्गू उधर निकला, चिड़ियों की चीं-चीं से उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। महादेवी बहिनजी से कुछ दूरी पर साँप को देखकर वह बड़ा पशोपेश में पड़ा कि अगर लाठी की चोट मारता हूँ तो कहीं साँप उलटकर उनकी ओर न भागे और न मारे तो भी बुरा। भग्गू था चतुर। उसने धीरे से ओट में होकर अपने मोटे डण्डे से सर्प का फन दबाकर पुकारा—"ए? बिटिया उठो साँप है! साँप!" इधर क्रोध से साँप अपनी पूँछ फटकारने लगा। फन तो कुचल ही गया था। महादेवी के उठ जाने पर भग्गू ने लाठी से उसके धड़ के दो टुकड़े कर दिए। महादेवी बहिनजी ने भग्गू को एक रुपया इनाम दिया। उस दिन से जब कभी भी भग्गू साँप मारता कन्याएँ चन्दा करके, एक रुपया जुटातीं, जो कमी रह जाती, महादेवी पूरा कर देतीं।

उस दिन जिज्जा ने महादेवी बहिनजी को मीठी झिड़की देते हुए कहा, "महादेवी, तुमने तो परेशान कर दिया, अगर पेड़ के नीचे साँप डस लेता तब?

"भगवान के घर से अभी बुलौआ आने में देर है, तुम मेरी चिन्ता मत करो।" महादेवीजी ने हँसकर बात उड़ा दी।

ममता से भर कर जिज्जा बोलीं—"भगवान करें तुम युग-युग जीओ। तुम्हारे सिवाय क्रास्टवेट में है कौन जो कवि-सम्मेलन में भाग लेकर स्कूल का नाम ऊँचा करेगा?"

महादेवीजी कविता तो तेरह-चौदह वर्ष की आयु से ही करने लग गई थीं, वे समस्यापूर्ति तथा उत्सवों पर स्वरचित कविता पढ़कर सुनाती थीं। इसके अतिरिक्त हम लोग उन्हें अभिनय के लिए भी कविता रचने के लिए परेशान कर छोड़ते थे। मुझे पहले मालूम नहीं था कि वे कविता भी करती हैं। एक बार गर्ल्स ग्राउण्ड में हमारे ग्रुप को 'भारत के प्रान्त' अभिनय के लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों का परिचय पद्य में देना था। उस विषय पर महादेवी बहिनजी से कविता तैयार कराने का भार मुझे सौंपा गया।

पहले तो बहिनजी हँसकर टालमटोल करती रहीं। जब मैंने मुँह लटकाकर कहा, "अच्छा—जैसी आपकी इच्छा, पर लड़कियाँ मुझे ताना अवश्य देंगी कि बड़ी महादेवीजी की दुलारी होने का अभिमान था, इतना भी काम नहीं करवा सकी।" यह सुनकर मालूम नहीं उन्हें क्या विचार आया, कलम उठाई और आध घण्टे में

दस पद रचकर उन्होंने मुझे पकड़ा दिये। सहेलियों में मेरी साख बनी रही। इसके लिए मैं आज तक उनकी कृतज्ञ हूँ।

इसके पश्चात् एक बार उन्होंने वसन्तोत्सव पर भी अभिनय-कविता रचकर दी थी। इस खेल में एक कन्या ऋतुराज बनी थी, दूसरी वनदेवी, तीसरी पवन बनी थी। उनकी वेशभूषा आदि का सुझाव भी महादेवी बहिनजी ने ही दिया था। यह खेल वार्षिक उत्सव पर हुआ था, सबने बहुत पसन्द किया। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी पर झाँकी का शृंगार करने में भी महादेवी बहिनजी के सुझाव बहुत सुरुचिपूर्ण होते थे।

एक बार यूनिवर्सिटी में श्रीधर पाठक के सभापतित्व में कवि-सम्मेलन का आयोजन हुआ। क्रास्टवेट कॉलिज के विषय में यह बात प्रसिद्ध थी कि वह यूनिवर्सिटी की प्रत्येक प्रतियोगिता में भाग लेता है। महादेवीजी उन दिनों इण्टर में पढ़ती थीं। 'घूँघट के पट खोल' इस पर समस्यापूर्ति करनी थी। कबीर के सदृश रहस्यवादी रचना तो युवकों को करनी पसन्द न थी। महादेवीजी ने भी अपनी रचना में नवोढ़ा नायिका का दृश्य ही चित्रित किया था। लड़कों ने देखा कि क्रास्टवेट से भी कन्याएँ प्रतियोगिता में भाग लेने आई हैं, पहले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई, परन्तु बाद में जब उन्होंने देखा कि श्रीधर पाठकजी ने शृंगार रस की अधिकता के कारण अधिकांश कविताओं को पढ़ी जाने से रोक दिया, तब तो उन्हें बहुत बुरा लगा। सारी सभा में घुसर-फुसर मच गई। धीरे-धीरे लड़के बिदकने लगे, हो-हल्ला मचा दिया। महादेवीजी बार-बार जिज्जा से यही कहें, "जिज्जा चलो हम लोग यहाँ से चलें, मेरी कविता कोई दूसरा पढ़कर सुना देगा। यहाँ अब ठहरना उचित नहीं है। हमारी उपस्थिति के कारण लड़कों में असन्तोष छाया हुआ है।"

हारकर जिज्जा ने श्रीधर पाठक जी से निवेदन किया कि महादेवी इतनी भीड़ में कविता न पढ़ सकेंगी। यह है उनकी कविता। आप किसी से पढ़वा लीजिएगा। हमें जाने की आज्ञा दें।

होस्टल वापस आकर सखी-सहेलियों में उस कवि-सम्मेलन को लेकर एक चर्चा छिड़ी। किसी ने कहा—महादेवी तुम कवि बनने का दावा भला क्या करोगी, लड़कों से डर गई।"

दूसरी बोली—कविता शृंगार रस की थी तो क्या हुआ! तुमने तो अपनी रचना में शिष्टता को पार नहीं किया था।

तीसरी बोली—"और क्या कवि के नाते तो तुम्हें बहुत-कुछ 'दर्द-दिल' बनना पड़ेगा, ऐसा शर्मीला स्वभाव लेकर, तो बस लिख चुकीं कविता!"

सखियाँ आलोचना करती जा रही थीं और महादेवी बहिनजी खिलखिलाकर हँस रही थीं।

ये आरम्भ से ही बड़ी संकोची स्वभाव की थीं। आत्म-प्रशंसा सुनकर तो

उनका मुँह लाल हो जाता था। हिन्दी की प्रोफेसर जब इनके लेखों तथा रचनाओं की कक्षा में प्रशंसा करतीं, इनकी सुन्दर लिखाई तथा उपमाओं की दाद देतीं, तो इनका मुँह शर्म से लाल हो जाता।

निबन्ध का घण्टा केवल इन्हीं की रचना पढ़ने में बीत जाता, जिस दिन 'पोयट्री' होती बस इन्हीं को अर्थ समझाने को खड़ा किया जाता। उस दिन हिन्दी पीरियड में एक अच्छा-खासा कवि-सम्मेलन का मजा आ जाता। जब ये यूनिवर्सिटी में एम० ए० की पढ़ाई करने गईं, तब तक तो इन्हें काफ़ी प्रसिद्धि मिल चुकी थी। सुना है, उन दिनों भी प्रोफेसरों और लड़कों की प्रशंसा के कारण कुछ दिन तक तो ये बड़ी परेशान-सी रहीं। शनैः-शनै उस वातावरण की ये अभ्यस्त हुईं।

वेष-भूषा तो महादेवी बहिनजी की आरम्भ से ही बहुत सादी रही है। आरम्भ में मैंने उन्हें कभी-कभी रंगी हुई सूती धोती पहिने देखा भी था। रंगों का मिश्रण कर ये धोती रंगती भी बहुत सुन्दर थीं। कॉलिज में जाने के पश्चात् तो यह बारीक किनारे की सफेद सूती धोती ही पहनती थीं। सीधा लम्बा पल्ला इनकी वेश-भूषा की विशेषता थी। शृंगार के नाम से तो हाथों में दो चूड़ियाँ या माथे पर बिन्दी भी लगाते इन्हें नहीं देखा। जिज्जा कई बार इन्हें टोकतीं भी, "ए महादेवी! यह क्या सोटे से नंगे हाथ लटकाए फिरती हो। सिर में तेल भी तो नहीं डालती। क्या उदास-सा चेहरा बनाया हुआ है। पढ़-लिखकर लड़कियों के ढंग ही अजीब हो गए हैं।"

ये मीठी झिड़कियाँ सुनकर महादेवी हँस देतीं। परन्तु उनकी हँसी भी अन्तस्तल में छिपी उदासी को छिपाने में असफल ही रहती थी। संसार के दुखों को इन्होंने इतनी तीव्रता से अनुभव किया था कि युवावस्था में ही वे एक संन्यासिनी की तरह रहा करती थीं। सखी-सहेलियों के लिए इनका मूड एक पहेली बना हुआ था। जिन बातों, चीज़ों तथा कार्यों से दूसरों का मनोरंजन होता था, वे उनके प्रति उदासीन रहती थीं। मुँह पर मुस्कराहट हमेशा खेलती रहती, परन्तु आँखों में से एक उदासीनता झाँका करती थी।

इनके चेहरे में जो एक विशेषता है, वह यह कि इनके कान कुछ आगे को बढ़े हुए, झाँकते हुए से हैं—मानो वे मानव की करुण-पुकार सुनने के लिए कुछ सतर्क हो खड़े हों।

जिस साल मैंने काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० किया वे भी कॉनवोकेशन पर वहाँ पधारी थीं। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मैंने हिन्दी में एम० ए० किया है। मुझे कुछ लिखते रहने का प्रोत्साहन दिया।

शाम को आर्ट्स कॉलिज में कुछ उत्सव था, मैंने पूछा "आप नहीं चल रही हैं?" कुछ हँसकर बोलीं, "तुम्हारी विद्यालय-नगरी का निर्माण बहुत सुन्दर हुआ है, उत्सव तो बहुत देखे, दिन-भर बैठे-बैठे थक गई हूँ, जी करता है घूम आऊँ।"

मैं भी साथ हो ली। बोटेनिकल गार्डन में से होते हुए, हम अमरूद की वाटिका में पहुँच गए ! खूब पके-पके अमरूद लगे थे, मालिकन को एक रुपया पकड़ाया और उन्होंने पेड़ों पर से अमरूद तोड़-तोड़कर झोली भरनी शुरू की।

मैंने आश्चर्य से पूछा, "बहिनजी ! क्या करिएगा इतने अमरूद ?" एक पके अमरूद को उचककर तोड़ते हुए वे बोलीं—"अभी बताती हूँ।"

सब अमरूदों को एक टोकरी में भरकर उन्होंने सड़क के पार ईंटों के ढेर के पास खेलते हुए आठ-दस बच्चों को बुलाया। सबको बिठाकर अमरूद उनमें बाँट दिए। एक अमरूद खुद भी पकड़ लिया, एक चुनकर मुझे भी दिया और बस बच्चों से बातचीत करते हुए उन्होंने घंटा गुज़ार दिया। उनके बहिन, भाई, परिवार, गाँव आदि के बारे में पूछती रहीं, फिर आग्रहपूर्वक बोलीं, "देखो तुम पढ़ा करो।"

डूबते हुए सूर्य की किरणें महादेवीजी के मुँह पर पड़ रही थीं मुझे उनकी कहानी के 'घिस्सू' की गुरुजी की याद हो आई। आज उस रूप में उनके साक्षात् दर्शन हुए।

लौटते हुए मार्ग में पुराने दिनों की चर्चा छिड़ी। चन्द्रावती त्रिपाठी, चन्द्रावती लखनपाल, ललिता पाठक आदि की चर्चा करती हुई वे बोलीं—"सावित्री ! वैसी सहेलियाँ अब नहीं मिलतीं। छात्रावास में बीते हुए वे दिन कितने सुन्दर और प्यारे थे। अतीत की स्मृतियाँ एक मीठा-मीठा दर्द पैदा कर देती हैं। प्यारा बचपन बीत गया।"

मैंने कहा, "भविष्य भी तो सुन्दर और आशाजनक है। सफलता और यश तो आपका स्वागत करने के लिए खड़े हैं।"

"हाँ ठीक ही है", कहकर वे कुछ मुस्करा दीं।

उनकी आँखों में फिर वही परिचित उदासी झाँक उठी थी।

6

श्रीमती महादेवी वर्मा (एक मूल्यांकन)

लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'

['महादेवी वर्मा ने वेदना को अपने काव्य का मूलद्रव्य रखा है। वेदना दुख-मूलक अवश्य है, किन्तु प्रत्येक स्थिति में वह दुखजनक नहीं होती। काव्य में जीवन की वही भावना अभिव्यक्त होती है जो कवि को प्रिय रहती है। अप्रियता को काव्य में स्थान नहीं। वेदना भी प्रिय लगने पर ही काव्य का स्वरूप धारण करती है। कवयित्री ने दुखवाद को अपना काव्य-विषय बनाकर सुखवाद से बैर नहीं ठाना, प्रत्युत् सुखवाद का उल्लास प्राप्त करने के लिए ही उन्होंने वेदना से मैत्री स्थापित की है।']

संसार में कुछ ऐसी वस्तुएँ होती हैं जिन्हें हम बहुत प्यार करते हैं, किन्तु अपने प्यार की प्रतिष्ठा के लिए कोई तर्क नहीं दे सकते। पुष्प का सौन्दर्य हमें रमणीय मालूम पड़ता है, चाँदनी हमें प्रिय मालूम होती है, परन्तु उनकी प्रियता का कोई स्पष्ट कारण नहीं मालूम हुआ रहता है, केवल इतना ही कि उनमें आकर्षण है। शुद्ध सौन्दर्य का तत्त्व कुछ ऐसे ही उनादानों से बना होता है, जो हमारे हृदय को प्रलुब्ध तो बना देता है, पर तर्क को प्रबुद्ध नहीं करता। हृदय के साथ उनका कुछ-न-कुछ सांसारिक सम्बन्ध रहता है, जो अज्ञात रूप से अपनी स्थिति को प्रकट करने की चेष्टा करता है। जड़ और चेतन की सृष्टि में इसी कारण वह द्वैध नहीं रखा गया, जो साधारणतः ऐसी स्थिति में रखा जा सकता था। इसी कारण जड़ और चेतन, दोनों, के युगपत् आविर्भाव को ही सृष्टि कहते हैं। वस्तु और भाव, स्थिति तथा प्रक्रिया के भेद को मानते हुए, एक ही हैं। महादेवी वर्मा को वेदना प्रिय है, लेकिन उसकी प्रियता के लिए उनके पास ऐसा कोई कारण नहीं, जो स्पष्ट हो। व्यक्ति का जीवन ऐसे ही रहस्यमय तत्त्वों से निर्मित होता है जिन्हें हम समूल अभिव्यक्त नहीं कर सकते। महादेवी ने अपनी वेदना की प्रियता के सम्बन्ध में जिन कारणों का उल्लेख किया है, वे पर्याप्त नहीं हैं। उन्हें जीवन में बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब-कुछ मिलने की प्रतिक्रिया से वेदना प्रिय नहीं मालूम हो सकती। प्रतिक्रिया हृदय की इच्छित वृत्ति नहीं होती और काव्य में स्वाभाविक वत्तियों के बिना रमणीय अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। यदि महादेवी की सारी

काव्य-रचनाएँ, जैसे कि उन्होंने लिखा है, अतिशय प्यार-दुलार की प्रतिक्रिया के कारण ही वेदना-बहुल हैं, तो उनका मर्म किसी कवयित्री का मर्म नहीं हो सकता। किन्तु बात यह नहीं है। महादेवीजी एक सफल कवयित्री हैं और उनके पास कवि-सुलभ एक संवेदनापूर्ण हृदय भी है।

जीवन में सुख के उपभोग के समय हृदय स्वार्थी रहता है और दुख के सहन काल में प्रायः वह उदार हो जाता है। उदारता कवि-प्रकृति है। अपनी जिन उदात्त वृत्तियों के कारण कवि जनता की सहानुभूति को आकर्षित करता है उनके प्रति उसका ममत्व स्वाभाविक है। जगत् और जीवन की करुणा प्राप्त करने के लिए अपना वैभव भी लुटाना पड़ता है। जिस करुणापूर्ण दुखवाद के ऊपर बौद्ध-दर्शन की प्रतिष्ठा हुई, उसके संकेत यत्र-तत्र महादेवी की रचनाओं में भी मिलते हैं, किन्तु इतना तो स्पष्ट मानना पड़ेगा कि जिस अगाध करुणा तथा निराशा से प्रेरित अनात्मवादी बौद्ध-दर्शन पंचस्कन्ध को ही आत्म-संज्ञक मानने को बाध्य हुआ, वह उनकी रचनाओं में कहीं भी लक्षित नहीं होता। जीवन-विज्ञान का विश्लेषण ही दर्शन-शास्त्र का विषय है, लेकिन विश्लेषण की भिन्नता जीवन की अखण्डता पर कुछ आघात नहीं कर सकती। निर्वाण या मोक्ष जीवन की लौकिक परिधि से मुक्ति है, पर इस परिधि के वाहर जाकर भी जीवन एक-दूसरी सीमा में आबद्ध हो जाता है। उस सीमा की परिधि इतनी विशाल तथा विस्तृत है कि मानव-बुद्धि उसे निस्सीम मान लेती है। व्यक्ति-बोध के खण्ड की यही अखण्डता है। यदि अखण्ड तथा अविच्छिन्न जीवन में खण्ड तथा विच्छिन्न जीवन को महत्त्व न दिया जाएगा, तो सामान्य मानव बुद्धि को उसका बोध नहीं हो सकेगा। ज्ञान का क्षेत्र सदा परिमित रहता आया है और ऐसे ही क्षेत्र में भाव भी संचरित हो सकता है। हमारी बुद्धि की सीमा के वाहर भाव अपनी व्यापकता नहीं वढ़ा सकता। जिस क्षेत्र पर एक बार ज्ञान का आधिपत्य हो चुका रहता है, उसी पर भाव को संक्रमण का अवकाश मिलता है। जिस क्षेत्र यर आधिपत्य करने के लिए ज्ञान को अज्ञान से द्वन्द्व करना पड़ता है, वह अज्ञेय बनकर काव्य-प्रवृत्ति का बाधक हो जाता है।

रहस्यवाद के तथ्य को लेकर काव्य-रचना करनेवाली महादेवी वर्मा एक मुख्य कवयित्री हैं। काव्य के स्वरूप को ग्रहण करते समय रहस्यवाद को अज्ञेय की सीमा से नीचे उतरकर एक स्पष्ट तथा ज्ञात आलम्बन के रूप में उपस्थित होना पड़ेगा। यदि ऐसा न हुआ, तो रहस्यवादी रचनाएँ काव्य के अन्तर्गत न रहकर अज्ञेय के दर्शन के अन्तर्गत हो जाएँगी। ऐसा देखा जाता है कि रहस्यवादी कवियों ने अपने आलम्बन की एकरूपता का निर्वाह प्रायः नहीं किया है। कभी आलम्बन स्पष्ट है, तो कभी अस्पष्ट। कहीं आलम्बन लौकिक है, तो कहीं लोकोत्तर। आश्रय के सम्बन्ध में भी लिङ्ग का विपर्यय बना रहता है। इस प्रकार की भिन्नता रहस्यवादी कविताओं के मर्म को रसग्राह्य बनने में बाधा देती है। महादेवी वर्मा

की रहस्यवादी कविताओं के रहस्य को समझने के लिए यदि उनके कथन को ही लिया जाए, तो उनके "गीतों ने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया-मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य हृदय को अवलम्ब दे सका, पार्थिव प्रेम से ऊपर उठ सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।" कवयित्री ने अपनी काव्य-वस्तु के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह एक तथ्य के रूप में ग्रहण किया जा सकता है; क्योंकि शायद इसी कारण उनकी रचनाओं में आलम्बन के एकत्व का सम्यक् निर्वाह नहीं हो पाया। निर्गुण ब्रह्म को महत्त्व देकर भी जनता की चित्त-वृत्ति को भक्ति-रस से अनुप्राणित करने के लिए कबीर को सगुण 'राम की बहुरिया' बनना बड़ा। अद्वैत काव्य का विषय नहीं हो सकता। काव्य-स्वरूप के अन्तर्गत आने के लिए अद्वैत को द्वैत के रूप में उपस्थित होना आवश्यक है। यदि द्वैत के रूप में उसका वर्णन न भी किया जाए, तो विशुद्धाद्वैत या शुद्धाद्वैत के बिना उसकी काव्य-परिणति नहीं हो सकती। आश्रय और आलम्बन का, काव्य के उभय पक्ष के लिए, अद्वैत में स्थान नहीं और काव्य-रचना केवल एक ही उपलक्ष्य पर नहीं हो सकती। अनुभूति तथा कल्पना को अपनी स्थिति-मात्र के लिए भी आश्रय से पृथक् आलम्बन के रूप में किसी वस्तु को ग्रहण करना पड़ेगा। काव्य-जगत् में ब्रह्म को भी उसी वस्तु-रूप में उपस्थित होना पड़ेगा, अन्यथा 'अहं ब्रह्मास्मि' के कारण आश्रय और आलम्बन का एकत्व प्रतिपादित हो जाने पर काव्य-रचना को अपनी प्रतिष्ठा का आधार नहीं मिल सकेगा। तुलसी और सूर के विशिष्टाद्वैत तथा शुद्धाद्वैत को रहस्यवाद में नियोजित करने की समर्थता प्राप्त होने पर निर्गुणवाद की सूफी-पद्धति ही रहस्यवाद के अनुकूल पड़ सकी। कबीर के शुद्ध निर्गुणवाद की स्थिति सम्भव नहीं। जहाँ कहीं कबीर ने रहस्यवाद की झाँकी ली है, वहाँ उन्हें निर्गुण को सगुण मान लेना पड़ा। लौकिक जीवन को लौकिक अर्थ भूमि का आधार देने के लिए लौकिक वासनात्मक प्रणयोद्गार का माध्यम आवश्यक है। लोकोत्तर उपलक्ष्य के सहारे जीवन की सारी भावनाएँ व्यक्त नहीं की जा सकतीं। जो विषय केवल बुद्धिगम्य है, वह सदा भावगम्य नहीं हो सकता। बुद्धि-गम्य विषय को भावगम्य बनने में कुछ समय लगता है।

मुख्य आलम्बन को गौण रखकर माध्यम को ही अभिव्यक्ति करना रहस्य-वादी कविताओं का एक लक्ष्य हो गया है। माध्यम की प्रधानता के कारण ही ऐसी रचनाओं में अन्योक्ति-पद्धति का आश्रय विशेषत: लेना पड़ा है। जीवन की विरह-वेदना, अतृप्ति, निराशा, अवसाद को चित्र भाषा-शैली में बड़ी विलक्षणता तथा विचित्रता के साथ वर्णित किया गया है। रूपक की विभिन्नता के कारण महादेवी वर्मा की रचनाएँ सहज ही दुर्बोध हो गई हैं। उनका प्रेम-व्यापार कहीं तो बिलकुल लौकिक पद्धति पर चला है और कहीं लोकोत्तर। लौकिक प्रेम की

तीव्रता जहाँ ज़्यादा उधार मिली है, वहाँ आलम्बन स्पष्ट है और विषय भी रस-ग्राही, किन्तु लोकोतर आलम्बन पाठक या श्रोता की भावभूमि से इतनी दूर पड़ जाता है कि वहाँ कल्पना किसी तरह कभी-कभी पहुँच भी जाती है, हृदय को पहुँचने में बड़ी कठिनता होती है।

मुक्तकगीत में अन्विति-रक्षा के लिए पूर्वापर-सम्बन्ध का निर्वाह लोकजीवन के अधिक निकट रहनेवाले प्रतीक या भावनोद्गार से हो सकता है। प्रकृति के अनन्त रूप-व्यापार के उपलक्ष्य पर प्रेम की गूढ़ तथा अगूढ़ व्यंजना हो सकती है, पर गूढ़-प्रेम-व्यंजना को समझने के लिए अपेक्षित मनोरचना प्रायः नहीं होती। धुँधली साम्य भावना के आधार पर अगूढ़ को गूढ़ बना देने की प्रणाली काव्योप-युक्त नहीं मानी जा सकती। किन्तु इन सब दोषों का भार महादेवी वर्मा के ऊपर ही लादना उनके प्रति अन्याय होगा। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपनी भाव-धारा को एक स्वाभाविक तथा निश्चित क्रम से प्रवाहित होने दिया है, उसमें ज्वार-भाटा के कारण तरंगों का आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन तो होता रहा है, पर प्रवाह को अपनी सीमा में रखनेवाले दोनों तट प्रायः सुरक्षित रहे हैं। कवयित्री के शब्दों में ही "समय के अनुसार रचनाओं में जो परिवर्त्तन आते गए हैं, उनके लिए भी मुझे कभी प्रयत्न नहीं करना पड़ा। याद नहीं आता, जब मैंने किसी विषय-विशेष या वादविशेष पर कुछ सोचकर लिखा हो।" उनके इस कथन से चाहे हम पूरे सहमत न भी हों, परन्तु उनकी काव्य-दृष्टि में विषय की एकरूपता का यथासम्भव निर्वाह तथा क्रमिक विकास मानना पड़ेगा। भिन्न-भिन्न समय में प्रत्येक संवेदनशील कवि की तरह उनकी अनुभूति, चिन्तन तथा कल्पना के सामंजस्य में कुछ व्यतिक्रम रहा है। अपने चारों—'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' तथा 'सांध्य-गीत'—कविता-संग्रहों के रचना-काल की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह उनकी रचना प्रकृति के साथ मेल रखनेवाला तथ्य है। वे लिखती हैं—"नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल-मिश्रित वेदना उमड़ आती है, जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देनेवाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। 'रश्मि' को उस समय आकार मिला, जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था, परन्तु 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकगे, जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख में सामंजस्य का अनुभव करने लगा।"

महादेवी वर्मा ने वेदना को अपने काव्य का मूल द्रव्य रखा है। वेदना दुख-मूलक अवश्य है, किन्तु प्रत्येक स्थिति में वह दुःखजनक नहीं होती। काव्य में जीवन की वही भावना अभिव्यक्त होती है, जो कवि को प्रिय रहती है। अप्रियता को काव्य में स्थान नहीं। वेदना भी प्रिय लगने पर ही काव्य का स्वरूप धारण करती है। कवयित्री ने दुखवाद को अपना काव्य-विषय बनाकर सुखवाद से बैर नहीं ठाना, प्रत्युत सुखवाद का उल्लास प्राप्त करने के लिए ही उन्होंने वेदना से मैत्री

स्थापित की है।

यदि वेदना की अभिव्यक्ति में उन्हें उल्लास न मिले, तो उनसे काव्य-रचना भी नहीं हो सकती। काव्य-रचना की मूल-प्रेरणा सुख ही होती है, पर अपनी रुचि-भिन्नता के कारण उसका विषय चाहे जैसा कुछ हो।

"जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास
चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली साँस
छोड़ क्यों देते बारम्बार
मुझे तम से करने अभिसार।"

जन्म या जीवन-ग्रहण को वियोग के नाम से अभिहित करना आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। ब्रह्म से जीव की सत्ता जब पृथक् होती है, तब उसकी दशा प्यार-सम्भार से दबी उस लाड़ली कन्या की तरह होती है, जो मातृगृह जाते समय होती है। मातृ या पितृकुल के वियोग में भी पीड़ा का उच्छ्वास होता है। पतिगृह में जीवन की सारी सरसता रहते हुए भी मातृगृह की वियोग-वेदना नष्ट नहीं होती। महादेवी वर्मा ने अपने अद्वैतवादी दृष्टिकोण को भी जीव और ब्रह्म के रूप में उपस्थित किया है। उनके विचार से लौकिक जीवन की दीर्घता से ब्रह्म के वियोग की अवधि बढ़ती ही है; इसलिए वे मृत्यु में ही जीवन का चरम विकास मानती हैं।

"बिखरकर कन-कन के लघु प्राण,
गुनगुनाते रहते यह तान
अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास !"

महादेवी वर्मा के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोक-विमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है, जिसके अनुसन्धान में कभी तृप्ति नहीं। वे प्राप्ति और तृप्ति से दूर रहनेवाली कवयित्री हैं, किन्तु अपने सन्धान में प्रयत्न की कोई कमी नहीं रखना चाहतीं। तृप्ति से प्रयत्न पंगु हो जाता है। प्राप्ति से विरह मलिन हो जाता है। साधिका कवयित्री की तरह वे अपनी आँखें प्यासी रखना चाहती हैं।

"चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन;
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन !
पूर्णतया यही भरने की
ढुल कर देना सूने घन;

सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जाये मन
चिर ध्येय यही जलने का
ठण्डी विभूति बन जाना;
है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना !
मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर;
रहने दो प्यासी ग्राँखें
भरतीं ग्राँसू के सागर।"

महादेवी वर्मा ने ग्रपनी सारी मनोभावनाग्रों को एक ग्रप्राप्तव्य ग्राराध्य के उपलक्ष्य से ग्रभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। ग्रतृप्त इच्छाएँ ही प्रलुब्ध होती हैं। इतना होने पर भी जगत ग्रौर जीवन के सम्बन्ध को हम विध्वंस नहीं कर सकते। उसीके ग्रन्तर्गत रहकर हम जीवन में उतीर्ण हो सकते हैं ग्रौर वस्तुतः जीवन की यही सच्ची साधना है। क्षुद्र से विराट् तथा नश्वर से शाश्वत होने के लिए ग्रंश में ही पूर्णता तथा सीमा में ही ग्रसीमता उपलब्ध करनी पड़ेगी। ग्रपनी सारी चेतना के साथ देखने से बद्ध भी ग्रबद्ध मालूम पड़ता है। जीवन के विषाद तथा ग्रवसाद चेतना की ग्रन्तर्ज्योति से स्वतः दीप्तिमय होकर ग्रानन्द तथा उल्लास में परिवर्त्तित हो जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'प्रकृति का प्रतिशोध' नामक ग्रपने नाट्य-काव्य में ऐसे ही एक तथ्य का बड़ा रमणीय रूपक-विधान किया है। एक संन्यासी, संसार के सारे स्नेह बन्धन को तोड़, ग्रपनी प्रकृति पर विजय प्राप्त कर विशुद्ध भाव में एकान्त में ग्रनन्त की उपलब्धि करना चाहता था। शायद वह यह सोचता था कि ग्रनन्त इस जगत् ग्रौर जीवन से बाहर है। एक दिन ग्रचानक एक बालिका ने उसे ग्रपने स्नेह-पाश में ग्राबद्ध कर ग्रनन्त के ध्यान से जीवन ग्रौर जगत् में लौटा लिया। जगत् में उस संन्यासी ने देखा कि क्षुद्र से ही वृहत् है, सीमा से ग्रसीम है, ग्रौर प्रेम से ही मुक्ति है। जैसे ही प्रेम का ग्रालोक दिखाई पड़ा, वैसे ही ग्राँखें बन्द करने पर उसने देखा कि सीमा में भी सीमा नहीं है।

महादेवी वर्मा ने, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, ग्रप्राप्तव्य को ही ग्रपने प्रयत्न का लक्ष्य रखा है। उन्होंने ग्रपनी सारी उत्कण्ठा, विह्वलता तथा उद्वेग को लेकर ग्रपने जीवन के ग्रतिथि का ग्रनुसन्धान करना चाहा है।

"इस ग्रचल क्षितिज रेखा के
तुम रहो निकट जीवन के
पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके।"

जन्म-मरण के समय सुख-दख की जो स्थिति रहती आई है, वह जीवन में उल्लास-विषाद की प्रेरणा देती रही है। बार-बार मरने के विषाद की अनुभूति को प्राप्त करने के लिए बार-बार जन्म-ग्रहण की अनिवार्यता को भी स्वीकार करना पड़ेगा। उनकी इस आकांक्षा के सामने उनका बौद्ध-दर्शन पराजित हो जाता है। वे कहती हैं—

"घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !
जलधि-मानस से नव जन्म पर
सुभग तेरे ही दृग-व्योम में।
सजल श्यामल मन्थर मूक-सा
तरल अश्रुविनिर्मित गात ले,
नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय !
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !"

जीवन की नश्वरता को समझकर वे कहती हैं—

"विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन!"

मरने का अधिकार, जो प्रेम की सबसे सात्विक माँग है, को कवयित्री रखना चाहती है—

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।"

कवयित्री ने खण्ड में अखण्ड तथा सीमित में असीम को भी समझने की चेष्टा की है। अनन्त तब तक प्राप्तव्य माना नहीं जा सकता, जब तक शान्त न हो। महादेवी वर्मा में एक बहुत ही प्राञ्जल कवि-हृदय है। उनकी काव्य-प्रवृत्तियों की विविधता में भी एक ऐसी एकरूपता है, जो हिन्दी के अधिकांश कवियों को प्राप्त नहीं। वे जानती हैं कि—

"विश्व में वह कौन सीमाहीन है,
हो न जिसका खोज सीमा में मिला?
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान् हो ?"

7

महादेवी की कविता

विनयमोहन शर्मा

['महादेवी का काव्य व्यक्तिगत मानसिक संघर्ष, अभाव और बुद्ध के दुख-वाद से प्रभावित है। दुख को उन्होंने 'मधुर-भाव' के रूप में स्वीकार किया है। उसमें उनकी प्रेयसी की भूमिका है, जो परोक्ष प्रिय के लिए अहर्निश आतुर होती रहती है। प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँख-मिचौनी से उनका काव्य क्रीड़ामय हो उठा है। वे कहती हैं—

प्रिय चिरन्तन है सजन,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।']

छायावाद-युग ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन। प्रगतिवाद (साम्यवाद) के नारे से प्रभावित हो जब छायावाद के मान्य कवियों ने अपनी आँखें पोंछकर भीतर से बाहर झाँकना प्रारम्भ कर दिया, महादेवी की आँखें भीगती रहीं, हृदय सिरहन भरता रहा, ओंठों की ओटों में आहें सोती रहीं और मन किसी निष्ठुर की आरती उतारता ही रहा। दूसरे शब्दों में वे अखण्ड भाव से अन्तर्मुखी बनी रहीं।

छायावाद के उन्नायक कवि पंत ने 'रूपाभ' की प्रथम संख्या में उसका विरोध करते हुए लिखा था, "इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती, उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।" भगवतीचरण वर्मा ने प्रगतिवाद के प्रकाश—(?)युग में छायावाद की 'दीपशिखा' संजोने वाली इस कवयित्री की 'विशाल-भारत' में निर्दय भर्त्सना की थी, इसके भावैक्य को पलायन-प्रवृत्ति और प्रतिगामी कहा था। फिर भी, महादेवी छायावाद की वकालत करती ही रहीं—"मनुष्य की वासना को बिना स्पर्श किये हुए, जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को समस्त सजीव वैभव के साथ चित्रित करने वाली उस युग (छायावाद) की अनेक कृतियाँ किसी भी साहित्य को सम्मानित कर सकती हैं।···उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्र नहीं दिए क्योंकि वह स्थूल से उत्पन्न सौन्दर्य सत्ता की प्रतिक्रिया थी। अप्रत्यक्ष स्थूल के प्रति उपेक्षित

यथार्थ की नहीं जो आज की वस्तु है।"[1] कल्पना-पराङ्मुखियों से भी उन्होंने कहा, "जीवन की समष्टि में सूक्ष्म से इतने भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह तो स्थूल से बाहर कहीं अस्तित्व ही नहीं रखता। अपने व्यक्त सत्य के साथ मनुष्य जो है और अपने अव्यक्त सत्य के साथ वह जो कुछ होने की भावना कर सकता है वही उसका स्थूल और सूक्ष्म है और यदि इनका ठीक संतुलन हो सके तो हमें एक परिपूर्ण मानव ही मिलेगा।"[2] जिस भीतर-बाहर के संतुलन की यह बात महादेवी ने सन् 1940 में कही थी उसी को दस वर्ष बाद पंत ने प्रगतिवाद से मुख मोड़कर 'उत्तरा' में उद्घोषित किया है।[3] पंत के बाहर से भीतर लौटने की भविष्य-वाणी भी महादेवी ने की थी—"हमें निष्क्रिय बुद्धिवाद को और स्पन्दनहीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पारकर कदाचित् फिर चिर-संवेदन रूप सक्रिय भावना में जीवन के परिमाणु खोजने होंगे, ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है।" (आधुनिक कवि) आज तो पंत ही नहीं, निराला, अज्ञेय, राहुल आदि अनेक लेखक प्रगतिवाद के क्षेत्र से विमुख हो चुके हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है—"छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवीजी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं···अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव-केन्द्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ छूट-छूटकर झलक मारती रहती हैं।"

प्रश्न यह है कि महादेवी की भावनाओं की झलकें क्या रहस्यवाद की सीमा के अन्दर परिगणित की जा सकती हैं? और क्या महादेवी का रहस्यवाद, कबीर, जायसी, मीरा की परम्परा है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व संक्षेप में रहस्यवाद और छायावाद की सीमा समझ लेनी होगी। आचार्य शुक्ल इन दो शब्दों को इस प्रकार समझाते हैं, "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए, एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि इस अनन्त और अज्ञात प्रिय को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है···छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।···छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।"[4] 'काव्य में रहस्यवाद' में वे पुनः छायावाद का अर्थ स्पष्ट करना चाहते हैं, "जो छाया-वाद प्रचलित है वह वेदान्त के पुराने प्रतिबिम्बवाद का है। यह प्रतिबिम्बवाद सूफियों

1. आधुनिक कवि—१ (भूमिका)
2. वही
3. "मैं बाहर के साथ भीतर की क्रांति का भी पक्षपाती हूँ"····'उत्तरा' (भूमिका), पृ० 26
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास

के यहाँ से होता हुआ यूरोप में गया, जहाँ कुछ दिनों पीछे 'प्रतीकवाद' से संश्लिष्ट होकर धीरे-धीरे बंग-साहित्य के एक कोने में आ निकला और नवीनता की धारणा उत्पन्न करने के लिए 'छायावाद' कहा जाने लगा। यह काव्यगत रहस्य-वाद के लिए गृहीत दार्शनिक सिद्धान्त का द्योतक शब्द है।" (पृष्ठ 142-43)

आचार्य शुक्ल छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय मानते हैं और शैली विशेष भी। इससे विवेचना के क्षेत्र में, यदि हम उन्हीं का शब्द प्रयुक्त करें तो 'गड़बड़-झाला' हो जाने की सम्भावना हो गई है। विषय सुलझने की अपेक्षा अधिक उलझ गया है। महादेवी ने 'यामा' की भूमिका में इन वादों की चर्चा करते हुए कहा है, "प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, नीड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघु विशालता, कोमल कठोरता, चंचलता, निश्चलता और मोहज्ञान का प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेक-रूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया गया जिसका एक छोर किसी असीम चेतना और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा, परन्तु इस सम्बन्ध में मानव-हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी। क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुरागजनित आत्म-विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता, इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुर व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य (छायावाद) का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।"

महादेवी ने भी छायावाद और रहस्यवाद को एक-दूसरे का पर्याय मान लिया है। परन्तु छायावाद युग की रचनाओं का विश्लेषण कर लेने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये दो शब्द भिन्न अर्थों के द्योतक हैं। छायावाद के काव्य में अन्तर्मुखी प्रवृत्ति प्रधान है। उसके लिए परोक्ष सत्ता के प्रकाशन की अनिवार्यता नहीं है, उसमें व्यक्ति की कोई भी अभावजनित अन्तर्व्यथा 'झलक मार सकती है', बाह्य प्रकृति के प्रति आसक्ति भी सरस हो सकती है। मानव या प्रकृति के अन्तर्बाह्य-सौन्दर्य के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के आयास की लक्षणात्मक अभिव्यंजना छायावाद की सीमा है और हृदय की व्यक्त-जगत् के प्रति जिज्ञासा और उसमें अन्तर्हित सूक्ष्म सत्य का आतुरतामय अन्वेषण रहस्यवाद की निकटता है। 'व्यक्त-जगत्' में साधक की हृदय-भूमि भी सम्मिलित है। तात्पर्य यह कि सभी अन्तर्मुखी रचनाएँ लाक्षणिक अभिव्यक्त के साथ छाया-वादी कहला सकती हैं, पर सभी छायावादी रचनाएँ रहस्यवादी नहीं हो सकतीं। रहस्यवादी रचनाओं में अव्यक्त सत्य या सूक्ष्म के प्रति ललक अनिवार्य है और

वह अव्यक्त सत्य निर्गुण ब्रह्म का पर्याय होना चाहिए। ब्रह्म के सगुण रूप की अभिव्यक्ति में रहस्य कहाँ है? यह बात सत्य है कि निर्गुण ब्रह्म सगुण संज्ञा लेकर ही काव्य में उतरता है, क्योंकि भावना शून्य के आलम्बन पर ठहर नहीं सकती।

जब महादेवी की रचना में समीक्षक रहस्यवाद पाते हैं तब सम्भवतः वे उनकी रचनाओं के शाब्दिक अर्थ तक अपने को सीमित रखते हैं। महादेवी ने रहस्यवाद की साधनात्मक अनुभूति को स्पर्श किया है, यह संदिग्ध है। यह हमारा ही संदेह नहीं है, उनको रहस्यवादिनी कहने वाले आचार्य शुक्ल को भी कहना पड़ा है, "वेदना को लेकर जो अनुभूतियाँ उन्होंने रखी हैं वे कहाँ तक वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना यह नहीं कहा जा सकता।" 'दीपशिखा' की भूमिका में स्वयं महादेवी ने स्वीकार किया है, "आत्मानुभूत ज्ञान आत्मा के संस्कार और व्यक्तिगत साधना पर इतना निर्भर है कि इसकी पूर्ण प्राप्ति और सफल अभिव्यक्ति सबके लिए सहज नहीं।" ज्ञान से जो दार्शनिक सत्य उपलब्ध हो सकता है वह हृदय के माध्यम से ही जब अनुभव किया जाता है तभी रहस्यवाद की सृष्टि होती है। इसमें सन्देह नहीं कि महादेवी में निर्गुण संतों की वाणी का स्वर ध्वनित होता है, पर उस ध्वनि में उनकी जीवन-साधना की अनुभूति का कितना अंश है यह स्पष्ट नहीं हो पाता। कबीर कहते हैं, "सुनु सखि पिउ महिं जीउ बसे, जिउ महिं बसे कि पीउ।" यह आत्मा-परमात्मा का ऐक्य महादेवी के जीवन में साध्य हो सका है या नहीं यह हम नहीं जानते। निर्गुणी संत अपने में सृष्टि और सृष्टि में अपने को कल्पना से नहीं, हृदय की ज्योति जगाकर देखते थे—

"हम सब माहिं सकल हम माहीं।
. हम मैं और दूसरा नाहीं।"

दादू भी यही कहते हैं:—

"सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठौर।
दादू देखै एक कौ दूजा नाहीं और।"

संतों के हृदय में उस सूक्ष्म की सघन सम्वेदना हुई थी। हक्सले बाह्य-मन और बुद्धि के परे एक और शक्ति का अस्तित्व मानता है, जिसे वह Third thing कहता है। इसी 'तीसरी वस्तु' या शक्ति के द्वारा निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार सम्भव होता है। प्राचीन द्रष्टा ऋषि इस वृत्ति के अस्तित्व की बराबर घोषणा करते आए हैं जिसे वे साक्षात-ज्ञान, अनुभव-ज्ञान या अपरोक्ष अनुभूति के नाम से पुकारते हैं। बुद्धि के क्षेत्र को नीचे छोड़कर निर्गुणी संतों ने अनुभूति के इसी राज्य में प्रविष्ट होने का दावा किया है। यहीं उन्हें 'परम सत्ता' का साक्षात्कार हुआ है। यह बात सत्य है कि अपनी अलौकिक अनुभूतियों को समझाने के लिए उन्हें स्थूल उपकरणों और लौकिक भाषा का आश्रय लेना पड़ा है।

संतों की वाणियों में जो अनुभूत सत्य बार-बार प्रतिध्वनित हुआ है वह सार

रूप में इस प्रकार है—परमात्मा और आत्मा की पृथक् सत्ता नहीं है, परमात्मा आत्मा में ही समाया हुआ है। अतएव उसकी खोज बहिर्वृत्ति से नहीं, अन्तर्वृत्ति से सम्भव है।

महादेवी के काव्य में हम परोक्ष सत्ता की साक्षात् अनुभूति में विश्वास करने में इसलिए झिझकते हैं कि उसमें मध्ययुगीन संतों के समान सघन एकस्वरता, सहज एकान्तता नहीं है। उसमें कभी अद्वैत के प्रति ललक झलकती है, कभी द्वैत के प्रति कामना उमड़ती है और कभी स्थूल के प्रति राग सहज हो उठता है।

अद्वैत का स्वर—(१) "बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ"
(२) "मधुर राग तू मैं स्वर संगम, चित्र तू मैं रेखाक्रम"

द्वैत की भावना—"तुम सो जाओ मैं गाऊँ
मुझको सोते युग बीते
तुमको यों लोरी गाते
अब आओ मैं पलकों में
स्वप्नों से सेज बिछाऊँ।"

स्थूल के प्रति राग—"कह दे माँ क्या देखूँ,
देखूँ खिलती कलियाँ या प्यासे सूखे अधरों को ?...
या मुरझाई पलकों से झरते आँसू-कन देखूँ ?"

उनमें प्रेम-तत्त्व का प्राधान्य होने से उन्हें सूफिनी कहने का भी साहस किया जाता है। पर सूफियों की भी आध्यात्मिक श्रेणियाँ और परम्पराएँ हैं। महादेवीके काव्य में उनकी खोज करना उनमें सहज प्रकाशित प्रेम-तत्त्व को भी अग्राह्य बनाना है। उनके काव्य को सूफियों से प्रभावित कहना भी उनका उपहास करना है।

महादेवी को मीरा की परम्परा में बतलाना भी इसी प्रकार कलाकार महादेवी को हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "युगों पीछे फेंक देना है।" मीरा की भक्ति साधनामूलक थी, महादेवी की काव्यसाधना कलामूलक है। उनका तथा-कथित 'सूक्ष्म प्रिय' क्या मीरा के 'जोगी' का पर्याय हो सकता है ?

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी की रचनाएँ निर्गुणी संतों की एक लक्ष्योन्मुख सघन अनुभूति और उनके साधन-मार्ग-परम्परा की नहीं हैं। उनके काव्य में व्यक्त सूक्ष्म को कल्पना की सुन्दर सृष्टि मानते हुए भी हम उनकी काव्य-प्रेरणा (Impulse) की सजीव यथार्थता में अविश्वास नहीं करना चाहते। उसे हम जीवन की क्रूर, विषम परिस्थितियों से विचलित और विकम्पित मानते हैं। जगत के अशोभन, स्थूल सत्य के साथ सामंजस्य न हो सकने के कारण उनका भावुक मन आघात खाकर अन्तर्मुख हो गया है और वहीं अपनी अभिरुचि की 'स्वप्निल प्रतिमा' के साथ क्रीड़ा करने लगा है। कभी उसके साथ मिलन-सुख अनुभव करता है; कभी स्त्रियोचित मान, अभिसार, शृंगार आदि का अभिनय करता है; परन्तु ज्योंही उसमें यह भाव जागृत होता है कि स्वप्निल प्रतिमा से

स्थूल मिलन असम्भव है, वह विरह की वास्तविक स्थिति में आकर विकल हो जाता है। कवयित्री के काव्य की प्रेरणा 'दीपशिखा' की इन दो पंक्तियों में मुखरित हो उठी है—

"मैं कण-कण ढाल रही अलि, आँसू के मिस प्यार किसी का,
मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।"

सारी कविताओं का (Impulse) इसमें है। इसी बात को श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में यों व्यक्ति किया है—"यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह-ज्योत्स्ना छिटकी पड़ रही थी, तभी अकस्मात् विफल प्रम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ-सी अंकित कर गई। आत्म-संयम का व्रत लिए हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया, वह कालान्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा। और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाए रखने की मानो हठ पकड़ बैठीं।"[1] (श्री नगेन्द्र 'फ्रायड' के अनुसार महादेवी की प्रेरणा काममूलक मानते हैं।) महादेवी ने कभी बहुत पहले गाया था—

"विसर्जन ही है कर्णाधार ? वही पहुँचा देगा उस पार।"

स्पष्ट है कि कवयित्री के इस विसर्जन में उल्लास नहीं, वेदना है; पर अपनी अभावजनित वेदना को छिपाने का उसने सतत प्रयत्न किया है। 'रश्मि' की भूमिका में उसने लिखा है, "संसार साधारणतः जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब-कुछ मिला है। उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी।" पर अपने ही कथन का मानो प्रतिवाद करती हुई, वे एक स्थान पर लिखती हैं—

"समता के धरातल पर सुख-दुख का मुक्त आदान-प्रदान यदि मित्रता की परिभाषा माना जाए तो मेरे पास मित्र का अभाव है।" सुख-दुख में समभागी होने वाले मित्र का अभाव क्या जीवन का कम उत्पीड़न है ? 'आधुनिक-कवि' की भूमिका में हम फिर पढ़ते हैं, "हृदय में तो निराशा के लिए कोई स्पर्श ही नहीं पाती, केवल एक गम्भीर करुणा की छाया देखती हूँ।" निराशा इसलिए नहीं है कि महादेवी ने अपने अभाव से सम्भवतः समझौता कर लिया है। आशा तभी तक रहती है, जब तक परिस्थिति में सुधार की सम्भावना होती है। एक बार इस सम्भावना के नष्ट हो जाने पर मन निराशा की ओर नहीं बढ़ता, पर वह आशान्वित होकर हर्ष से परिपूरित भी नहीं हो पाता। वह अपने अभाव को विसूरता रहता है, उस पर चिन्तन-मनन करता रहता है। कभी-कभी यह भी कल्पना कर वह अपने

1. साहित्य-दर्शन, पृष्ठ 221

को सुखी मानने का यत्न करता हूँ कि 'मैं निराश नहीं हूँ, प्रसन्न हूँ।' पर यह कल्पित उल्लास का झोंका क्षणिक ही रहता है। उसके हटते ही मन अपने दुख को नगण्य नहीं मानता। महादेवी की 'यामा' की भूमिका में यही मनोवृत्ति बोल रही है—"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं रहता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुख सबको बाँटकर विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

महादेवी को दुख का वह रूप प्रिय है जो मनुष्य के 'सम्वेदनशील हृदय को सारे संसार के एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है।' और उसका वह रूप भी 'जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम-चेतन का क्रन्दन है।' दूसरे शब्दों में व्यष्टि और समष्टि दोनों का दुख उन्हें प्रिय है। हम महादेवी को कलाकार, कवयित्री मानते हैं। यदि उनकी कविता को किसी 'वाद' से ही बाँधना हो तो उसे दुखवाद से अभिहित कर सकते हैं। उन्होंने स्वयं अपने जीवन को दुख या पीड़ा से सिक्त कहा है—

"चिन्ता क्या है हे निर्मम,
बुझ जाए दीपक मेरा।
हो जाएगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अँधेरा।"

गद्य की भाषा में भी वे कहती हैं, "बचपन में ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया। अवश्य ही इस दुखवाद को मेरे लिए नया जन्म लेना पड़ा। फिर भी उसमें पहले जन्म के संस्कार विद्यमान हैं।" इसका यह आशय हुआ कि महादेवी ने बुद्ध के संसार को देखने की दृष्टि ग्रहण की है। बुद्ध भगवान् ने दुख को आर्य-सत्य (Eternal truth) माना है। वे कहते हैं कि संसार में दुःख की सत्ता ठोस और स्थूल है। परन्तु कवयित्री बौद्धों के संघात या नैराश्य-वाद में विश्वास नहीं करती। अर्थात् वह आत्मा की वास्तविकता सत्ता से इन्कार नहीं करती। परन्तु वे बौद्धों के संतानवाद में बहुत अंश तक विश्वास करती हैं। संतानवाद में आत्मा और जगत् को अनित्य माना जाता है। महादेवी आत्मा को नित्य मानती हैं। उसके अमरत्व में आस्था रखती हैं। परन्तु क्षण-क्षण परिवर्तित दिखाई देने वाले जगत् की क्षण-भंगुरता को वे बौद्ध मत के समान ही स्वीकार करती हैं। यह सत्य है कि आत्मा का अमरत्व तभी तक कायम रहता है, जब तक परमात्मा में लीन होकर मुक्ति-लाभ नहीं कर लेतीं। वे कहती हैं—

"जब असीम से हो जाएगा
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तब देव! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल!"

निर्वाण हो जाने के बाद आत्मा-परमात्मा नामक दो तत्त्व कहाँ रह जाते हैं? संसार में पदार्थों का नहीं, उनके रूप का नाश होता है।

"स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक प्रसार
जलाकर मृत पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण,
सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान।"

मृत्यु को उन्होंने जीवन का 'चरम विकास' कहा है। उनका विश्वास है कि यदि जीवन शाश्वत हो जाए तो वह ह्रासोन्मुख हो जाता है। अतएव विकास के लिए मृत्यु को उन्होंने आवश्यक माना है। मृत्यु से जीवन का सर्वदा लोप नहीं हो जाता। उसकी एक स्थूल शृंखला मात्र विच्छिन्न हो जाती है।

अपने दुख की प्रतिच्छाया समस्त सृष्टि में देखने की वृत्ति हिन्दी-काव्य में नई नहीं है। ऊपर के विवेचन से सिद्ध है कि महादेवी का काव्य व्यक्तिगत, मानसिक संघर्ष, अभाव और बुद्ध के दुखवाद से प्रभावित है। दुख को उन्होंने 'मधुर भाव' के रूप में स्वीकार किया है। उसमें उनकी प्रेयसी की भूमिका है, जो परोक्ष प्रिय के लिए अहर्निश आतुर होती रहती है। प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँख-मिचौनी से उनका काव्य क्रीड़ामय हो उठता है। वे कहती हैं—

"प्रिय चिरन्तन है सजन,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।"

जब उनकी पलकें लज्जानत होना सीख ही रही थीं, तभी उनमें किसी अज्ञात की प्रेम-पीड़ा हँस उठी थी—

"इन ललचायी पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।"

तब से आज तक उनकी पीड़ा का अन्त नहीं हुआ, उनकी विरह-निशा का अस्त नहीं हुआ। वे कहती हैं—

"अलि विरह के पंथ में
मैं तो न इति अथ मानती री।"

इसलिए उनका जीवन 'विरह का जलजात' बन गया है। जिसकी 'चितवन'

ने उन्हें 'पीड़ा का राज्य' दे जीवन को झकझोर डाला है, उससे उनकी मनुहार है—

"जो तुम्हारा हो सके
लीला - कमल यह आज
खिल उठे निरुपम तुम्हारी
देख स्मति का प्रात।"

कभी-कभी उनका भ्रांत मन यह भी कल्पना कर लेता है कि वे जिसे खोज रही हैं, वह उनके हृदय में ही है—

"गँजता उर में न जाने
दूर के संगीत सा क्या?
आज खो निज को मुझे
खोया मिला विपरीत क्या?
क्या नहा आई विरह-निशि
मिलन मधु-दिन के उदय में?
कौन तुम मेरे हृदय में?"

पर उसी क्षण जैसे कवयित्री को अपनी वास्तविकता का भान होता है। वह पुनः अपने को अभावमय अनुभव करने लगती है तथा अपनी स्थिति से संतुष्ट होना चाहती है—

"एक करुण अभाव में
चिर तृप्ति का संसार संचित"

उसे अपनी कसक में माधुर्य अनुभव होने लगा है।

एक ही गीत में अनुभूति की विपरीत झलकियों से जान पड़ता है कि वह लिखना कुछ चाहती है, पर बेसुधमना होने के कारण कुछ और ही लिख जाती है। उसके गीतों में इस प्रकार की भाव-विषमता का यह अर्थ हो सकता है कि या तो वह एक कल्पना के पश्चात् दूसरी कल्पना की चिन्तना में व्यस्त रहती है, या उसका मन ही भूला-भूला-सा भटकता रहता है।

अपने कल्पित 'प्रिय' की कभी वह प्रतीक्षा करती है ('जो तुम आ जाते एक बार') और कभी उसे अपनी दशा दिखलाकर करुणा से आर्द्र करना चाहती है ('यह सजल मुख देख लेते, यह करुण मुख देख लेते।') उसे सपनों में बाँधने की आकांक्षा भी रह-रहकर आकुल करती है और एकान्त मिलन की अभिसार की साध भी सिहर उठती है। फिर भी उसका अभिमान आँसुओं की राह से बिलकुल गल नहीं गया। अपने प्रिय में अपना अस्तित्व मिटना उसे सह्य नहीं है—

"सखि! मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं?"

'रत्नाकर' की गोपियों की भी यही वृत्ति है। उनका विश्वास है कि अगर

'ससीम' 'असीम' में मिल जाएगा तो 'असीम' का उससे तो कुछ उत्कर्ष न होगा, प्रत्युत 'ससीम' ही बर्बाद हो जाएगा—

"जैहे बन-बिगरिनन वारिधिता वारिद की,
बूँदता बिलैहे बूँद बिबस बिचारी की।"

'अलौकिक प्रिय' के साथ प्रेम की यथासम्भव समस्त क्रीड़ाओं का प्रदर्शन महादेवी की रचनाओं में बिखरा हुआ है। उसका कथन है कि उसने सृष्टि के भीतर ही अपने प्रिय को पहचान लिया है। तभी वह आश्वस्त हो कहती है—

"जो न प्रिय पहचानती
कल्प युग व्यापी विरह को
एक सिहरन में सम्हाले
शून्यता भर तरल मोती
से मधुर सुध दीप वाले
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पंदन मैं मनाती ?"

वह उनके उन्मन संदेश भी जानती हैं, इसीलिए नयनों में पावस और प्राणों में चातक बसाती हैं। परन्तु कवयित्री अपनी विरह-साधना का अन्त नहीं चाहती। प्रतीक्षा-रस में उसकी अटूट ममता है।

"इस अचल क्षितिज रेखा से
तुम रहो निकट जीवन के
पर तुम्हें पकड़ पाने के
सारे प्रयत्न हों फीके
तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन जाऊँ
काटूँ वियोग पल रीते
संयोग समय छिप जाऊँ।"

ब्राउनिंग के समान वह भी अतृप्ति को जीवन मानती हैं। इसीलिए उनकी काव्य में विरह और मिलन की समानान्तर निकटता लक्षित होती है।

महादेवी के काव्य में प्रकृति से परिचय पाना शहराती ड्राइंग-रूम (Drawing room) के फर्श पर वन-प्रांगण की हरी दूब को खोजने के समान अप्राकृत प्रयत्न है। वे मानव-मन की कवयित्री हैं। बाह्य-सृष्टि को काव्य में सिंगारना उनका काम नहीं है। वे तो प्रकृति से ही अपना शृंगार कराती हैं—

"तव रंजित कर दे ये शिथिल चरण
ले अशोक का अरुण राग
मेरे यौवन को आज मधुर
ला रजनीगंधा का पराग,

यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सम्हाल !"

उन्होंने फूलों के नाम सुन रखे हैं, पढ़े भी हैं; पर कौन फूल कब कहाँ खिलता है, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं रही। हरसिंगार, शेफाली, दुपहरिया का फूल भिन्न-भिन्न नहीं एक ही फूल हैं इसे जानने का भी उन्हें अवकाश कहाँ ? प्रकृति उनके काव्य को अलंकृत करने का कार्य अधिक करती है। वह उनकी भावनाओं की पृष्ठभूमि बनती है, स्वयं काव्य नहीं। उनके काव्य में तारक, ओस, बिजली, बादल आदि की बड़ी महिमा है। वे बार-बार गीतों में भिन्न-भिन्न प्रतीकों और नामों में झलक उठते हैं। वास्तव में प्रकृति में उन्होंने अपनी ही आशा, निराशा, आकांक्षा और उत्कण्ठा के चित्र आरोपित किये हैं। वे कभी-कभी स्वयं विराट् रूप धारण कर विराट् की मिलन उत्कण्ठा में प्रकृति के उपकरणों को अपने शृंगार का साधन बनाती हैं।

"शशि के दर्पण में देख देख
मैंने सुलझाये तिमिर केश"

प्रकृति में मन के न रमने के कारण वह उनके काव्य में पूरी तरह से बिम्बित नहीं हो पाई। फिर भी आश्चर्य है कि वे सृष्टि के कण-कण को पहचानने का दावा करती हैं। इसीलिए हमारा सन्देह दृढ़ होता है कि महादेवी का काव्य कल्पना की सुन्दर सृष्टि है; अनुभूति के साथ उनकी अभिव्यक्ति का बहुत कम तारतम्य है।

गीत-कर्त्री की दृष्टि से महादेवी को प्रसाद और निराला के बीच की शृंखला कहा जाता है। प्रसाद के गीतों में भाव-प्रवणता (Emotion), निराला के गीतों में चिन्तन (Intellect) और महादेवी के गीतों में दोनों का समावेश है। निराला के गीत-स्वर ताल की शास्त्रीय मर्यादा के साथ चलते हैं और साथ ही दृश्यों की शृंखला में भी जकड़े हुए रहते हैं। प्रसाद और महादेवी के गीतों में संगीत-शास्त्र का कोई बन्धन नहीं है। निराला में शब्दों के ह्रस्व-दीर्घ के विकार कम पाए जाते हैं, प्रसाद में अधिक। पर महादेवी में प्रसाद से कम और निराला से अधिक मिलते हैं। निराला में भावों की अन्विति के साथ गीत पूर्ण होता है। प्रसाद में भी प्रायः भाव विच्छिन्न नहीं हो पाता, पर महादेवी के गीतों में भावों की विच्छिन्नता पाई जाती है। उनका एक गीत एक ही भाव की पूर्ण परिणति नहीं होता। उसमें कई भाव झलक उठते हैं।

छायावादी युग की काव्य-कला महादेवी में पूर्ण वैभव के साथ दिखाई देती है। शब्द की अभिधा शक्ति का वहाँ ज़रा भी सम्मान नहीं है। लक्षणा, प्रतीक और व्यंजना से वह ओत-प्रोत है। कवयित्री प्रतीकों के प्रयोग में बहुत स्वच्छन्द है। एक प्रतीक एक ही अर्थ में सब जगह प्रयुक्त नहीं होता। कभी-कभी भिन्न स्थलों पर संदर्भ के अनुसार भिन्न अर्थ देता है। इसी से काव्य प्रायः दुर्बोध हो जाता है। प्रसाद और पंत के समान वचन, लिंग आदि के प्रयोगों में वे व्याकरण के नियमों से

बँधना नहीं चाहतीं।

अभी तक रचना-काल की दृष्टि से महादेवी के निम्न कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—1. नीहार, 2. रश्मि, 3. नीरजा, 4. सांध्यगीत, 5. नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्यगीत का सम्मिलित रूप—'यामा', 6. दीप-शिखा। इन संग्रहों में क्रमिक रचनाओं में सम्भवतः आयु के अनुसार भाव-विगोपन की प्रवृत्ति रही है, पर 'दीप-शिखा' तक पहुँचते-पहुँचते इनका हृदय क्रमशः खुलता गया है और अभिव्यक्ति स्पष्ट होती गई है। 'नीहार' की उदासी खीझ और झुँझलाहट 'दीप-शिखा' तक पहुँचते-पहुँचते दूर हो गई हैं और उसमें परिस्थिति का सर्वोच्च आस्वाद, अभाव का आत्मसन्तोष प्रकाशित हो उठा है। 'दीप-शिखा' के आगे किस मनोराज्य की भूमि कवयित्री देखना चाहती है, यह भविष्य के गर्भ में है।

8

महादेवी का काव्य-शास्त्र

देवराज उपाध्याय

['महादेवी के काव्य-शास्त्रीय विचारों का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उन्होंने काव्य को जीवन की विशाल और स्वाभाविक पृष्ठ-भूमि पर रखकर समझने और समझाने की सिफारिश की है। उनके सामने जीवन अपने पूर्ण व्यापकत्व के साथ उपस्थित है। यही कारण है कि एक ओर जहाँ उन्होंने प्रगतिवाद की त्रुटियों का विश्लेषण किया है, वहाँ छायावाद की कमियों की ओर से आँखें नहीं मूँद लीं।

आज के कवियों से उनकी यही शिकायत है कि उन्होंने जीवन को उसके सक्रिय सम्वेदन के साथ स्वीकार न करके उसको एक विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण से छूभर दिया है और उन्होंने ललकारा है कि वे अध्ययन में मिली जीवन की चित्र-शाला से बाहर आकर, जड़-सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर, अपनी सम्पूर्ण संवेदन-शक्ति के साथ जीवन में घुल-मिल जावें।']

महादेवी मुख्यतः बाह्य-जगत् की स्थूलता और अन्तर्जगत् की सूक्ष्मता दोनों पर व्यापक दृष्टि से देखने वाली कवयित्री हैं। इनमें न तो किसी एक के लिए आग्रह है और न दूसरे के लिए निषेध, जब जिस तरह जिस किसी वस्तु की उनके हृदय पर जिस तरह की प्रतिक्रिया हुई है वही कुछ गीत की रागनियों के रूप में सामने आ गई है। उनमें जो कुछ है सहज है, स्वयमुत्थित, अन्तःप्रेरित है, श्रम-साध्य नहीं, प्रयत्न-सापेक्ष नहीं, अतः उन्हीं के शब्दों में उनकी सम्पूर्ण कविता का रचना-काल कुछ ही घण्टों में सीमित किया जा सकता है, "प्रायः ऐसी कविताएँ कम हैं जिनके लिखते समय मैंने चौकीदार को सजग करने वाली या किसी अकेले जाते हुए पथिक के गीत की कोई कड़ी नहीं सुनी।" चाहे जो हो, बुद्धि को नोच-नोचकर मस्तिष्क में जमकर बैठ गई रहने वाली बातों को अर्द्धनिशा के रोशनदान के सहारे कलम की नोक से खुरचकर काव्य की पंक्तियाँ गढ़ी गई हों अथवा अन्तस् की उमड़न अप्रत्याशित रूप में ही साकार हो गई हो, पर एक समय आता है जब कलाकार या कवि अपनी कृतियों पर विचार करने ही लगता है। किस मानसिक स्थिति ने सृजन की विवशता उपस्थित कर दी, उसकी मूल प्रेरणा का स्रोत कहाँ है, हृदय का वह केन्द्र जहाँ से काव्य-कृतियाँ अपना रूप धारण करती

हैं कहाँ है, इन सब प्रश्नों पर विधायक कवियों का ध्यान जाना अनिवार्य है। कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा के पृथक्त्व को मान लेने से अथवा कवि और भावक की पृथक् स्थिति स्वीकार करने लेने से आलोचना करने अथवा आलोच्य-कृति पर कुछ बातचीत कर लेने की सुविधा भले ही हो जाए, पर अन्ततः एक ऐसी सीमा आती है जहाँ दोनों का सम्मेलन हो जाता है। कवि और भावक परस्पर प्रेमालिंगन में आबद्ध हो एक-दूसरे के प्रति अपने हृदय को खोलकर रख देते हैं। उस समय इन दो व्यक्तियों में अथवा एक ही व्यक्तित्व के दो खण्डों में परस्पर निवेदन होता है या स्वीकारोक्तियाँ होती हैं, उसमें सच्चाई होती है, मार्मिक स्पंदन होता है और होती है विश्वासोत्पादकता।

आलोचक ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपनी सारी प्रतिभा दूसरों की काव्य-कृतियों की छानबीन, मूल्यांकन और महत्त्व निरूपण में ही लगाई है, एक भी काव्य-कृति उनके नाम पर प्राप्त नहीं है, अथवा है भी तो यों ही सी निर्जीव—बेगार-सी, टाली हुई सी चीज़। इस वर्ग के आलोचकों द्वारा बहुत-सी ज्ञातव्य बातें प्राप्त हुई हैं, काव्य के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ा है, पर इतना तो स्पष्ट ही है कि आलोच्य-वस्तु उनके लिए अज्ञात-कुल-शील बालक की तरह रही है जिस पर वे एक दूर-स्थित व्यक्ति की दृष्टि से देख रहे हैं। अज्ञात-कुलशील बालक रहना अतिव्याप्त-सा हो और जो कुछ मेरे भाव हैं उससे अधिक परिधि घेर लेता हो, पर इतना तो निश्चित है कि काव्य-रूपी शिशु के साथ इनका वह रागात्मक दृष्टिकोण नहीं जो एक मातृ-हृदय का होता है। ज़्यादा-से-ज़्यादा यही कहा जा सकता है कि इनका दृष्टिकोण एक लापरवाह पिता का है जो निर्माण में एक स्थूल साधन मात्र होता है, माँ की तरह नहीं जो स्थूल और सूक्ष्म न जाने कितने साधनों से जीवन के सृजन की संरक्षिका होती है। यही कारण है कि इस श्रेणी के आलोचकों में वह सहजता या मार्मिकता या बन्धुत्व की विश्वासोत्पादकता नहीं होती। पाठक का हृदय काव्य-शिशु के सम्बन्ध में कही गई बातों पर उस तत्परता के साथ विश्वास कर लेने पर तैयार नहीं होता जिस तरह माँ की बातों के लिए होता है। कवि के काव्य-शास्त्र में अर्थात् काव्य-सम्बन्धी विचारों में प्रत्यक्ष साक्षी (ex-Witness) की स्पष्टता रहती है और दृढ़ाधार होता है। कवि काव्य-सृजन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म व्यापार से साक्षात्-रूपेण परिचित रहता है, अतः उसकी बातें तुरन्त ही हृदय में घर कर लेती हैं। यह बात भले ही सत्य हो कि इस तरह के आलोचक में विचार एक सुव्यवस्थित और शृंखलित ढंग से न कहे गए हों जिन्हें तर्क-जाल से चारों ओर घेरने का प्रयत्न न किया गया हो, पर जो कुछ भी उन्होंने कहा है उसका महत्त्व इससे कम नहीं हो सकता। भावतरंगवाद (Romanticism) के उन्नायक कवि वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शैले इत्यादि ने काव्य तथा कला के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किए हैं वे किसी भी तटस्थ आलोचक से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं और साहित्य के पाठकों के द्वारा कम आदर से नहीं देखे जाते।

महादेवीजी का काव्य-शास्त्र भी अंग्रेजी के इन्हीं भावतरंगवादी कवियों की तरह है। एक तो छायावादी काव्य जिसकी महादेवी प्रधान प्रतिनिधि हैं और भाव-तरंगवाद मे अत्यधिक समानता है ही, यहाँ तक कि बहुत-से लोगों ने इसे छायावाद न कहकर रोमांसवाद कहना ही अच्छा समझा है। जिस तरह अंग्रेजी के भावतरंग-वादी कवियों ने अपने काव्य-संग्रहों के लिए लम्बी-लम्बी भूमिकाएँ लिखकर अपने काव्यात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है उसी तरह पंत, महादेवी इत्यादि ने भी अपनी पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखकर स्थूल की इतवृत्तितमकता के विरोध में खड़ी होनेवाली सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति तथा प्रकृति के खण्ड-खण्ड को चैतन्य के पुलक स्पर्श से अनुप्राणित पाने वाली मनोवृत्ति के आधार पर रचित कविताओं को स्पष्ट किया है। इस तरह महादेवी ने 'आधुनिक कवि' ओर 'दीप-शिखा' की भूमिकाओं में जिन विचारों का प्रतिपादन किया है उससे हिन्दी आलोचना के प्रवाह को एक नूतन गति मिलने की सम्भावना है। अभी इनमें प्रतिपादित विचारों को गम्भीरता पूर्वक मनन करने की ओर लोगों की दृष्टि नहीं गई है पर जब भी इनका अध्ययन होने लगेगा तो मेरा विश्वास है, पता चलेगा कि अपने काव्य की तरह महादेवी ने हिन्दी काव्य-शास्त्र के लिए भी नया और बहु-सम्भावना-गर्भित मार्ग का उद्घाटन किया है।

महादेवीजी अथवा छायावादी काव्य के प्रादुर्भाव के पूर्व हिन्दी में आलोचना की क्या अवस्था थी इसी प्रश्न पर विचार कीजिए। यह देखिए कि उस समय आलोचक जब किसी काव्य का मूल्यांकन या उसके महत्त्व-निरूपण की ओर अग्रसर होता था तो उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न क्या रहता था। सब आलोचनाओं का मूल प्रश्न यही रहा है और रहेगा कि कविता की कसौटी क्या है? उस पर विचार करने के लिए हम किस मापदण्ड से काम लें, पूर्ववर्ती आलोचक इस प्रश्न को इस ढंग से अपने सामने रखते थे। आलोच्य काव्यकृति के मूल्यांकन की कसौटी को आलोचक कहाँ ढूँढ़ें? स्वयं उसका मस्तिष्क जिस कसौटी की रूप-रेखा निर्माण करता है उससे काम लिया जाए अथवा दूसरे आलोचक जिस परम्परा-विहित-रस-दृष्टि का आदर्श रख गए हैं उनके सहारे काव्य का मूल्यांकन किया जाए। दूसरे शब्दों में आलोचक अपने विचारों को प्रधानता दे अथवा परम्परागत सिद्धान्तों को। आलोचना का यही रूप पद्मसिंहजी शर्मा तथा मिश्रबन्धुओं तक था। आलो-चक एक बड़ी ऊँची भूमि पर खड़े होकर कवि से एक बड़े ही बुजुर्गाना लहजे में बात करता था मानो कवि एक तुच्छ जीव हो जिसे खास दूरी पर रखना ठीक है। कवि ने काव्य-रचना की और बस उसका कर्त्तव्य समाप्त हो गया। उसकी एक सीमा खींच दी गई है, वह उस सीमान्त रेखा से आगे नहीं बढ़ सकता। उसके आगे आलोचक का आधिपत्य है। वह चाहे अपने शासन-क्षेत्र में अपनी सोच-समझ से परिस्थिति के अनुकूल नए नियमों को लागू करे अथवा अपने पूर्ववर्ती शासकों के नियमों को ही चलने दे। उसी क्षेत्र पर आलोचक की ही वैजयन्ती फहराएगी,

कवि की नहीं। आलोचक शासक है, कवि शासित। स्वर्गीय शुक्लजी में थोड़ी-सी उदारता थी। सामयिक अन्य क्षेत्र में प्रचलित विचारधाराओं के प्रति उनका हृदय-प्रांगण बन्द नहीं था। उन्होंने काव्यालोचन के क्षेत्र में अन्य-अन्य वर्गों को भी थोड़ा स्थान दिया, धर्म को, लोक-संग्रह को, नीति को। उन्होंने थोड़ा कवियों को भी साथ लिया, कवियों को कहना ठीक न होगा। कवि तुलसी को कहना अधिक ठीक होगा। उन्होंने कहा कि कविता पर विचार करते समय यह देख लेना बुरा नहीं है कि सगुण-धारा के भक्त कवि तुलसी के काव्य से उसको समर्थन मिलता है या नहीं।

इस समय आलोचना के क्षेत्र में महादेवी इत्यादि जैसे भावतरंगवादी विचारक आए और उन्होंने कहा कि आज तक काव्य-क्षेत्र के सामने आलोचना के प्रश्न को जिस ढंग से रखा गया है वह भ्रामक और त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने कहा कि काव्य-शास्त्र के सामने मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि काव्य की कसौटी आलोचक के अन्दर पाई जाय या बाहर। मुख्य प्रश्न यह है कि काव्य का सच्चा मापदण्ड कवि की रचना के अन्दर से ही ढूंढ निकाला जाय या कहीं बाहर से। काव्य-शास्त्र का मुख्य प्रश्न यही है और इसी आधार पर आलोचना की लड़ाई का निपटारा होना चाहिए। हमें दो ही बातें देखनी चाहिएँ कि कवि की मौलिक प्रेरणा में कहाँ तक स्पष्टता है, दृढ़ता है, स्फूर्ति है, निर्भीकता है और कहाँ तक उसकी अभिव्यक्ति के साथ न्याय हुआ है। अथवा हमें काव्य की आलोचना करते हुए यह भी देखना चाहिए कि यह मूल प्रेरणा कहाँ तक सत्य और ठीक है और इसमें कलात्मक रूप धारण करने की कहाँ तक स्वाभाविक अनुरूपता है और अभिव्यक्ति में जो कौशल-प्रदर्शन है वह कहाँ तक काव्य के जीवित सिद्धान्तों के अनुरूप है।

महादेवीजी ने जो साहित्य और काव्य सम्बन्धी विचार प्रकट किए हैं उनसे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह निष्कर्ष निकालना कहाँ तक ठीक है इसका विचार अभी ही होगा। पर यदि ऐसी बात है तो यह आलोचना के क्षेत्र में एक महान् क्रान्तिकारी परिवर्तन है। इसका अर्थ होता है कि आलोचना का संचालन-सूत्र आलोचक के हाथ से छिनकर कवि के हाथों में आ रहा है। आज तक वहाँ का सम्राट् आलोचक रहा है, पर अब राजमुकुट कवि के सिर पर बाँधा जा रहा है। आज के प्रजातन्त्रीययुग में जिस तरह यह विचारधारा फैलती जा रही है कि संसार की सम्पत्ति पर उन्हीं लोगों का अधिकार है जिनके श्रम से उसकी उत्पत्ति होती है और उन्हीं को उसके उपभोग, अथवा लाभालाभ प्राप्ति करने का अधिकार है, उसी तरह काव्य के महत्त्व-निरूपण में भी कवि व्यक्ति की प्रधानता होनी चाहिए, ऐसा नहीं कि कवि बेचारा काव्य की रचना करे और उसका उपभोक्ता हो आलोचक।

"कविः करोति काव्यानि, स्वादं जानन्ति पण्डिताः।"

यदि कोई काव्य की आलोचना करता है तो उसे कवि बनाना पड़ेगा। शेक्स-

पियर की रचना के साथ न्याय करने के लिए अपने में, कल्पित ही सही, पर कुछ शेक्सपियरत्व तो लाना ही पड़ेगा। यह कवि की विजय है; उसके जन्मसिद्ध अधिकारों की घोषणा है जो अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों के कण्ठ-स्वर से निस्सृत हुई थी और हिन्दी में महादेवी प्रमुख छायावादी कवियों की रागिनी से।

महादेवी आपसे कहेंगी कि यदि आप साहित्य के साथ न्याय करना चाहते हैं तो आप कविता और साहित्य के स्वाभाविक नियमों में ही उसकी यथार्थ कसौटी खोजिए। एक किसी कवि विशेष, मसलन तुलसी की रचना में नहीं, साहित्य तो प्रकृति के ज़र्रे-ज़र्रे, वायु की सरसराहट में, पक्षियों के कलरव में, बालक की मुस्कान में, और क्रोधाभिभूत मानव के अकाण्ड ताण्डव में लिखा है। वहीं आपको सच्चे काव्य और सच्चे साहित्य की कसौटी मिलेगी। जिस काव्य की आलोचना करने आप जा रहे हैं, उस काव्य में भी नहीं, उस कवि में भी नहीं, पर साधारण कवि में—उस कवि में जिसके अभिलेख मानवता के पृष्ठ पर अमिट अक्षरों में अंकित हैं। "साहित्य का आधार कभी आंशिक जीवन नहीं होता है, सम्पूर्ण जीवन होता है। साहित्य में मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती है जैसे धूप-छाँही वस्त्र में दो रंगों के तार जो अपनी-अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं। हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी सामंजस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं भी सम्भव नहीं। उसके लिए हमारा न अन्तर्जगत् त्याज्य है और न बाह्य, क्योंकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन है, आंशिक नहीं" (आधुनिक कवि, पृष्ठ 4)। कविता क्या है, कवि कौन है? इन्हीं मौलिक प्रश्नों को ठीक हल करना चाहिए, तभी हमारी साहित्यिक बुद्धि-तुला निश्चित हो सकेगी। यदि इन मौलिक प्रश्नों की समस्या को सुलझा सकें तो तब हमारा निर्णय अचूक होगा। अतः आप पाएँगे कि महादेवी ने कविता क्या है, साहित्य क्या है—इन प्रश्नों की छानबीन में अधिक परिश्रम किया है और अपने कुछ सिद्धान्त निकाले हैं।

महादेवी के कविता के मूलोद्देश्य के बारे में जो विचार हैं उनको अंग्रेजी के एक वाक्य के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है—Poetry is born of aesthetic mother and utilitarian father अर्थात् कविता की उत्पत्ति सौन्दर्यवादी माँ और उपयोगितावादी पिता से हुई है। अतः यह दोनों के गुण और दोषों की अधिकारिणी रही है। सत्य-काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है। 'दीपशिखा' के 'चिन्तन के कुछ क्षण' में की प्रथम पंक्ति में ही कहकर मानो महादेवी ने अपने काव्य-सम्बन्धी व्यापक मंतव्य को स्पष्ट कर दिया है।

अंग्रेजी रोमांटिक आलोचकों में हेज़लिट ने कविता की मूल प्रवृत्ति को Deepest and most universal spring of humun nature कहा है और अकाट्य शब्दों में घोषणा की है कि कविता में ही हमारा वास्तविक जीवन पुंजीभत रहता है और वही जीवन है। मनुष्य में काव्य के रसास्वादन की जहाँ तक

शक्ति है वहीं तक ही उसमें जीवन है। साधारण मानव के व्यक्तित्व में कवि का शाश्वत निवास रहता है, उसी के नाते वह आलोचक हो सकता है। कवि जब तक आलोचक के हृदय को छूकर स्पन्दित नहीं कर देता, तब तक उसके कथन का कुछ अधिक मोल नहीं रह जाता। आलोचक चाहे राजनीतिज्ञ हो, नीतिवादी हो, साम्यवादी हो, कम्यूनिस्ट हो, उसका कवि ही उसे सच्चा उपभोक्ता तथा व्याख्याता बना सकेगा।

कहने का यह अर्थ है कि महादेवी ने आलोचना की समस्या को इस ढंग से हमारे सामने रखा जहाँ आज तक के निरादृत कवि की प्रतिष्ठा बढ़ी। इस दृष्टि को अपनाने से हमारा काव्य-शास्त्र समृद्ध होगा—इसमें सन्देह नहीं।

महादेवी के काव्य-शास्त्रीय विचारों का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उन्होंने काव्य को जीवन की विशाल और स्वाभाविक पृष्ठभूमि पर रखकर समझने और समझाने की सिफारिश की है। काव्य में जीवन की माँग शुक्लजी ने भी कम नहीं की है, पर जीवन शब्द से उनका अर्थ होता था 'रामचरित मानस' में अभिव्यक्त जीवन से अथवा अपने दुर्बल क्षणों में वे जीवन का अर्थ अपने अर्थों में समझे गए जीवन से करते थे। पर महादेवी के सामने जीवन अपने पूर्ण व्यापकत्व के साथ उपस्थित है। यही कारण है कि एक ओर उन्होंने प्रगतिवाद की त्रुटियों का विश्लेषण किया है वहाँ छायावाद की कमियों की ओर से आँखें नहीं मूंद लीं। उन्होंने छायावाद के सम्बन्ध में कहा है कि "छायावाद के कवि को एक नए सौन्दर्य-लोक में ही यह रागात्मक दृष्टिकोण मिला, जीवन में नहीं, इसी से वह अपूर्ण है," यह छायावाद की बड़ी कड़ी आलोचना है। शुक्लजी ने भी तुलसी की 'कुछ खटकने वाली बातों' की ओर हमारा ध्यान आकर्षित नहीं किया है सो बात नहीं, पर वे छोटी-मोटी त्रुटियाँ हैं जिनकी अवस्थिति से काव्य पर कोई विशेष अपकर्षक प्रभाव नहीं पड़ता। जहाँ तक मौलिक दृष्टिकोण का प्रश्न है, जिसने तुलसी काव्य के रूप में साकारता प्राप्त है उसके प्रति वे नतमस्तक ही रहे हैं। पर महादेवी ने छायावाद की मौलिक त्रुटि की ओर निर्देश किया है। आज के कवियों से भी उनकी यही शिकायत है कि उन्होंने जीवन को उसके सक्रिय सम्वेदन के साथ स्वीकार न करके उसको एक विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण से छू भर दिया है और उन्होंने ललकारा है कि वे "अध्ययन में मिली जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड़ सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर, अपनी सम्पूर्ण सम्वेदन शक्ति के साथ जीवन में घुल-मिल जायँ।"

9

महादेवी की काव्य-साधना

प्रकाशचन्द्र गुप्त

[‘कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती है—इससे कुछ मतलब नहीं क्या ? इन गीतों में एक कहीं कुछ दूर की पुकार है, पवन का एक झोंका, लहरों की एक करवट, तारों का कुछ सन्देश।

‘जब असीम से हो जावेगा
मेरी लघु सीमा का मेल--।’

तम के झकझोरों से अपने क्षीण दीपक को अंचल में ढाँपकर नचाने का प्रयत्न कर रही रजनी-बाला किसी अनन्त प्रतीक्षा में लीन।

साधक की चिर-खोज से निरन्तर उनका काव्य आप्लावित है।

चिर-अतृप्ति की प्यास से उनका काव्य आक्रान्त है।

कुछ खोजते हुए का भाव निरन्तर उनकी कविता में है। तडित् के समान एक शब्द या वाक्य का आलोक इस काव्याकाश में पलभर के लिए हो जाता है, फिर वही गहनतम अँधेरा; और क्षीण दीपक की जुगनू-सी ज्योति में किसी अनजाने प्रियतम की खोज और प्रतीक्षा। चिर-विरह और निराशा ही उनके काव्य के प्राण और आधार हैं, किन्तु चिर-मिलन का भाव भी अनायास ही गीतों में पुलक उठता है।’]

सुन्दर मखमल के कोमल कालीनों से भरा कमरा, मन्द-मन्द स्मित हास्य बिखेरता दीपक, बाहर तारों से भरा अनन्त आकाश, गुन-गुन करती कवयित्री की वाणी—ऐसी कल्पना हमारे मन में उठती है। कम से कम श्रीमती महादेवी वर्मा के कविता-संसार का तो यह ठीक ही चित्र लगता है।

घुल-घुलकर गलने वाली शमा, मज़ार पर जलाया दीपक, ओस के आँसू, कोई अनन्त प्रतीक्षा, अनन्य विरह, आपकी कविता का ध्यान करते ही ये चित्र हमारी कल्पना में घूम जाते हैं।

‘नीहार’, ‘रश्मि’, ‘नीरजा’, ‘सान्ध्य-गीत’ और ‘दीपशिखा’ आपकी यात्रा के चरणचिह्न हैं। छायावादी पंत से प्रभावित ‘नीहार’ के झिलमिल उदय से अब तक आपके काव्य का प्रचुर विकास और प्रसार हो चुका है। ‘रश्मि’ और ‘नीरजा’ में

आपकी काव्य-प्रेरणा पूर्ण वयःप्राप्त और प्रौढ़ हो चुकी है। 'सान्ध्य-गीत' क्या सचमुच आपके काव्य-जीवन का सान्ध्य-गीत होगा ? क्योंकि आपके काव्य की 'दीपशिखा' कुछ मन्द और हल्की पड़ रही है। आपके गीतों में पच्चीकारी अधिक और भावना कम हो चली है। आपका मौन अधिकाधिक गहरा और गम्भीर होता जा रहा है। इधर आपका ध्यान देश और समाज की समस्याओं की ओर बरबस खिचा है और इसका प्रभाव आपके साहित्य पर भी पड़ेगा ही।

आज श्रीमती महादेवी वर्मा का आसन हिन्दी काव्य-जगत् में बहुत ऊँचा है। 'नीहार' के बाद से ही आपकी प्रतिभा का स्वतन्त्र विकास हुआ और अब आपके काव्य के अनेक गुण हमको अनायास ही स्मरण हो आए हैं—अतिरंजित भावना, कल्पना, निराशा, सुन्दर शब्द-विन्यास और रेखाचित्र, अमिट वेदना, एक अनन्त खोज; इन गुणों की आधुनिक हिन्दी-काव्य पर स्पष्ट छाप है।

'नीहार' में श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य की रूप रेखा बन रही है। एक अव्यक्त पीड़ा इन छन्दों में भी है, किन्तु उसका कोई स्थिर रूप नहीं। कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती है—इससे कुछ मतलब नहीं क्या ? इन गीतों में एक कहीं कुछ दूर की पुकार है, पवन का एक-एक झोंका, लहरों की एक करवट, तारों का कुछ सन्देश :

> "जब असीम से हो जावेगा
> मेरी लघु सीमा का मेल—"

उस पुकार को 'छायावाद' कहा गया है। पंत के 'मौन-निमन्त्रण' में इस छायावाद का सुन्दर, सुगढ़ स्वरूप हमें देखने को मिलता है, इस कविता का तत्कालीन तरुण गीतकारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। चतुर्दिक् इसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। विस्मय-भाव ही इस छायावाद का प्रधान गुण था :

> "झकोरों से मोहक सन्देश
> कह रहा हो छाया का मौन
> सुप्त आहों का दीन विषाद
> पूछता हो, आता है कौन ?"

अथवा—

> "अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
> तरल मोती-सा जलधि जब काँपता,
> तैरते घन मृदुल हिम के पुन्ज-से,
> ज्योत्स्ना के रजत पारावार में,
> ... ...
> सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
> नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है ?"

श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य में गीत भावना प्रधान है। गीति-काव्य

अन्तर्मुखी और अहम् में लीन होता है। हिन्दी का आधुनिक गीति-काव्य क्यों अन्तर्मुखी है, उसके कारण देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में मिलेंगे। 'एक बार' में श्रीमती वर्मा भारत की दशा पर क्रन्दन कर उठी हैं :

"कहता है जिनका व्यथित मौन
हम-सा निष्फल है आज कौन ?
निर्धन के धन-सी हास-रेख
जिनकी जग ने पाई न देख,
उन सूखे होठों के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार !
फिर एक बार, बस एक बार !"

अतः आपने जीवन की पीड़ा से भागकर गीत में शरण ली, किन्तु पीड़ा गीत में बिंधी ही रही। गीत का निर्झर अवश्य अजस्र वेग से बह निकला :

"चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कन-कन से फूट-फट,
मधु के निर्झर से सजल गान !"

आप स्वयं कहती हैं—"हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत-प्रधान ही कहा जाएगा। हमारा व्यस्त और वैयक्तिक प्राधान्य से युक्त जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपने प्रत्येक कम्पन को अंकित कर लेने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं।"

'नीरजा' और 'सान्ध्य-गीत' में आपका गायन बहुत मीठा और भीना हो गया है, जैसे गीत दुख से बोझिल आत्मविस्मृत-सा हो उठा हो। आपने अपने प्राणों की जीवन-बाती जलाई है, किन्तु वह मन्द-मन्द जलती है :

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !
सौरभ फैला विपुल धूप बन;
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल !
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल !"

इन गीतों का अपना विशेष गुण एक मधुर पीड़ा-भार है, जो 'नीरजा' और 'सान्ध्य-गीत' में कुछ हद तक अश्रु-धार भीग कर बह चुका है। कम से कम उसकी टीस अब उतनी असह्य नहीं। 'रश्मि' की भूमिका में कवयित्री ने अपने दुखवाद का

कुछ संकेत दिया है—

"सुख और दुःख के धूपछाँहीं डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है··· संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब-कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

"इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उसकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

"अवश्य ही उस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं, जिनसे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती।

"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है······विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

महादेवी वर्मा के काव्य की यह भावना कवयित्री की सहजप्रिय और बोधगम्य पीड़ा भी हो सकती है जो गीतों को, शैली के अमर शब्दों में, मीठा बनाती है, किन्तु हमें मानना होगा कि आधुनिक हिन्दी काव्य का निराशावाद युगधर्म से प्रेरित होकर संक्रान्ति-कालीन समाज की वेदना भी व्यक्त करता है।

'रश्मि' गीतों में यह दुःख पतिंगे के समान जल-जल उठता है। इस दुःख की अभिव्यक्ति में एक अधीरता, आतुरता और अस्थिरता-सी है।

"मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर"

'नीरजा' और 'सान्ध्य-गीत' में यह दुःखवाद शान्त, स्निग्ध और कोमल रूप धारण कर चुका है। आप कहती हैं :

"मधुर पिक हौले हौले बोल,
हठीले हौले-हौले बोल !"

आपका दुःखवाद यहाँ 'नीरजा' में बन्द भौंरे के समान केवल मन्द, मधुर, मत्त गुञ्जन कर रहा है। 'सान्ध्य-गीत' के वक्तव्य में आप लिखती हैं—"दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्त-क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिनमें संयम का नितान्त अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में है, जिनमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती

है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निःश्वास में भी है, जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती, और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्तक्रन्दन के पीछे छिपे हुए संयम से बाँधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।"

इस वक्तव्य की सहायता से हम आपके दुःखवाद का इतिहास समझ सकेंगे। क्रन्दन, सजल नयन, दीर्घ निःश्वास, फिर निःस्तब्धता—यह विकास का स्वाभाविक क्रम है।

'दीपशिखा' के गीतों में भाषा मोती के समान स्वच्छ और निर्मल है, उसके शब्दचित्र अनायास ही हृदय मथ डालते हैं किन्तु इस प्रौढ़ काव्य-प्रेरणा के पीछे किसी प्रबल झंझावात का अनुभव भी अवश्य है।

हम श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य को एक अनोखी चित्रशाला के रूप में भी देख सकते हैं। आपके छन्द अधिकतर शब्दचित्र हैं। आपकी अलंकृत भाषा और प्रकृति-साधना शब्दचित्रों में ही व्यक्त हुई है। आपके विचारों की अभिव्यक्ति सहज ही रूपक में होती है, क्योंकि आपकी अन्तरात्मा काव्य-सिक्त है:

"नयन की नीलम-तुला पर मोतियों से प्यार तोला,
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला!"

प्रकृति-बाला के अगणित अनुपम चित्र आपकी कविता में हैं। इनमें निरीक्षण की मात्रा कम हो सकती है, किन्तु चिन्तन की नहीं। ये चित्र कल्पना-प्रधान हैं। हम आपके प्रकृति-चित्र को एक विशाल तम के पट-रूप में देखते हैं और उस पटभूमि पर झिलमिलाते तारकदीप हैं अथवा चाँदनी की स्मित हँसी, क्यों अँधेरा ही आपको प्रिय है:

"करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियो!
तुम पलभर को बुझ जाना।"

किन्तु,

"तनमय तुषारमय कोने में
छेड़ा जब दीपक-राग एक,
प्राणों-प्राणों के मन्दिर में
जल उठे बुझे दीपक अनेक!"

आपकी चित्रशाला में प्रकृति के अनेक रेखा-चित्र दृढ़, सुष्ठु रेखाओं में अंकित हैं:

"कनक-से दिन, मोती-सी रात,
सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात;

मिटाता रंगता वारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?
शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगन;
बुझा क्यों उनको जाती मूक
भोर ही उजियाले की फूंक ?
गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती संध्याभरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग;
उसे तम की वढ़ एक झकोर,
उड़ाकर ले जाती किस ओर ?"

तम के झकझोरों से अपने क्षीण दीपक को अंचल में ढाँपकर बचाने का प्रयत्न कर रही रजनी-बाला—किसी अनन्त प्रतीक्षा में लीन—प्रकृति का यह रूप आप निरन्तर देखती हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा के गीतों का एक बड़ा आकर्षण उनकी किन्हीं अनमोल साँचों में गढ़ी भाषा है। भाषा की दृष्टि से आप आज हिन्दी के किसी भी कवि से पीछे नहीं। पंतजी की भाषा क्लिष्ट और संस्कृत भार से आक्रान्त है। 'निराला' के शब्दों में अवाध वेग अवश्य है, किन्तु उनकी भाषा में यह पच्चीकारी नहीं। अन्य कवियों में इस प्रकार चुन-चुनकर मोतियों की जड़ाई नहीं मिलती। भगवतीचरण वर्मा और बच्चन सर्वसाधारण के अधिक निकट हैं। किन्तु इस मधुर निर्झरिणी का मदिर कलकल निनाद अद्वितीय है। यह शब्दों की शिल्पकला आपकी अपनी विशेषता है।

यह भाषा अलंकार-भार से झुकी अवश्य है। किन्तु बड़े चतुर कारीगर के गढ़े ये अलंकार हैं। एक-एक शब्द चुन-चुन कर इस शिल्पी ने सजाया है :

"दुख से आविल, सुख से पंकिल;
बुद्बुद् से स्वप्नों से फेनिल—"

'युग-युग से अधीर' कवयित्री की भाषा है। आपके अधिकतर शब्द अमिश्रित संस्कृत से निकले हैं और आपकी ध्वनियाँ सदैव कोमल हैं। हिन्दी-काव्य-परम्परा में बिहारी, देव, केशव और मतिराम इसी श्रेणी के शिल्पी थे। शब्दों के इस मदिर आसव से बेसुध पाठक ध्वनि-चमत्कार में लीन रह जाता है। इन शब्दचित्रों के पीछे क्या है, वह नहीं पूछता।

महादेवी वर्मा की कविता भावना-प्रधान और कल्पना-प्रधान है। कोई निर्मम बुद्धिवाद इस काव्य की पटभूमि नहीं। कुछ खोजते हुए का भाव निरन्तर इस कविता में है। तड़ित् के समान एक शब्द या वाक्य का आलोक इस काव्याकाश में

पल-भर के लिए हो जाता है फिर वही गहनतम अँधेरा; और क्षीण दीपक की जुगनू-सी ज्योति में किसी अनजाने प्रियतम की खोज और प्रतीक्षा। चिर-विरह और निराशा ही इस काव्य के प्राण और आधार हैं, किन्तु चिर-मिलन का भाव भी अनायास ही गीत में पुलक उठता है :

"तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या
रोम-रोम में नन्दन पुलकित;
साँस-साँस में जीवन शत-शत;
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित;
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?"

'रश्मि' में आप कहती हैं :

"मैं तुमसे हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश;
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तडित् विलास।"

इस भावना को हम महादेवी का रहस्यवाद कह सकते हैं। साधक की चिर-खोज से निरन्तर यह काव्य आप्लावित है :

"पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं !
तम ने धोया नभ-पंथ
सुवासित हिमजल से;
सूने आँगन में दीप
जला दिये झिलमिल से;
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं
मैं प्रिय पहचानी नहीं !"

चिर-अतृप्ति की प्यास से यह काव्य आक्रान्त है :

"तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर जीवन प्यास-बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !"

इस अनन्य साधना के बाद कवयित्री ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मोम के समान गल-गलकर ही साधक जीवन सार्थक करता है और अपने प्रिय से मिलता है, और मर मिटने में ही चिर-मिलन की निद्रा है :

"तम में हो चल छाया का क्षय
सीमित की असीम में चिर लय;

एक हार में हों शत-शत जय;
सजनि ! विश्व का कण-कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी।"

इस प्रकार जहाँ आपकी कविता का एक छोर आधुनिक छायावाद को छूता है, दूसरा हिन्दी के भक्त और रहस्यवादी कवियों की काव्य-परम्परा को भी। आप हमारी परम्परागत काव्य-साधना को नई रूपरेखा देकर आगे बढ़ाती हैं :

"है युगों की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया
आज लघु जीवन किसी
निःसीम प्रियतम में समाया!"

किन्तु समाज की व्यवस्था पर जो आघात शुरू के गीतों में था, वह बीच में दूर हो गया था और आत्म-विस्मरण का भाव ही उनके काव्य का प्रधान गुण था। आपका काव्य बहिर्जगत् की विषमता भूलकर ब्रह्म में निलय होना चाहता था, किन्तु केवल अहम् के चतुर्दिक चक्कर काटकर आपकी प्रेरणा को सन्तोष न मिल सका। 'बंग-दर्शन' उसको बाह्य-जगत् की ओर लाया है।

10

महादेवी की प्रणयानुभूति

विश्वम्भर 'मानव'

['प्रेम का पहला लक्षण है अन्तर में एक प्रकार की कोमलता का जग पड़ना। जहाँ आकर्षण ने जन्म लिया नहीं कि व्यक्ति मधुरता मिश्रित किसी शीतल विह्वलता का अत्यन्त तीव्र अनुभव करने लगता है। उस समय एक से एक कोमल, एक से एक मधुर, एक से एक काव्यमयी भावनाएँ न जाने अन्तःसंज्ञा के किस स्तर के उद्गम में उमड़कर होंठों तक आती हैं जिनमें से कुछ व्यक्त हो जातीं और कुछ मूक रहकर प्रेमास्पद के इंगित को निहारती रहती हैं।

महादेवीजी की प्रणयानुभूति अलौकिक है। युग-युग की वियुक्त आत्मा की व्यथा को व्यक्त करने की आकुलता और उसकी अभिव्यक्ति की अनिर्वचनीय मधुरता के बीच ही महादेवी का मन अभी तक भ्रमण करता रहा है।']

जैसे अतल सागर के हृदय से उठने वाली लहरों, सीमाहीन अवकाश के अन्तर से बहने वाली हिलोरों, सूर्य के नयन-कोर से बरसने वाली किरणों और सुधानिधि के आनन से झरने वाली रजत-रेखाओं की कोई सीमा नहीं, उसी प्रकार मन के केन्द्र-बिन्दु से उगने वाली भावनाओं की कोई इति भी नहीं। विश्लेषण, अनुमान और अनुभव से इतना सिद्ध है कि इन चेतना-रश्मियों की उद्गम-वृत्ति किसी न किसी रूप में आनन्दमयी है। यह 'आनन्द' प्राणी के मानस में स्नेह-रस बनकर संख्यातीत लहर-बुद्बुद्-आवर्तों में परिवर्तित हो जाता है। मानव का मन ही नहीं, बाह्य सृष्टि भी यही दुहराती है। कहीं उषा मुस्कराती, शतदल खिलते और मधुप मकरन्द पान करते हैं, कहीं खग कूजते, पंख आकाश-पथ मापते और फिर दिनान्त में चारा लेकर नीड़ो की ओर लौट आते हैं; कहीं सन्ध्या घिरती, ज्योत्स्ना फूटती और कुमुदिनी खिल पड़ती है; कहीं मेघ घिरते, गर्जन होता और मयूर नृत्य करते हैं; कहीं गिरवर पिघलते, नदियाँ उमड़तीं और समुद्र का हृदय भरता है; कहीं नयन मिलते, आकर्षण बढ़ता और प्रतीक्षा होती है; कहीं दीनता बरसती, बरौनियाँ भीगतीं और सेवा-पथ स्वीकार करना पड़ता है; कहीं स्वतन्त्रता छिनती, देशानुराग जन्म लेता और प्राणों की आहुतियाँ दी जाती हैं। द्वेष, क्रोध यहाँ तक कि हत्या तक के जो उदाहरण सुनाई पड़ते हैं उनके मूल में भी प्रायः प्रेम रहता है।

प्रेम जीवन की सबसे व्यापक वृत्ति है। प्रकृति और प्राणिमात्र से ऊँचा उठकर यही प्रेम जब इनके स्रष्टा की ओर मुड़ जाता है तब वही लौकिक से अलौकिक होकर एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति जगाता है। महादेवी जी की प्रणया-नुभूति अलौकिक है—अर्थात् प्रेम का वह मधुर सम्बन्ध जो प्रेमी और प्रेमिका के मध्य चलता है, उनकी आत्मा ने केवल उस परम पुरुष से स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त मन की वह ममता जो माता के हृदय की विभूति है, वह अनुराग जो बहन के अन्तर में भाई के प्रति लहराता है, वह करुणा जो किसी भी दीन पर अनायास अपने अंचल की शीतल छाया डालती है, वह मुग्धता जो प्राकृतिक दृश्यों में लीनता का कारण बनती है, अन्यत्र प्रदर्शित हुई है। कविताओं में तो वे एक प्रणयिनी के रूप में ही दिखाई देती हैं, पर वे माँ के रूप में, बहिन के रूप में, स्वामिनी और प्रकृति-प्रेमिका के रूप में भी अन्यतम हैं—यह उनके संस्मरणों के संकलनों अर्थात् 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' से जाना जा सकता है। अब 'स्मृति की रेखाओं' की आत्मा में झाँकिए।

1. भक्तिन और मेरे बीच में सेवक-स्वामी का सम्बन्ध है, यह कहना कठिन है, क्योंकि ऐसा कोई स्वामी नहीं हो सकता जो इच्छा होने पर भी सेवक को अपनी सेवा से न हटा सके और ऐसा कोई सेवक भी नहीं सुना गया जो स्वामी से चले जाने का आदेश पाकर अवज्ञा से हँस दे।

2. एक युग से अधिक समय की अवधि में मेरे पास एक ही परिचारक, एक ही ग्वाला, एक ही धोबी और एक ही ताँगे वाला रहा है। परिवर्तन का कारण मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ हो सकता है इसे न वे जानते हैं, न मैं।

3. तब से मुन्नू की माई 'हम तौ आज नैहरे जाव' कहकर प्रायः यहाँ चली आती है। मेरा घर उसका एकमात्र नैहर है, यह सोचकर मन व्यथित होने लगता है।

4. मन में सोचा अच्छा भाई मिला है। बचपन में मुझे लोग चीनी कहकर चिढ़ाया करते थे। सन्देह होने लगा उस चिढ़ाने में कोई तत्व भी रहा होगा। मेरे पास रुपया रहना ही कठिन है, अधिक रुपए की चर्चा ही क्या ? पर कुछ अपने पास खोज-ढूँढकर और कुछ दूसरों से उधार लेकर मैंने चीनी के जाने का प्रबन्ध किया। वह जन्म का दुखियारा, मातृ-पितृहीन और बहिन से बिछड़ा हुआ चीनी भाई अपने समस्त स्नेह के एकमात्र आधार चीन में पहुँचने का आत्मतोष पा गया है इसका कोई प्रमाण नहीं—पर मेरा मन यही कहता है।

5. गर्मियों में जहाँ-तहाँ फेंकी हुई आम की गुठली जब वर्षा में जम उठती हैं तब उसके पास मुझसे अधिक सतर्क माली दूसरा नहीं रहता। घर के किसी कोने में चिड़िया जब घोंसला बना लेती है तब उसे मुझसे अधिक सजग प्रहरी दूसरा नहीं मिल सकता। जिसका दूध लग जाने से आँख फूट जाती है वह थूहर भी मेरे सयत्न लगाए आम के पार्श्व में गर्व से सिर उठाए खड़ा रहता है। धँस कर न निकलने वाले काँटों से जड़ा हुआ भटकटैया सुनहरे रेशम के लच्छों में ढके और

उजले कोमल मोतियों से जड़े मक्का के भुट्टे के निकट साधिकार आसन जमा लेता है।

इस प्रकार एक ओर आध्यात्मिक अन्वेषण और अलौकिक प्रणय-लीनता है। अपनी सत्ता को अभी तक साभिमान बनाए रखने पर भी महादेवीजी ने दूसरी ओर प्रकृति की तुच्छ से तुच्छ वस्तु और समाज में 'छोटे' की संज्ञा पाने वाले अनादृत व्यक्तियों के सुख-दुःख में अहर्निश जीवंत भाग लेकर अपने को भुला दिया है। वे केवल उन व्यक्तियों में से नहीं हैं जो कल्पना से भारतीय हाहाकार को चित्रित कर क्रान्ति या प्रगति के अग्रदूत कहलाते हैं, वरन् उन सच्ची आत्माओं में से हैं जो शीत, घाम, वर्षा में अपने पैरों से घूमकर झोंपड़ियों और परित्यक्त पथों पर अपनी आँखों से देखकर अनिवार्य होने पर भी अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न करते हुए, अपने ही हाथों से वास्तविक दीनों और व्यथितों की सेवा करती फिरती हैं। एक दार्शनिक की आत्मा में करुणा की ऐसी सजलता भरकर विधि ने जिस अपूर्व भारतीय महिला की सृष्टि की है उसके समान केवल वही प्रतीत होती हैं इतना जानते हुए भी जो इन्हें हृदय से पलायनवादिनी कहते हैं वे कितने प्रगल्भ हैं। पलायन के संस्कार उनमें हैं ही नहीं। पर यदि कोई यह सोचता हो कि काव्य-सृष्टि भी कवि को उसी विषय पर करनी होगी जिसे वह या उसका दल चुनकर दे तब उससे बड़ा अज्ञ और कोई नहीं है।

गीतों का कथा भाग

महादेवीजी के गीतों के मूल में एक क्षीण-सी कथा-धारा बहती है। ये कविताएँ उन मुक्तकों से भिन्न कोटि की हैं जिनमें एक छन्द या रचना का दूसरे छन्द या रचना से कोई सम्बन्ध नहीं होता, जैसे बिहारी के दोहे या उर्दू की गज़लें। जहाँ रुचि अथवा स्थिति से शासित होने पर कवि कभी प्रेम, कभी प्रकृति, कभी समाज-सुधार और कभी देश-भक्ति पर लिखता है वहाँ उसकी कोई भी रचना निरपेक्ष होती है। आधुनिक हिन्दी कवियों के बहुत-से गीत-संकलन इसी कोटि के हैं। पर 'प्रसाद' की 'आँसू' पुस्तिका एक भिन्न ही प्रकार की वस्तु है, उसके छन्दों के तरल-मोती एक विशिष्ट प्रेमिका की निष्ठुरता का अभिषेक करते हैं। महादेवीजी का प्रत्येक गीत वैसे अपने में पूर्ण है, पर वह एक विस्तृत भाव-माला का पुष्प है, अतः उसे सापेक्ष दृष्टि से देखना ही अधिक संगत होगा। उनकी रचनाओं को समझने के लिए कम से कम दो बातों का ध्यान रखना चाहिए। पहली बात तो यह है कि उनके गीत उज्ज्वल प्रेम के गीत हैं, अतः उनका उच्चारण करने के पूर्व फ्रायड को हृदय से निकाल देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि ये गीत एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। 'नीहार' में आकर्षण और पीड़ा की अनुभूति, 'रश्मि' में दार्शनिक सिद्धान्तों, 'नीरजा' में विरह-व्यथा, 'सान्ध्य-गीत' में आत्मतोष और 'दीपशिखा' में साधना की गति का प्रतिपादन है। अतः जैसा अभी कहा है किसी भी गीत को बीच से

उखाड़कर पढ़ने की अपेक्षा उनके सभी गीतों को एक बार पढ़कर उनकी कल्पना-भूमि और प्रणय-धारा को एक बार हृदयंगम कर लेना चाहिए। अच्छा होता वे अपने गीतों के शीर्षक दे देतीं। इससे उनके पाठकों को सुविधा हो जाती। पर किसी भी कारण से यह कार्य यदि उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ तब उनके दार्शनिक विश्वास और अनुभूति सम्बन्धी कुछ बातों को स्मरण रखना चाहिए।

काल-सीमा-हीन अवकाश में कोई अनादि-अनन्त सो रहा (निष्क्रिय) था। एकाकीपन के भार से अकुलाकर उसने अपनी कल्पना से रंगीन (सत्, रज, तम मिश्रित) स्वप्नों (जगत् की विभिन्न वस्तुओं) की सृष्टि की, जिनका उद्‌भव विकास और लय समुद्र में लहरों के समान उसी में होता रहता है। लहरें समुद्र होते हुए भी जैसे एक विशेष आकार में बँधने से अपने को समुद्र से भिन्न और वियुक्त समझें और किसी की आकुल खोज में सिहरती रहें, उसी प्रकार व्यापक चेतना जब 'नाम' 'रूप' में बँध गई तब अपने को ससीम समझने लगी और असीम के अन्वेषण के लिए विह्वल हो उठी।

'मैं वही हूँ यह ज्ञान होने पर भी मैं उसमें घुलूँ न, थोड़ी दूर बनी रहूँ', यह अभीष्ट हुआ, क्योंकि मोक्ष, निर्वाण या लीन होने पर अपना अस्तित्व ही मिट जाएगा और तब वेदना की मधुरता की उस अनुभूति का जो केवल एकाकार न होने की स्थिति में ही सम्भव है, भान कैसे होगा? इसी से युग-युग की वियुक्त आत्मा की व्यथा को व्यक्त करने की आकुलता और उसकी अभिव्यक्ति की अनिर्वचनीय मधुरता के बीच ही महादेवी का मन अभी तक भ्रमण करता रहा है। इतनी सी कल्पनाओं के शत-शत रंगीन रूप धारण कर 'यामा' और 'दीपशिखा' में दुहराई गई है।

संयम

प्रेम पर लेखनी चलाने वाले प्रायः सभी कवियों में कहीं न कहीं असंयम आ गया है। इस सम्बन्ध में संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी, बंगला, उर्दू, हिन्दी सभी भाषाओं की एक-सी दशा है। उदाहरण देकर उत्तेजना उत्पन्न करना मुझे अभीष्ट नहीं, नहीं तो प्रत्येक भाषा के श्रेष्ठतम कवियों में यह दुर्बलता देखी जा सकती है। मनुष्य अन्त में मनुष्य ही है, यही कहकर सन्तोष करना पड़ता है। हिन्दी में महात्मा तुलसीदास ही एक ऐसे कवि निकले जो प्रेम-प्रसंगों का निर्वाह संयम के साथ कर गए। प्रत्येक मनोविकार अपने मूल रूप में अत्यन्त आवेशपूर्ण होता है, यह सत्य है। पर ऐसी नग्नता और आवेश की महत्ता मनोवैज्ञानिक के लिए हो तो हो, कवि के लिए नहीं है। कवि को अपनी बात संयम के साथ कहनी चाहिए। क्रोध में मनुष्य जिस समय जिह्वा पर से अपना शासन उठा लेता है उस समय वह अपने को कितना ही बड़ा वाग्वीर समझता हो, पर सुनने वाले उसे अशिष्ट और असभ्य ही कहते हैं। यही क्रोध जब संयम के साथ व्यक्त होता है तब उपयुक्त ही

नहीं अधिक शोभन भी प्रतीत होता है। यही दशा प्रत्येक मनोविकार की है। हिन्दी में आधुनिक कवियों ने यद्यपि रीतिकाल की शृंगार-प्रियता और अश्लीलता की प्रतिक्रिया में अपनी रचनाओं की सृष्टि की थी, पर उनमें भी मैथिलीशरण गुप्त जैसे एकाध कवि को छोड़ वासना की अभिव्यक्ति की कमी नहीं रही। इधर जब से प्रगतिवाद ने ज़ोर पकड़ा है तब से यथार्थवाद के नाम पर पूरी नग्नता कविता में प्रवेश कर गई है। ऐसी परिस्थितियों में जीवित रहकर और केवल प्रेम पर निरन्तर लिखने पर भी महादेवीजी ने अपने अन्तर की जिस सात्विकता या संयम-वृत्ति का परिचय दिया है वह उनके व्यक्तित्व की महत्ता की परिचायक ही नहीं, काव्य-गरिमा का आधार-स्तम्भ भी है।

एक आक्षेप

पंडित रामचन्द्र शुक्ल, उनके शिष्यों, अनुयायियों और प्रशंसकों; प्रगतिवाद के कवियों, समीक्षकों और समर्थकों तथा और भी कई साहित्य-प्रेमियों ने यह अपना मत प्रकट किया है कि महादेवीजी अनुभूति के आधार पर नहीं, अनुमान के आधार पर लिखती हैं। आध्यात्मिक चेतना के पक्ष में तर्क के लिए संस्कृत के दार्शनिक ग्रन्थ और प्रमाण के लिए प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक ऋषियों और साधु-सन्तों की जीवनियाँ खुली पड़ी हैं। पर समाजवादी ऐसी बातों पर ध्यान देने ही क्यों लगे ? वहाँ तो शास्त्र के नाम पर एकमात्र अर्थशास्त्र या फिर कामशास्त्र है। मुझे पूर्ण आशंका है कि पश्चिम की अविकल धारणाओं के आधार पर यदि समाजवाद ने इस देश में अपने पैर जमाए और उसमें भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन न हुए तो आगे के कुछ वर्ष घोर नास्तिकवाद के वर्ष हैं। ऐसी दशा में अध्यात्मवाद की रचनाओं के विपरीत प्रचार आवश्यक हो उठा है। कवि छोटे-मोटे आक्षेपों के प्रति उदासीन ही देखे गए हैं। पर कोई बात जब सीमा का अतिक्रमण कर जाती है तब कवि भी कुछ कहने को विवश हो जाता है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'ग़ालिब' की ग़ज़लों पर जब यह आक्षेप किया गया कि वे अर्थहीन हैं तब उसने विरक्ति के शब्दों में लिखा था :

"न सताइश की तमन्ना, न सिले की परवाह,
गर नहीं हैं मेरे अशआर में मानी न सही।"

इसी प्रकार महादेवी के काव्य पर जो आक्षेप किये गए हैं उनका उत्तर उन्होंने अपने ढंग से काव्य-ग्रन्थों की भूमिकाओं में देने का प्रयत्न किया है। पर अनुभूति की यथार्थता वाले सन्देह का समाधान उन्होंने काव्य के माध्यम से ही किया है। पहले तो लोगों की धारणा पर उन्हें आश्चर्य होता है—

"जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम की उलझन में खोई ?

मैं कण-कण में ढाल रही अलि ! आँसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का !'

—दीपशिखा

पर जब इस बात को सुनते-सुनते कान थक उठते हैं तब प्रति प्रश्न-पद्धति पर उत्तर देती हुई प्रश्न करने वालों से अत्यन्त सहज भाव से अपने अनुभवों का कोई अन्य समाधान चाहती हैं :

'जो न प्रिय पहचान पाती !
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत-सी तरल बन ?
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किस लिए हर साँस तम में
सजल दीपक-राग गाती ?
चाँदनी के बादलों से स्वप्न फिर-फिर घेरते क्यों ?
मदिर सौरभ से सने क्षण दिवस-रात बिखेरते क्यों ?
सजल स्मित क्यों चितवनों के
सुप्त प्रहरी को जगाती ?
कल्प - युग - व्यापी विरह को एक सिहरन में सँभाले,
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि-दीप वाले,
क्यों किसी के आगमन के
शकुन स्पन्दन में मनाती ?
मेघ-पथ में चिह्न विद्युत के गए जो छोड़ प्रिय पद,
जो न उनकी चाप का मैं जानती सन्देश उन्मद,
किस लिए पावस नयन में
प्राण में चातक बसाती ?'

—दीपशिखा

मनोदशाएँ

प्रेम का विषय जितना रोचक है, उतना विवादास्पद, उतना ही विषम। प्रेम की दशा में स्त्रियाँ कैसा अनुभव करती हैं यह सदा से मनुष्य की उत्सुकता का प्रधान विषय रहा है। नारी जो अनादि काल से मनुष्य के लिए पहेली बनी हुई है, उसके मूल में प्रमुख बात यह है कि वह पुरुष की अपेक्षा अधिक भावमयी होते हुए भी कहती कम है। फिर जिस प्रकार वह अनुभव करती है उसी प्रकार व्यक्त भी नहीं करती। कभी-कभी तो बिलकुल उल्टी बात कहती और विपरीत आचरण करती है। मनुष्य जो बाहरी व्यवहार को प्रमुखता देता है और जल्दी ही सब कुछ जानना चाहता है उसके सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाएँ बना लेता है। स्त्रियों के हृदय की हलचल का जो अधूरा ज्ञान हमें अभी तक प्राप्त है उसका दूसरा कारण यह है

कि उस हृदय का विश्लेषण अभी तक अधिकतर पुरुष-हृदय रहा है। नारी-हृदय के प्रेम का विश्लेषण ठीक से नारी-हृदय ही कर सकता है। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री-लेखिकाओं की संख्या अभी तक बहुत ही न्यून रही है, इसीसे यह काम अपूर्ण ही पड़ा है। परिणाम यह होता है कि स्त्रियों के सम्बन्ध में हृदय के बहुत-से विश्लेषण निजी धारणाओं के विकृत परिणाम-मात्र होते हैं। प्रमाण यह है कि इधर कवि ने अपना सारा जीवन दैवी-प्रेम की अनुभूति में व्यतीत कर दिया और उधर फ्रायड का अनुयायी अपने ही अनुमान लगाए चला जा रहा है ?

प्रेम, क्योंकि अनुभूति-साध्य विषय है, अतः उसमें कौन कितना गहरा उतर गया है यह काव्य में उसकी अपनी अन्तर्दशाओं और शरीर पर उनकी प्रतिक्रियाओं के चित्रण से जाना जा सकता है। आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तिगत सुख-दुःख से सम्बन्धित मनोविकारों के विश्लेषण और वर्णन की ओर बहुत ध्यान दिया गया है। इस दिशा में श्री जयशंकर प्रसाद को अत्यधिक सफलता मिली। मनोविकारों को मूर्त रूप देने और उसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म सूत्रों तथा गहरे-से-गहरे पटलों को देखने-दिखाने में उन्हें विशेष आनन्द आता था। महादेवी मनोभावों में डूबने के साथ-ही-साथ उनके कायिक प्रतिवर्तनों की सजीव मूर्तियाँ भी अत्यन्त कौशल से प्रस्तुत करती हैं।

किशोरावस्था और यौवन के संगम के कुछ ऐसे विलक्षण पल होते हैं जो प्रत्येक बालिका के शरीर और मन में नवीन परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। उन परिवर्तनों और अनुभूतियों का अर्थ उस समय वह मुग्धा स्वयं नहीं समझ पाती। हिन्दी में रीति-काल के कवियों ने इस दशा के बड़े मादक वर्णन किये हैं। पर प्राचीन भावज्ञों में विद्यापति ने इस अवस्था का चित्र खींचते-खींचते रस का सागर ही लहरा दिया है। भावुक पुरुष ही प्रणय की इस भूमि के दर्शन रस-लोलुपता की दृष्टि से करते-कराते हैं या स्त्रियाँ भी ऐसा अनुभव करती हैं, यह मैं कभी-कभी सोचा करता था। आशा नहीं करता था कि महादेवीजी भी किसी लजीली मुग्धा का चित्र खींचेंगी। सहसा एक दिन इस रचना पर दृष्टि पड़ी—

'सजनि तेरे दृग बाल !
चकित से विस्मित से दृग बाल—
आज खोये से आते लौट,
कहाँ अपनी चञ्चलता हार ?
झुकी जातीं पलकें सुकुमार,
कौन से नव रहस्य के भार ?

सरल तेरा मृदु हास !
अकारण वह शैशव का हास—
बन गया कब कैसे चुपचाप,
लाज भीनी सी मृदु मुस्कान

तड़ित् सी जो अधरों की ओट,
झाँक हो जाती अन्तर्धान।
सजनि वे पद सुकुमार!
तरंगों से द्रुतपद सुकुमार—
सीखते क्यों चंचल गति भूल,
भरे मेघों की धीमी चाल?
तृषित कन-कन को क्यों अलि चूम,
अरुण आभा सी देते ढाल?
मुकुर से तेरे प्राण!
विश्व की निधि से तेरे प्राण—
छिपाये से फिरते क्यों आज,
किसी मधुमय पीड़ा का न्यास?
सजल चितवन में क्यों है हास,
अधर में क्यों सस्मित निःश्वास?'

—रश्मि

प्रेम का पहला लक्षण है अन्तर में एक प्रकार की कोमलता का जग पड़ना। जहाँ आकर्षण ने जन्म लिया नहीं कि व्यक्ति मधुरता मिश्रित किसी शीतल विह्वलता का अत्यन्त तीव्र अनुभव करने लगता है। उस समय एक-से-एक कोमल, एक-से-एक मधुर, एक-से-एक काव्यमयी भावनाएँ न जाने अन्तःसंज्ञा के किस स्तर के उद्गम से उमड़कर ओठों तक आती हैं जिनमें से कुछ व्यक्त हो जातीं और कुछ मूक रहकर प्रेमास्पद के इङ्गित को निहारती रहती हैं। उस समय इच्छा होती है कि हमारे पास जो कुछ है वह अपने नेही के चरणों पर न्योछावर कर दें। किसी प्रकार हम केवल उसकी एक स्निग्ध चितवन और मधुर मुस्कान के अधिकारी हो सकें। उसे प्रसन्न देखने की इच्छा और भी अनेक रूप धारण करती है। उनमें से एक है अपने शरीर को उपयुक्त वेश-भूषा से संयुक्त करना। शृङ्गार, जो मन के उत्साह और आह्लाद का सूचक है, अपने ही को नहीं दूसरे को भी प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यह सरस उदाहरण एक बार फिर उद्धृत करना पड़ रहा है—

(1) लौकिक शृङ्गार :
'रंजित करदे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग;
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कवरी सँवार!
लहराती आती मधु-बयार!'

—सान्ध्य-गीत

(2) आध्यात्मिक श्रृङ्गार :

"शशि के दर्पण में देख-देख,
मैंने सुलझाये तिमिर केश,
गूँथे चुन तारक-पारिजात,
अवगुंठन कर किरणें अशेष;
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव श्रृङ्गार नहीं !"

—सान्ध्य-गीत

महादेवीजी के काव्य में दु:खपक्ष की प्रधानता है। उसका अधिकांश विरह-वेदना-समन्वित है। इसीसे उसमें आँसुओं के उल्लेख की प्रचुरता है। इच्छा होती है मैं महादेवी को आँसुओं की रानी—देवी-महादेवी कहूँ। उनके काव्य में प्रवाहित पीड़ाधारा में आन्तरिक वृत्ति के देर तक निमग्न होते ही एक प्रकार की मनोव्यथा का अनुभव पाठक को होने लगता है। इन पंक्तियों को फिर देखिए :—

"पुलक-पुलक उर, सिहर-सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर-भर ?
सकुच सलज खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुंजों में
रजत श्याम तारों से जाली
शिथिल मधु पवन गिन-गिन मधुकण,
हरसिंगार झरते हैं झर-झर !
आज नयन आते क्यों भर-भर ?"

—नीरजा

ज्योत्सना-धौत वासंती निशा है। मलय-पवन बह रहा है। नायिका उद्यान में है। पुष्पों की भीनी गंध, समीर का रोमांचकारी स्पर्श और उजली चाँदनी का रम्य-दर्शन उसके प्राण, तन और नयन में मादकता भरकर संज्ञाहीनता का आह्वान कर रहे हैं। ऊपरी दृष्टि से देखने पर ये पंक्तियाँ मधुऋतु की रजनी का सामान्य वर्णन-सा प्रतीत होती हैं। पर कवयित्री एक-एक साँस में न जाने कितनी बातें सोच रही है ? शेफाली उसकी ही आँखों के सामने सकुचा रही है, लजा रही है, खिल रही है। उसे तो ऐसा अवसर कभी नहीं मिला कि किसीकी समीपता प्राप्त करके वह भी एक पल को सकुचा पाती, लजा लेती, खिल उठती। सारा यौवन प्रतीक्षा में ही ढल गया, मन के सारे अरमान आँसू बनकर ही बिखर गए, समस्त जीवन केवल सूनेपन में ही परिवर्तित हो गया। डाली-डाली पर मौलश्री आज अलसाकर शयन कर रही है। मधु-पवन का उसे मादक परस मिला है। इतने पर भी वह न अलसायेगी ? पर उसके जीवन में विद्युत्-स्पर्श तो बहुत दूर, दर्शन भी दुर्लभ हो

उठा है। कभी होगा भी अथवा नहीं, इसका ही अब क्या भरोसा है ! कुञ्जों के नीचे झरते हरसिंगार की शय्या पर तम और चाँदनी आलिंगन-पाश में बद्ध पड़े हैं। और यह मधु-पवन ! इसे देखो, इस लोभी ने इतने मधु का संचय किया है कि उसके भार से इससे चला भी नहीं जाता। पर कितना अजान, कितना निष्ठुर है अपना प्रेमी जो हृदय के मानस को सूखते देख रहा है और आता नहीं। अन्तर भर उठता है, शरीर सिहर उठता है और आँसू की बूँदें बरौनियों में उलझकर रह जाती हैं। पर इससे लाभ ? सब व्यर्थ है ! सब विषादपूर्ण ! सब सारहीन ! विरह सत्य है ! प्रतीक्षा सत्य है ! ! व्यथा सत्य है ! ! !

चिंतन और साधना की दृष्टि से महादेवीजी को एकान्त, घोर निस्तब्धता और तम अत्यंत प्रिय हैं। तन्मयता के लिए इन तीनों की स्थिति अनिवार्य है। यद्यपि प्रत्येक आलोचक ने उन पर यह आक्षेप किया है कि उनका काव्य कल्पना-प्रसूत है, पर उनकी कुछ रचनाओं को ध्यान से पढ़ने पर यह आरोप मुझे सारहीन प्रतीत होता है। मेरी यह धारणा है कि वे चुपचाप किसी प्रकार की साधना में लीन हैं। साधना के प्रकट होने पर उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है और सच्चा साधक यह चाहता भी नहीं कि वह उसका प्रदर्शन करे। अतः इस सम्बन्ध में उनसे कुछ जानना कठिन ही है। उनकी 'स्मृति की रेखाएँ' से प्रकट होता है कि उनको सबसे अधिक निकट से जानने का सौभाग्य 'भक्तिन' उपाधिधारिणी उनकी किसी सेविका को प्राप्त है। पर उसकी जैसी विद्याबुद्धि है वह भी उस संस्मरण से प्रकट है ही। संस्मरणों से यह भी प्रत्यक्ष है कि रात के पल वे केवल सोने में नष्ट नहीं करतीं। कभी-कभी तो जगते-जगते प्रभात हो जाता है। 'स्मृति की रेखाएँ' में एक स्थान पर उन्होंने शीतलपाटी पर आसीन 'योगदर्शन' के अध्ययन की चर्चा की है। 'दीपशिखा' के पाँचवें, तेईसवें, उन्तीसवें, बयालीसवें और पचासवें गीत किसी प्रकार भी काल्पनिक नहीं हो सकते। उनके परिणाम क्रियात्मक ही हैं, नहीं तो अर्थ की संगति बैठ ही नहीं सकती। इन्हीं सब बातों के आधार पर मेरा अनुमान है कि वे अपने एकान्त क्षणों में कभी-कभी उस लीनता को प्राप्त होती हैं जो जीव का चरम लक्ष्य और सिद्धि है।

इच्छा :

इस असीम तम में मिलकर
मुझको पल भर सो जाने दो —नीहार
आ मेरी चिर मिलन-यामिनी !
तममयि ! घिर आ धीरे धीरे ! —नीरजा

कारण :

करुणामय को भाता है
तम के पर्दे में आना। —नीहार

प्रिय मेरा निशीथ-नीरवता में आता चुपचाप
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी पदचाप। —**नीरजा**

क्रिया :

मैं आज चुपा आई 'चातक',
मैं आज सुला आई 'कोकिल',
कंटकित 'मौलश्री' 'हरसिंगार'
रोके हैं अपने श्वास शिथिल ! —**सान्ध्य-गीत**
चल पलक हैं निर्निमेषी,
कल्प पल सब तिमिर-वेषी,
आज स्पन्दन भी हुई उर के लिए अज्ञात-देशी !
—**दीपशिखा**

फल :

सजनि कौन तम में परिचित-सा, सुधि-सा, छाया-सा आता ?
—**रश्मि**

मेरे नीरव मानस में
वे धीरे-धीरे आये ! —**नीहार**

पीछे निर्देश कर चुके हैं कि महादेवीजी के काव्य में मिलन के चित्र विरल हैं। 'रश्मि' की एक रचना में वे अपने को उस अज्ञात प्रियतम से घिरा पाती हैं। उस प्रकार के आभासों में श्रवण, नयन, घ्राण और स्पर्श सभी इन्द्रियों को थोड़ी देर के लिए तृप्ति प्राप्त होती है :—

श्रवण-सुख—

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत-सा वह कौन है ?

नयन-सुख—

तब चमक जो लोचनों को मूंदता,
तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है ?

घ्राण और स्पर्श-सुख—

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है ?

'दीपशिखा' में हमने उनके ही मुख से सुना है कि 'रात की पराजयरेख धोकर उषा ने किरण-अक्षत और हास-रोली' से स्वस्तिवाचन करते हुए उनका विजय-अभिषेक किया है। अब वे मिलन-मन्दिर में प्रवेश करनेवाली हैं। उस नर्म-कथा, उस मर्म-गाथा, उस रहस्य-वार्त्ता के कुछ स्वर दूसरों के कानों तक भी शीघ्र पहुँच पाएँगे ऐसी आशा लिए हम बैठे हैं।

11

कवयित्री महादेवी वर्मा

डाक्टर इन्द्रनाथ मदान

['महादेवी का जीवन विचित्र परिस्थितियों के प्रभावों से पूर्ण है। सम्पन्न ग्रौर शिक्षित परिवार में जन्म, चित्रकला ग्रौर संगीत की शिक्षा का प्रबन्ध, बुद्ध की करुणा की गहरी छाया, दार्शनिक चिन्तन, पति से पृथक् एकाकी जीवन, सेवा-भावना का ग्रत्यधिक उज्ज्वलरूप ग्रादि ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को ऐसा रूप दे दिया है कि हिन्दी ही नहीं भारत ग्रौर विश्व में कोई स्त्री कलाकार उनकी कोटि में नहीं ग्रा सकती। जीवन के पट में ऐसे बहुरंगी धागों का संयोग ग्रन्यत्र नहीं मिल सकता।']

ग्राधुनिक कवियों में श्रीमती महादेवी वर्मा का स्थान ग्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वह इसलिए नहीं कि वे स्त्री हैं, वरन् इसलिए कि उन्होंने ग्राधुनिक काव्य की कला ग्रौर साज-शृङ्गार में सर्वाधिक योग दिया है। छायावाद के प्रवर्त्तक स्वर्गीय बाबू जयशंकर 'प्रसाद' ग्रौर उसके उन्नायक सर्वश्री पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा सुमित्रानन्दन पंत के बाद उन्हीं की गणना होती है। महादेवीजी ने इन कवियों की ग्रपेक्षा छायावादी काव्य को सबसे ग्रधिक देन यह दी है कि काव्य उनके कण्ठ से विशुद्ध ग्रनुभूतिमय होकर फूटा है, ग्रौर उनकी कल्पना ग्रनुभूति से ऐसी घुल-मिल गई है कि यह धोखा होना कि ग्रनुभूति है या कल्पना, ग्रसम्भव नहीं है। हृदय की सूक्ष्मतम भावनाग्रों को जितनी सफलता के साथ देवीजी ने व्यक्त किया है, उतनी सफलता के साथ ग्रन्य कोई कवि शायद ही कर सका हो। उनके काव्य में कला का विकास न होकर हृदय की सचाई की झलक है। प्रसाद, निराला ग्रौर पंत तीनों ही वाह्य-विषय-परक कविता लिखने की ग्रोर विशेष उन्मुख रहे हैं—प्रसाद 'कामायनी' लिखकर, निरालाजी 'तुलसीदास' लिखकर ग्रौर पंतजी इधर की प्रगतिशील कविताग्रों का सृजन करके। परन्तु महादेवीजी ने ग्रारम्भ से लेकर ग्रन्त तक ग्रात्मपरक कविताएँ ही ग्रधिक लिखी हैं। उनकी वाणी गीति-काव्य के माध्यम से मुखरित हुई है, जिसमें वेदना ग्रौर सुकुमार कल्पना का ग्रनिवार्य सहयोग रहता है। गीति-काव्य के लिए ग्रावश्यक है कि एक कोमल मर्मस्पर्शी उद्गार नव-नीति-सदृश कोमल, कसक-भरे शब्दों में स्वाभाविक रूप से फूट पड़े ग्रौर

उसकी वेदना पाठक और श्रोता के हृदय में घर करती चली जाए। महादेवीजी में यह गुण है कि उनके गीत हृदय पर सीधे प्रभाव डालते हैं। वे वनफूल की भाँति अकृत्रिम हैं और उनमें कहीं बनावट नहीं है। छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति-तत्त्व को मिलाया, निरालाजी ने मुक्त छंद दिया, पन्तजी ने शब्दों को खराद पर चढ़ा कर सुडौल और सरस बनाया तो महादेवीजी ने उसमें प्राण डाले, उसकी भावात्मकता को समृद्ध किया। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रसाद, निराला और पन्त ने भाव-पक्ष की उपेक्षा की। नहीं, ऐसा कहना कवियों के प्रति घोर अन्याय होगा। उनकी कविता में भाव-पक्ष का उज्ज्वलतम रूप निखरकर सम्मुख आया है। हमारे कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि महादेवीजी ने कला-पक्ष की अपेक्षा हृदय-पक्ष पर अधिक आग्रह रखा है। उस बीच में कोई स्वाभाविक भावना यदि स्वतः ही नवीन छन्द में निस्सृत हो गई है तो वह महादेवी जी का जान-बूझकर छन्द परिवर्तन करना या नवीन प्रयोग करना नहीं कहा जा सका; जैसाकि प्रसाद, पन्त तथा निराला में हुआ है। प्रसादजी ने तो प्रवर्त्तक के नाते ही काव्य में अनेक परिवर्तन किये हैं। उदाहरणार्थ, जैसाकि प्रसाद जी के काव्य का अध्ययन करते समय देख चुके हैं, उनका 'प्रेम-पथिक' लिया जा सकता है जिसे उन्होंने ब्रजभाषा से खड़ी बोली में और बदले हुए छन्दों में लिखा। पन्त जी ने तो स्पष्ट ही 'पल्लव' की भूमिका में भी शब्दों की कोमलता-कठोरता, स्त्रीलिंग-पुंलिग में प्रयोग और ब्रज तथा खड़ी बोली के अन्तर के साथ नवीन छन्दों की ओर भी अंगुलिनिर्देश किया है। निरालाजी तो हिन्दी में छन्द के सम्राट् के नाते विख्यात हैं। उनकी कविता 'बन्धनमय छन्दों की छोटी राह' छोड़कर बही है। परन्तु महादेवीजी में ऐसा कहीं नहीं हुआ। उन्होंने तो केवल आत्म-प्रकाशन पर लक्ष्य रखा है और इस बीच में यदि नवीन शब्दों—प्रतीकों—और छन्दों के नमूने आ गए हैं तो वह स्वाभाविकता-वश। उसमें उनका ऐसा भाव नहीं है कि वे कोई पांडित्य-प्रदर्शन या नेतृत्व की चेष्टा कर रही हैं। इतना होने पर भी उनके विषय में यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उनके छन्दों—विशेषकर गीतों—का बेहद अनुकरण हुआ है और कई बार हमें यह कहने को बाध्य होना पड़ता है कि नवीन प्रयोग के प्रति उदासीन रहनेवाली इस कवयित्री का जो इतना अधिक अनुकरण हुआ उसका कारण यह है कि उनकी कविता में दर्द या टीस अधिक है, जो उनके युग की मूल भावना रही है और जिसको लेकर छायावाद जन्मा, पनपा और समृद्ध हुआ है। महादेवी जी की कविता में वेदना और करुणा का ऐसा साम्राज्य है कि जिसकी शोभा-श्री पर सौ-सौ स्वर्गों का सुख निछावर है। वेदना के पाप से गलकर उनके हृदय की द्रवीभूत अनुभूति पारे की भाँति तरल होकर बह निकली है।

लेकिन महादेवीजी की कविता की इस विशेषता का मूल कारण है—उनका जीवन। उनका जन्म अत्यन्त सम्पन्न परिवार में हुआ है। पिता बाबू गोविन्द प्रसाद वर्मा एम० ए०, एल-एल० बी, एडवोकेट और माता श्रीमती हेमरानी देवी

विदुषी तथा कलाप्रिय नारी हैं। शिक्षा के प्रति उनके विचार बड़े उदार हैं। इसीलिए महादेवीजी की स्कूली शिक्षा के साथ घर पर उन्हें चित्र-कला और संगीत की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया गया था। इस प्रकार उच्च विचारों के पिता तथा कविता और भावुकता की मूर्ति माता द्वारा संगीत-कला, चित्रकला और काव्य-कला के विकास की सुविधाएँ पाकर हमारी कवयित्री ने अपने बाल्य-जीवन के सुखद दिवस समाप्त किए। तभी 11 वर्ष की छोटी उम्र में शादी हो गई। उसके बाद उनको महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन और उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का अध्ययन करने का अवसर मिला। बुद्ध के प्रभाव से उनका जीवन ही बदल गया। उन्होंने निश्चय किया कि वे विवाहित जीवन नहीं बिताएँगी और बौद्ध भिक्षुणी होकर रहेंगी। घरवाले इस बात पर राजी न थे। उन्होंने अधिक विरोध न करके अपना अध्ययन चालू रखा। अन्त में प्रयाग यूनिवर्सिटी से संस्कृत में एम० ए० पास करने के बाद आपने अपने भिक्षुणी होने के स्वप्न को सेवा द्वारा पूरा करना चाहा। वे तब से पति से पृथक् रहकर प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधान आचार्या के रूप में कार्य कर रही हैं। समय मिलने पर—विशेष रूप से छुट्टियों में—वे गाँवों में जाकर वहाँ दवा-दारू भी करती हैं। अत्यन्त सादा जीवन बिताते हुए वे साहित्य-साधना में निरत हैं। पर उनका कथन है कि साहित्य-सेवा उनके सम्पूर्ण जीवन की साधना नहीं है। वे साहित्य-साधना तब करती हैं, जब उन्हें विद्यापीठ के कार्यों से अवकाश मिल जाता है। तभी उन्होंने कहा है—"मेरी सम्पूर्ण कविता का रचना-काल कुछ घंटों में ही सीमित किया जा सकता है। प्रायः ऐसी कविताएँ कम हैं, जिनके लिखते समय मैंने रात में चौकीदार की सजग वाणी या किसी अकेले जाते हुए पथिक के गीत की कोई कड़ी नहीं सुनी।" इस प्रकार उनका जीवन मूलतः सेवा का है—रचनात्मक कार्यकर्त्ता का है।

जैसाकि हम पहले कह चुके हैं कविता के संस्कार उन्हें अपनी माँ के द्वारा प्राप्त हुए हैं। उन्होंने अपने सम्बन्ध में लिखा है—'माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के स्व-रचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद रचना आरम्भ की थी। मेरे प्रथम हिन्दी-गुरु भी ब्रजभाषा के ही समर्थक निकले अतः उल्टी-सीधी पद-रचना छोड़कर मैंने समस्या-पूर्तियों में मन लगाया। बचपन में जब पहले-पहल खड़ी बोली की कविता से मेरा परिचय पत्रिकाओं द्वारा हुआ तब उसमें, बोलने की भाषा में ही, लिखने की सुविधा देखकर मेरा अबोध मन उसी ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होने लगा। गुरु उसे कविता ही न मानते थे, अतः छिपा-छिपाकर मैंने रोला और हरिगीतिका में भी लिखने का प्रयत्न किया। माँ से सुनी एक करुण कथा का प्रायः सौ छन्दों में वर्णन कर मैंने मानो खण्ड-काव्य लिखने की इच्छा भी पूरी कर ली। बचपन की वह विचित्र कृति कदाचित् खो गई है। उसके उपरान्त बाह्य-जीवन के दुःखों की ओर मेरा विशेष ध्यान जाने लगा था। पड़ोस की एक विधवा वधू के जीवन से प्रभावित होकर

मैंने 'अबला', 'विधवा' आदि शीर्षकों से उस जीवन के जो शब्द-चित्र दिए थे वे उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में भी स्थान पा सके, पर जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आई तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणें फैलने लगी थीं, अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'शृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारतमाता', 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की वे विद्यालय के वातावरण में ही खो जाने के लिए लिखी गई थीं। उनकी समाप्ति के साथ ही मेरी कविता का शैशव भी समाप्त हो गया। इस समय से मेरी प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई, जिसमें व्यष्टिगत दुःख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आभास देने लगा।··· करुणा-बहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।"

अभिप्राय यह है कि महादेवी का जीवन विचित्र परिस्थितियों के प्रभावों से पूर्ण है। सम्पन्न और शिक्षित परिवार में जन्म, चित्रकला और संगीत की शिक्षा का प्रबंध, बुद्ध की करुणा की गहरी छाया, दार्शनिक चिन्तन, पति से पृथक् एकाकी जीवन, सेवा-भावना का अत्यधिक उज्ज्वल रूप आदि ने मिलकर उनके व्यक्तित्व को ऐसा रूप दे दिया है कि हिन्दी ही नहीं भारत और विश्व में कोई स्त्री-कलाकार उनकी कोटि में नहीं आ सकती। जीवन के पट में ऐसे बहुरंगी धागों का संयोग अन्यत्र नहीं मिल सकता। इसीलिए महादेवीजी अपने क्षेत्र में अकेली हैं।

महादेवीजी की कविता के अब तक निम्नलिखित संग्रह निकल चुके हैं— 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य-गीत' और 'दीप-शिखा'। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' तथा 'सान्ध्य-गीत' की 185 कविताएँ एक ही संग्रह 'यामा' में संकलित की गई हैं। इस प्रकार आज 'यामा' और 'दीप-शिखा' दो बृहत् संग्रह उनके काव्य के उपलब्ध हैं। इन काव्य-ग्रन्थों में संगृहीत गीतों से जहाँ महादेवीजी के आध्यात्मिक-चिंतन और रहस्यमयी भावना का पता चलता है, वहाँ उनके 'अतीत के चल-चित्र','स्मृति की रेखाएँ' आदि गद्य कृतियों से उनके यथार्थवादी स्वरूप के दर्शन होते हैं। इन रेखाचित्रों और संस्मरणों में महादेवी की आत्मा छायावाद की सुन्दर भूमि से यथार्थ की सुन्दर कठोर भूमि पर उतर आई है। लेकिन उनकी सम्वेदना इतनी सरल और पावन है कि जिन व्यक्तियों को लेकर ये रेखाचित्र लिखे गए हैं, उनसे महादेवीजी का रागात्मक सम्बन्ध हो गया है। उनकी दयनीय दशा का चित्र खींचते हुए महादेवीजी ने व्यंग का भी सहारा लिया है, जोकि आज के गद्य की एक प्रमुख आवश्यकता है। गद्य इन सबके अनुकूल पड़ता है, इसीलिए महादेवी जी ने गद्य को अपनाया है। परन्तु वहाँ भी उनकी गहन दृष्टि का प्रकाश है। हिन्दी के प्रसिद्ध समालोचक और निबंधकार बाबू गुलाबराय एम० ए० ने एक बार लिखा था कि वे गद्य में महादेवीजी का लोहा मानते हैं। महादेवीजी के गद्य की प्रौढ़ता का इससे बड़ा प्रमाण-पत्र और क्या हो सकता है। उनके विचारक रूप की झाँकी यदि पानी

हो, तो 'शृंखला की कड़ियाँ' और 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' देखिए। पहले में नारी को लेकर समाज के सम्बन्ध में वस्तुस्थिति के चित्रण के साथ वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। दूसरे में साहित्य की समस्याओं—छायावाद, रहस्यवाद, गीतिकाव्य आदि—पर कवयित्री ने अपने गंभीर विचार प्रकट किए हैं। आधुनिक साहित्यिक समस्याओं पर लिखे ये लेख महादेवीजी के अपने चिन्तन और विशिष्ट दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं।

आइये, अब हम तनिक उनके काव्य की मूल विशेषताओं का अनुशीलन करें। हम कह चुके हैं कि महादेवीजी का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में अपनी निजी विशेषता रखता है। भक्ति-काल में जो स्थान मीरा को प्राप्त था वही छायावाद में महादेवीजी को प्राप्त है और इसीको देखकर लोग उन्हें आधुनिक युग की मीरा कहते हैं। इस विषय में कुछ मतभेद भी है। कुछ आलोचकों की राय में उन्हें मीरा से उपमा देना चाहिए और कुछ की राय में नहीं। हम उस विवाद में नहीं पड़ना चाहते। तब भी इस विषय पर अपनी सम्मति देने का लोभ संवरण हम नहीं कर सकते। जहाँ तक दुःख-दर्द और पीड़ा-कसक का सम्बन्ध है वहाँ तक मीरा और महादेवी में कोई अन्तर नहीं है। मीरा भी राजकुमारी थीं और उन्होंने भी 'मेरो दर्द न जाने कोय' की पुकार लगाई थी। महादेवी यद्यपि राजघराने में पैदा नहीं हुई परन्तु ऐसे सम्पन्न घराने में अवश्य पैदा हुई हैं, जहाँ सब प्रकार के सुख और सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं। उन्होंने भी अपने लिए कहा है कि 'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी री!' यों व्यथा और पीड़ा का संसार दोनों के पास है। अन्तर है परिस्थितियों और शिक्षा-दीक्षा का। मीरा रहस्यवादी संतों की परम्परा के संस्कार लेकर आई थीं और रैदास की कृपा से उन्होंने सहज ज्ञान का प्रकाश प्राप्त किया था। महादेवीजी बीसवीं सदी के वैज्ञानिक युग में पैदा हुई हैं, जहाँ वे भिक्षुणी भी नहीं बन पाईं। उनकी शिक्षा भी बड़े-बड़े ऊँचे भवनों में हुई है। मीरा ने अपने को 'गिरधर गोपाल' के समर्पित कर दिया था और 'अँसुवन जल सींच-सींच प्रेम बेलि बोई' थी। उनका प्रियतम सगुण साकार था। महादेवी ने भी असीम के प्रति अपने को समर्पित किया है और आँसू उन्होंने भी कम नहीं बहाए हैं। उनका प्रियतम निर्गुण निराकार है। मीरा की कविता में त्रिकुटी, अनहदनाद, सुरत-निरत, ज्ञान-दीपक, सुषुम्ना की सेज, सुन्न महल, हंस और अगम देश की चर्चा होने पर भी रहस्य भावना गौण है, क्योंकि उनके भावों का प्रेरक ब्रज का छलिया गिरधर नागर था। महादेवी जी में ऐसे प्रतीक नहीं मिलते क्योंकि आज का युग इन प्रतीकों का नहीं है और न इनके लिए अवकाश ही है। इसलिए महादेवी में नवीनता भी है और उनकी वेदना कुछ अस्पष्टता से व्यक्त होने पर भी तीखेपन में मीरा से कम नहीं है। हाँ मीरा की सी सीधी अभिव्यक्ति महादेवीजी में नहीं है। उसका कारण यह भी है कि अपनी व्यथा का वैसा प्रदर्शन आज के युग में किसी स्त्री द्वारा नहीं हो सकता। लेकिन महादेवीजी के विचार और कल्पनाएँ भी मीरा में नहीं मिलेंगी। इस प्रकार भेद

के होते हुए भी दोनों में कुछ ऐसी समानताएँ हैं कि हम महादेवी को मीरा के साथ रख सकते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध ग्रालोचक श्री नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में महादेवी जी ग्रौर मीरा दार्शनिक दृष्टि से एक परम्परा की ग्रनुयायिनी प्रतीत होती हैं।

महादेवीजी मीरा हैं या नहीं—इसे छोड़ भी दें तब भी उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व इतना प्रखर है कि उनका महत्त्व किसी प्रकार उपेक्षणीय नहीं है। उनके प्रखर व्यक्तित्व की सबसे बड़ी भावना है—उनकी कविता में दुःखवाद का प्रभाव। यह दुःखवाद, यह पीड़ा का संसार, उनके जीवन में ग्रनजाने ही बस गया है। ग्रौर जब वह बस गया है तो महादेवीजी उसे सँजोए चली जा रही हैं क्योंकि वह उनके उस प्रियतम की देन है जो विश्व के प्रति साँस में ग्रपना स्वर मिलाये हुए है। उनका हृदय प्रतिक्षण किसी ग्रभाव का ग्रनुभव करता है, उसी की खोज में मस्त रहता है। वह सर्वदा शून्यता का ग्रनुभव करती रहती हैं। परन्तु उस सूनेपन की भी वह साम्राज्ञी हैं ग्रौर उसमें प्राणों का ही दीपक जलाकर दीवाली मनाती रहती हैं।[1] यह सूनेपन की दीवाली मनाने का ग्रायोजन उन्होंने इसीलिए किया है कि कभी उस प्रियतम से उनका मूक-मिलन हुग्रा था। परन्तु ग्राज वह सब सपना हो गया है। ग्राज तो उस मूक-मिलन द्वारा बने पीड़ा के साम्राज्य में ही उन्हें रहना है जो क्षितिज के पार है, जहाँ मिटना ही निर्वाण है तथा नीरव रोदन ही जहाँ पहरेदार है।[2] पीड़ा को ग्रहण करने के कारण उनके जीवन का लौकिक सुख-स्वप्न नष्ट हो गया है। लौकिक सुख-स्वप्न के नष्ट हो जाने से उल्लास ग्रौर उत्साह के केन्द्र हृदय में विषाद ग्रौर निराशा ने घर कर लिया है। उनकी यह पीड़ा, जिसने विषाद ग्रौर निराशा से हृदय को भर दिया है, स्वयं ग्राई है—उनके ग्रपने जीवन से, ग्रौर उसका माध्यम रहा है वह प्रियतम। जब उनकी प्यार से ललचाई पलकों पर व्रीड़ा का पहरा था तभी उस चितवन ने उन्हें पीड़ा का साम्राज्य दे डाला ग्रौर परिणाम यह हुग्रा कि उस सोने के सपने को देखे युग बीत गए तथा उनकी ग्राँखों के कोश रीते हो गए, परन्तु फिर उस सोने के सपने को देखने का सुयोग न मिला।[3]

---

1. ग्रपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
   प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली !

2. पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
   उस दिन दूर क्षितिज के पार,
   मिटना था निर्वाण जहाँ,
   नीरव रोदन था पहरेदार !

   कैसे कहती हो सपना है,
   ग्रलि ! उस मूक-मिलन की बात ?
   भरे हुए ग्रब तक फूलों में
   मेरे ग्राँसू उनके हास।

3. इन ललचाई पलकों पर
   पहरा था जब व्रीड़ा का,

लेकिन यह पीड़ा उन्हें अत्यन्त प्रिय है और वे इसे छोड़ना नहीं चाहतीं। बात यह है कि विरही के लिए पीड़ा का ही एकमात्र सहारा होता है। यदि वह भी न रहे तो फिर उसका जीना मुश्किल हो जाता है। शेखसादी से एक बार किसी ने पूछा था कि तुम इस पीड़ा को क्यों अपने साथ चिपकाए फिरते हो, छोड़ क्यों नहीं देते? शेखसादी ने उस प्रश्नकर्त्ता को उत्तर दिया था कि पीड़ा ही मेरा जीवन है, यदि इसे छोड़ दूँगा तो मैं मर जाऊँगा। महादेवीजी की कुछ ऐसी ही स्थिति है। वे भी पीड़ा को अत्यन्त प्यार से सँभालकर रखना चाहती हैं। दुःख की फिलासफी उनको बुद्ध के जीवन से मिली है और वहीं से करुणा का स्रोत भी उनके जीवन में फूटा है। परन्तु वह उनके काव्य में अपना निजीपन बनाये हुए दिखाई देता है। वे दुःख को सुख से अधिक महत्त्व देती हैं और उनका विश्वास है कि दुःख ही मानव मात्र को परस्पर निकट लाने का साधन है। उनका कथन है—"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सकें किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बाँटकर। विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।" निस्सन्देह उनका यह कथन यथार्थ है। दुःख से जीवन में जो बल आता है उससे आत्मा उज्ज्वल बनती है। उपास्यदेव की आराधना में जितना ही कष्ट अनुभव होगा उतनी ही आत्मा उसके निकट पहुंचेगी। 'नीहार' और 'रश्मि' में उनका यही दुःखवाद तीव्र रूप में प्रकट हुआ है।

सम्भवतः महादेवीजी को पीड़ा इसलिए प्रिय है, करुणा इसलिए अच्छी लगती है कि इससे जीवन की साधना पूरी होती है। यही आनन्द की चरमावस्था तक ले जाने का साधन है। तभी वे अमरों के लोकों को ठुकरा देती हैं; और अपने मिटने के अधिकार को बचाये रखना चाहती हैं। क्योंकि जिस लोक में अवसाद नहीं, वेदना नहीं, जलन नहीं, ऐसे लोक को लेकर क्या होगा? उनके लिए ऐसा लोक व्यर्थ है।[1]

साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का!
उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते!
आँखों के कोश हुए हैं
मोती बरसा कर रीते!

1. ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं—
जिसने जाना मिटने का स्वाद,

दूसरी बात यह है कि वे जलन को ही अपने लिए वर चुकी हैं। इससे प्रेमी की भी महत्ता है, क्योंकि वे जलती हैं तो उनके प्रेमी की पीड़ा का साम्राज्य तो बना है, यदि वे न जलेंगी तो उस पीड़ा के साम्राज्य में अन्धकार छा जाएगा। इसलिए वे नहीं चाहतीं कि अपने अस्तित्व को मिटा दें।[1] महादेवी के काव्य की यह एक बड़ी विशिष्टता है कि प्रत्येक साधक अन्त में मिलन चाहता है और मिलन में उस दु:ख का पर्यवसान चाहता है जिस दु:ख ने कि उसे मिलन की स्थिति तक पहुँचाया है, परन्तु वे दु:ख का पर्यवसान नहीं चाहतीं। वे उस मानिनी नायिका की तरह हैं, जो प्रियतम की एक भूल पर रूठ जाती है और सौ-सौ बार मनाने पर भी नहीं मानती तथा जिसके जीवन में वह एक भूल सदा के लिए तीर बनकर समा जाती है। इसलिए आज महादेवीजी ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि उनके प्राणों की क्रीड़ा कभी शेष न होगी और वे पीड़ा में प्रियतम को और प्रियतम में पीड़ा को देखेंगी—

"पर शेष नहीं होगी यह,
मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुममें ढूँढ़ँगी पीड़ा।"

पीड़ा और प्रियतम परस्पर ऐसे घुल-मिल गए हैं कि दोनों में कोई अन्तर ही नहीं रह गया है। इसलिए वे पीड़ा को ही सर्वस्व मानकर अपना और प्रियतम का मिलन नहीं चाहतीं ; विरह में ही उन्हें आनन्द आता है—'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर रहूँ।' क्यों ऐसा चाहती हैं इसका उत्तर यह है कि विरह अतृप्त है और जब तक अतृप्ति है, अभाव है, तभी तक उन्हें उल्लास और आनन्द की प्रेरणा मिलती है। मिलन होने पर जीवन में कोई हलचल न रहेगी। तब जीवन बिलकुल मूक हो जाएगा, भावनाहीन-सा जड़, और यह महादेवीजी को स्वीकार नहीं है। उनका विश्वास है कि कामनाओं की चिरतृप्ति जीवन को निष्फल कर देती है और हमारी प्यास बुझते ही विरक्ति का स्वरूप ले लेती है। बादलों का सजल होना इसी में है कि सारा जल बरसाकर रीते हो जाएँ और सुख की पूर्णता इसी में है कि उससे मन फिर जाए।[2]

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव ! अरे यह
मेरा मिटने का अधिकार।

1. चिन्ता क्या है, हे निर्मम, बुझ जाए दीपक मेरा,
हो जाएगा तेरा ही, पीड़ा का राज्य अँधेरा।
2. चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन।

लेकिन इतना होने पर भी महादेवीजी का एक स्वप्न अवश्य है, जिसकी स्निग्धता से वे परिचित हैं और उनका विश्वास है कि उनका आज का विषाद कभी सुख में बदल जाएगा। उनका वह स्वप्न है—"जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों का उपहास-सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड़-उमड़ पड़ी है उसी प्रकार संध्या-काल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर कातर क्रन्दन कर उठेगा, तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा उठेगा।" 'नीरजा' में पहुँचकर महादेवीजी अपने उक्त कथन की सार्थकता सिद्ध करती प्रतीत होती हैं। यहाँ वे दुःख के साथ सुख का अनुभव कभी-कभी कर लेती हैं। अब उनका विषाद मिट-सा चला है। यही भावना 'सान्ध्य-गीत' में और परिष्कृत रूप में व्यक्त हुई है। अब उन्हें अपने हृदय में उस अज्ञात प्रियतम की झलक स्पष्ट प्रतीत होती है। उन्हें एक करुण अभाव में चिरतृप्ति का संसार संचित दिखाई देता है, एक लघु क्षण निर्वाण के सौ-सौ वरदान देने वाला जान पड़ता है और उन्हें जान पड़ता है कि वेदना के सौदे में उन्होंने किसी निधि को पा लिया है।[1] आज उनके प्राणों में दूर के संगीत की भाँति कोई गूँजता है और उन्हें अपने को खोकर कुछ खोई हुई वस्तु मिल गई है। विरह की निशा मिलन के मधु-दिन में स्नात होकर आई है। आज उनके हृदय में कोई आकर बस-सा गया है।[2] यही कारण है कि वे आज अपने हृदय को अथवा आत्मा को दीपक की भाँति मधुर-मधुर जलने का आदेश देती हैं। 'नीहार' में उनका कथन था कि हे नभ की दीपावलियो! तुम पल-भर के लिए बुझ जाना क्योंकि करुणामय को तम के परदे में आना भाता है।[3] लेकिन 'नीरजा' में प्रियतम के पथ के आलोक के लिए उनको

बुझते ही प्यास हमारी,
पल में विरक्ति जाती बन।
पूर्णता यही भरने की
ढुल कर, देना सूने घन।
सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जाते मन।

1. एक करुण अभाव में चिर-तृप्ति का संसार संचित
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में, कौन तुम मेरे हृदय में ?

2. गूँजता उर में न जाने दूर के संगीत-सा क्या,
आज खो निज को मुझे खोया मिला विपरीत-सा क्या,
क्या नहा आई विरह-निशि मिलन मधु-दिन के उदय में,
कौन तुम मेरे हृदय में ?

3. हे नभ की दीपावलियो
तुम पल भर को बुझ जाना,
करुणामय को भाता है,
तम के परदे में आना।

अपनी आत्मा को दीप की भाँति प्रज्वलित रखना है।[1] 'सान्ध्य-गीत' में भी उन्हें यही भावना आगे ले जाती है और विरह की घड़ियाँ उन्हें मधुर मधु की यामिनी-सी जान पड़ती हैं—'विरह की घड़ियाँ हुई अलि, मधुर मधु की यामिनी-सी।' 'दीप शिखा' में तो साधना के प्रारम्भ से लेकर सिद्धि प्राप्त करने तक की सभी स्थितियों के दर्शन हो जाते हैं। उन्होंने अपनी साधना का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है कि मैं दीप के समान अविराम मिटती हुई स्वजन के समीप-सी आ रही हूँ।[2] सम्भवतः इसीलिए उनका चितेरा दीपक तूलिका रखकर सो गया है। ठीक भी है, मिलन का प्रभात आए और कल्पना साकार हो आए तथा चित्र में प्राणों का संचार हो जाए तब साधना की पूर्ति के अन्तिम क्षण का आगमन समझ लेना चाहिए।[3] इस प्रकार पीड़ा उनके काव्य में साधना का माध्यम रही है, जिसके द्वारा वे मिलन की स्थिति तक पहुँचती हैं।

अब तक हमने यह देखा है कि किस प्रकार महादेवीजी के काव्य में पीड़ा और करुणा तथा वेदना का साम्राज्य है और कैसे उस वेदना को वे अपना बनाकर रखना चाहती हैं। उनके काव्य की इस मूल विशेषता के पश्चात् हमारा ध्यान सहसा उनके माधुर्य-भाव की ओर चला जाता है। मीरा की भाँति वे भी माधुर्य-भाव की उपासिका हैं। माधुर्य-भाव में प्रिया और प्रियतम का सम्बन्ध माना जाता है। भगवान् को साधकों ने कभी माता, कभी पिता, कभी स्वामी, कभी सखा, कभी प्रियतमा और कभी प्रियतम के रूप में देखा है। इन सभी रूपों में प्रियतम-प्रियतमा का रूप सबसे अधिक आनन्दप्रद है, क्योंकि इसमें परस्पर के भाव-प्रकाशन में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं रहता। गोपियों की कृष्णोपासना भी इसी रूप की थी इसीलिए वे कृष्ण के अधिक निकट थीं। महादेवीजी भी माधुर्य-भाव से ही अपने प्रियतम को भजती हैं। वे नारी हैं, और नारी के लिए इससे अधिक स्वाभाविक मार्ग दूसरा नहीं हो सकता। यह भी एक कारण है कि उन्होंने अपने ब्रह्म को प्रियतम का रूप दिया है। वे अपने प्रियतम को बहुधा 'प्रिय' कहकर पुकारती हैं। वैसे उसके सौन्दर्य का वर्णन करते समय 'सुन्दर', 'चिर-सुन्दर' और उसकी उपेक्षा को बताते हुए 'निठुर', 'निर्मोही', 'निर्मम' आदि कहकर भी सम्बोधित करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वे समयानुकूल सम्बोधन करती

---

1. मधुर-मधुर मेरे दीपक जल
   युग-युग, प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल
   प्रियतम का पथ आलोकित कर।
2. दीप सी मैं
   आ रही अविराम मिट-मिट स्वजन ओर समीप सी मैं।
3. सजल है कितना सवेरा!
   कल्पना निज देखकर साकार होते
   और उसमें प्राण का संचार होते
   सो गया रख तूलिका दीपक चितेरा!

हैं। परन्तु महादेवी की विशेषता यह है कि वे सर्वत्र गम्भीर रहती हैं। कभी उनको गोपियों की भाँति प्रियतम से छेड़छाड़ या हास-परिहास करने का ध्यान नहीं आता। बात यह है कि वे सूक्ष्म ब्रह्म की उपासिका हैं, जहाँ कि उनकी कोई प्रतिद्वंद्विनी नहीं हैं और जहाँ असीम-पथ पर उन्हें स्वयं आगे बढ़ना है। इसीलिए उनकी पूजा भी स्वयं मन के भीतर होती है। किसी मन्दिर में उनका प्रियतम नहीं है, जहाँ वे मीरा की भाँति नाच सकें। वे तो बाह्य पूजा के विधान को भी स्वीकार नहीं करतीं। उनकी दृष्टि में पूजा या अर्चन व्यर्थ है। जब उनका लघुतम जीवन ही उस असीम का सुन्दर मन्दिर है, जब उनकी श्वासें नित्य प्रिय का अभिनन्दन करती रहती हैं, जब पद-रज धोने के लिए लोचनों के जल-कण उनके पास हैं, जब पुलकित रोम भी अक्षत हैं और पीड़ा ही चन्दन है, जब स्नेह भरा मन झिलमिलाते दीप की भाँति जलता रहता है, जब दृग-तारक ही कमल पुष्प का काम देते हैं, जब हृदय की धड़कन ही धूप बनकर उड़ती रहती है, जब अधर 'प्रिय प्रिय' जपते हैं और पलकों का नर्तन ताल देता है, तब बाह्याडम्बर की क्या आवश्यकता है ?[1] इसीलिए वे शून्य मन्दिर में स्वयं प्रियतम की प्रतिमा बन जाना चाहती हैं और उनके गीले नयन आरती करना चाहते हैं।[2] यह सब देखकर लगता है कि महादेवीजी पर भक्तों और निर्गुणिये संतों का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। जहाँ इस प्रकार के निवेदन हैं, वहाँ उनकी भक्तों और संतों से प्रभावित भक्ति-भावना का ही प्रकाशन अधिक है, रहस्य-भावना का कम। उन्होंने मधुरतम व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करके उसके प्रति आत्म-निवेदन किया है। उस आत्म-निवेदन में उनकी आत्मा स्वकीया की भाँति अपने प्रियतम के पथ में आँखें बिछाए रहती है और निरन्तर उसकी पूजा-अर्चन का विधान किया करती है।

महादेवीजी की कविता में तीसरा विशेष तत्त्व है उनके द्वारा गृहीत प्रकृति का स्वरूप। छायावाद में प्रकृति का कई रूपों में उपयोग हुआ है। कहीं वह सचेतन मानवी बनकर सम्मुख आई, कहीं स्वतन्त्र चित्रण के केन्द्र के रूप में और कहीं मानव-मन में उठती सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों के व्यक्तीकरण में सहायता देने के

---

1. क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
   उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
   मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
   पद-रज को धोने उमड़े आते लोचन में जल-कण रे !
   अक्षत पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
   स्नेह-भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
   मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !
   धूप बने उड़ते रहते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
   प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे !
2. शून्य मन्दिर में बनूँगी आप मैं प्रतिमा तुम्हारी।
   मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।

लिए। यह अंतिम रूप ही प्रमुख है, जिसमें मानव ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्रकृति मानो एक अंग है, जिसके द्वारा भावनाएँ सरलता से व्यक्त हो जाती हैं। आज ही नहीं, रीतिकाल में भी, जबकि प्रकृति जड़ बनकर रह गई थी—उसका यह रूप किसी-न-किसी प्रकार सम्मुख आता ही रहा। छायावाद तो प्रकृति को सचेतन करने के लिए आया ही था। छायावाद में कहीं तो यह हुआ है कि भावनाएँ ही प्रकृति का माध्यम हुई हैं और कहीं प्रकृति-वर्णन से ही भावनाएँ व्यक्त हुई हैं और कहीं दोनों का समानुपात हुआ है। स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण इस काल में कम ही हुए हैं। जो हुए हैं, वे भी कला-विन्यास के लिए। महादेवीजी ने प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण बहुत कम किए हैं। प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण के लिए 'यामा' में उनकी एक ही कविता है—हिमालय के ऊपर। उसमें भी उनकी अंतर्मुखी वृत्ति उभर आई है। प्रकृति के रूपों, दृश्यों और भावों को महादेवीजी ने एक चेतन व्यक्तित्व दे दिया है। इसे यों कहें कि प्रकृति उनके साथ ही उनके प्रियतम के प्रति आत्म-निवेदन में सहायक होकर समर्पित हो गई है, तो अधिक संगत होगा। यही रूप उनके काव्य में अधिक प्रमुखता रखता है। वैसे वे भी अन्य कवियों की भाँति ब्रह्म की ओर जाती हुई प्रकृति के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसमें कुछ देर को खो जाती हैं। लेकिन ऐसी कविताओं में भी, अंतिम पंक्ति से वे अपने जी की जलन भी व्यक्त कर ही देती हैं। बात यह है कि मन की व्यथा का व्यक्तीकरण उन्हें इतना प्रिय है कि उसे वे बचा नहीं सकतीं, सर्वत्र उसकी छाया आ ही जाती है। 'रश्मि' की 'रश्मि' नाम की कविता को ही लें तो उसमें प्रभात के स्वतन्त्र और सुन्दर चित्र मिलेंगे। लेकिन उसके अन्त में कवयित्री ने लिखा है कि नींद अपने स्वप्न-पंख फैलाकर क्षितिज के पार उड़ गई है और अधखुले दृगों के कंज-कोश पर विस्मृति का खुमार छाया हुआ है। यही नहीं, प्रभातकाल की स्वर्ण-वेला में यह हृदय-चितेरा अश्रु-हास लेकर सुधि-विहान रँग रहा है। महादेवीजी की कविता में प्रकृति के रूपक बहुत मिलते हैं। 'रूपसि तेरा घन केश-पाश' में पावस का, 'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी' में वसंत की रात्रि का, 'लय गीत अमर, पद ताल अमर' में प्रकृति का अप्सरा के रूप में चित्रण आदि प्रकृति के ऐसे सांगरूपक हैं, जिनमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया है और प्रकृति का स्वरूप नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष हो गया है। इनसे भी अधिक प्रकृति का स्वरूप वहाँ खुला है, जहाँ प्रकृति के साथ कवयित्री ने अपने जीवन को एकाकार कर दिया है। इस दृष्टि से 'प्रिय ! सांध्य गगन मेरा जीवन' वाला गीत अत्यन्त उत्कृष्ट है। सांध्य-गगन के सौन्दर्य के साथ अपने जीवन का ऐसा उत्कृष्ट सामंजस्य स्थापित किया गया है कि कलाकार की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। कवयित्री कहती हैं कि मेरा जीवन सांध्य-गगन की भाँति है। यह गोधूलि वेला के कारण धुँधला क्षितिज मेरे हृदय का विराग है। सांध्य-नभ की लालिमा सा ही मेरा सुहाग है, सन्ध्या की शून्य छाया के समान ही राग-हीन मेरी काया है, और रँगीले घन ही

मेरे सुधि भरे स्वप्न हैं। इस प्रकार सन्ध्या और मेरे जीवन में कोई अन्तर नहीं है।[1] इन पूर्ण रूपकों के अतिरिक्त ऐसे खण्ड-रूपकों की भरमार है जहाँ प्रकृति के कुछ चित्र लेकर अपनी भावनाओं को व्यक्त किया गया है। 'विरह का जलजात जीवन! विरह का जलजात!' और 'मैं नीर भरी दुख की बदली' आदि गीतों में ऐसे ही रूपक व्यक्त हुए हैं।[2] इस प्रकार महादेवीजी में प्रकृति के रंगीन चित्र असंख्य हैं पर वे सब या तो उनकी भावना से रँगे हैं या उनमें उनकी भावना व्याप्त है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति महादेवीजी के जीवन में एकाकार होकर उनमें विरह-मिलन की अनुभूतियों के चित्रण में सहायक हो गई है।

इस सबके साथ वर्तमान हिंदी कविता में रहस्यवाद की वे एकमात्र कवयित्री हैं। जहाँ रहस्यवाद की चर्चा होती है, वहाँ हमारा ध्यान सहसा दार्शनिक और साधक ज्ञानियों की ओर चला जाता है। परन्तु महादेवीजी साधक नहीं हैं, आराधक हैं, जैसाकि हम उनके माधुर्य-भाव की विवेचना करते समय देख चुके हैं। इस आराधना के कारण उनका कवि सदैव शिशु की भावुकता से अभिभूत रहा है। इसलिए उनकी अनुभूति कभी फीकी नहीं पड़ी। 'दीप-शिखा' के गीतों में भी, जहाँ चिंतन अधिक गहरा हो गया है, वे अपने उसी सहज आकर्षक रूप में विद्यमान हैं। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर लिखा है—"मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसीसे इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का (रहस्यवादी काव्य का) दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।" जबकि उसके प्रथम रूप के बारे में वे कहती हैं कि "छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान

---

1. प्रिय! सांध्य गगन, मेरा जीवन!
   यह क्षितिज बना धुँधला विराग
   नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
   छाया - सी काया वीतराग,
   सुधि - भीने स्वप्न रँगीले घन!
2. (क) विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात!
   वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास,
   अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात!
   (ख) मैं नीर भरी दुख की बदली!
   विस्तृत नभ का कोई कोना,
   मेरा कभी न अपना होना,
   परिचय इतना इतिहास यही
   उमड़ी कल थी मिट आज चली?

अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।" स्पष्ट है प्रकृति में मानवी भावों की छाया या उसके साथ मानव-भावना का तादात्म्य महादेवीजी की सम्मति में छायावाद है और जब प्रकृति में एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप कर उसके प्रति आत्मनिवेदन किया जाता है, तब रहस्यवाद हो जाता है। अर्थात् रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है। यहाँ इस विवाद में न पड़ कर हम केवल महादेवीजी के काव्य में उनके कथनानुसार रहस्यवाद की छान-बीन करेंगे।

जैसाकि हम कह चुके हैं—उनके काव्य में चिन्तन का प्राधान्य है और चिन्तन दार्शनिकता की ओर ले जाता है जिसके भावात्मक प्रकाशन को रहस्यवाद कहते हैं। आत्मा और परमात्मा दोनों एक हैं। आत्मा परमात्मा से बिछुड़ गई है और माया के आवरण में अपने शुद्ध स्वरूप को न देख सकने के कारण परमात्मा का अनुभव नहीं कर सकती, यदि साधना द्वारा माया का आवरण हटा दिया जाए तो परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है, आदि क्रमशः आत्मा के परमात्मा तक पहुँचने के साधन हैं। रहस्यवादी कवि भी इस प्रक्रिया का सहारा लेते हैं। वह सृष्टि में सर्वत्र उसी की छाया देखकर पूछ उठता है कि न जाने वह कौन है, जो तारों में हँसता, विद्युत् में चमकता, ओस-बिन्दुओं में रोता है। उस कौन के लिए उसकी आत्मा जिज्ञासा-भाव से पीड़ित हो उठती है। प्रकृति के परिवर्तन में उसे उसी का भाव जान पड़ता है।[1] इसके साथ-साथ वह अपने प्रियतम के पथ की ओर निरन्तर बढ़ता जाता है और उस पथ पर चलते हुए उसे विरह की तीव्र वेदना सहनी पड़ती है। यह विरह की तीव्र वेदना ही रहस्यवादी कवि के काव्य का प्राण होती है। ऐसे स्थलों पर वह लौकिकता के रूपकों को अपनाने के लिए बाध्य होता है। महादेवीजी ने स्वयं इस सम्बन्ध में कहा है कि रहस्यवाद में मर्मस्पर्शी व्यंजना के लिए लौकिकता का इतना आधार अत्यन्त आवश्यक होता है। उनके शब्दों में—"जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी ऐकान्तिक रही हो परन्तु उनकी मिलन-विरह की मधुरस्पर्शी अभिव्यंजना क्या किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी ? हम चाहे आध्यात्मिक संकेतों से अपरिचित हों परन्तु उनकी लौकिक कला-रूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है। कबीर की ऐकान्तिक रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है।" सारांश यह कि कबीर और जायसी की भाँति ही

---

1. जब कपोल-गुलाब पर शिशु प्रात के
सूखते नक्षत्र-जल के बिन्दु से
रश्मियों की कनक धारा में नहा
मुकुल हँसते मोतियों का अर्घ्य दे,
स्वप्नशाला में यवनिका डाल जो
तब दृगों को खोलता वह कौन है ?

महादेवीजी की रहस्यानुभूति भी लौकिक रूपकों द्वारा व्यक्त हुई है। वे भी अपने को उसी एकमात्र सत्ता की चिर-विरहिणी समझती हैं और उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती हैं। वे उससे भिन्न नहीं हैं क्योंकि जैसे सिन्धु को वीचि-विलास अपना कुछ परिचय नहीं दे सकते उसी प्रकार कवयित्री के बुद्बुद् प्राण भी उसी महासमुद्र में लीन होते और उसी से प्रकट होते हैं।[1] उनकी आत्मा का परमात्मा से वही सम्बन्ध है जो विधुविम्ब से चन्द्रमा का सम्बन्ध होता है। इसीलिए उनका कथन है कि उस किरण को कौतूहल के बाण खींचकर विश्व में ले आते हैं और जब ओस से धुले पथ में तेरा छिपा आह्वान आता है तो वही किरण अपना अधूरा खेल भूलकर तुम्हींमें अन्तर्धान हो जाती है।[2] यह अनुभव करके ही कवयित्री अपना परिचय नहीं देना चाहती। जब वह और प्रियतम एक ही हैं तब फिर परिचय कैसा? चित्र का रेखाओं से, राग का स्वर से, असीम का सीमा से और काया का छाया से जो सम्बन्ध है वही आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है; फिर परिचय देना व्यर्थ है।[3] जब इस स्थिति का अनुभव हो जाता है तब व्यथा न जाने कहाँ चली जाती है। नयन श्रवण-मय और श्रवण नयन-मय हो जाते हैं, रोम-रोम में एक नया ही स्पन्दन होने लगता है और छाले प्रसन्नता से फूल बन जाते हैं।[4] सीमा असीम में मिट जाती है और असीम सीमा में बँट जाता है। विरह की रात तब मिलन का प्रात बन जाती है।[5] तब साधिका बन्दिनी होकर भी बन्धनों की स्वामिनी हो जाती है—'बन्दिनी बनकर हुई मैं बन्धनों की स्वामिनी सी।' यही वह स्थिति होती है जब वह गा उठती है कि 'वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।' तब समस्त विश्व का सुख-

---

1. सिन्धु को क्या परिचय दें देव, बिगड़ते बनते वीचि विलास?
   क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद प्राण तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश!
2. तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
   मुग्धा रश्मि अजान
   जिसे खींच लाते स्थिर कर
   कौतूहल के बाण।
   ओस धुले पथ में छिप तेरा जब आता आह्वान।
   भूल अधूरा खेल तुम्हीं में होती अन्तर्धान।
3. चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
   मधुर राग तू मैं स्वर-संगम, तू असीम मैं छाया का भ्रम,
   क्या छाया में रहस्यमय! प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या?
   तुम-मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?
4. नयन श्रवण-मय श्रवण नयन-मय आज हो रहे कैसी उलझन,
   रोम-रोम में होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन,
   पुलकों से भर फूल बनाए जितने प्राणों के छाले हैं,
   मुस्काता संकेत भरा नभ अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं?
5. चिर मिलन की रात को अब
   विरह का प्रात रे कह!

दुःख प्रियतम के कारण मधुर बन जाता है[1] और साधिका का स्पर्श पाते ही काँटे कलियाँ और प्रस्तर रसमय हो जाते हैं—'मेरे पद छूते ही होते काँटे कलियाँ, प्रस्तर रसमय'। सारांश यह है कि महादेवीजी में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है और वे कबीर और जायसी के बाद हिन्दी में रहस्यवाद की परम्परा को आगे बढ़ानेवाली एकमात्र कवयित्री हैं। मीरा की-सी तीखी और सरल अनुभूति उनमें नहीं है, परन्तु कल्पना के मधुर संयोग से उन्होंने जिस भावना-लोक में अपने प्रियतम के साथ आँख-मिचौनी खेली है और प्रकृति के सौंदर्य के माध्यम से उससे साक्षात्कार किया है, वह मीरा से उन्हें ऊँचा उठा देता है। रहस्यवाद की ऐसी स्वाभाविक कविता हिन्दी में तो है ही नहीं, विश्व की अन्य भाषाओं में है। लोगों को उनकी अस्पष्टता के प्रति बड़ी शिकायत है, परन्तु यह महादेवी की नहीं, युग की विशेषता है। छायावाद की प्रतीकात्मक पद्धति के कारण अस्पष्टता सभी में है। महादेवीजी में अस्पष्टता का एक कारण यह भी है कि साधना की जिस ऊँची भूमिका से उनका आत्म-निवेदन हुआ है वह साधारण पाठक को एकदम बुद्धिगम्य नहीं होता। उनके नारी-हृदय ने संयम की रेखा को नहीं लाँघा है। यह भी एक कारण है जिससे वे कुछ अधिक स्पष्ट नहीं हैं। इतना होने पर भी यदि हम उनके जीवन और साधना-पथ को समझ लें तो हमें उनकी कविता समझने में कोई कठिनाई न होगी।

महादेवी जी का कलापक्ष भी उतना ही सुन्दर है जितना कि भावपक्ष। वह इसलिए नहीं कि उन्होंने प्रसाद, पंत, निराला आदि की भाँति कोई नई क्रान्ति की है। उसकी सुन्दरता उनकी स्वाभाविकता में है। उनकी दृष्टि में कविता हृदय की अनुभूति है। पालिश करने से उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसलिए वे जो रचनाएँ लिखती हैं, एक ही बार लिखती हैं, उसे 'संशोधन', 'खराद', या 'पालिश' की कसौटी पर नहीं कसतीं। यही कारण है कि उनमें कृत्रिमता का आभास नहीं मिलता और वे हृदय से उद्भूत भावों और अनुभूतियों की एकरूपता प्रदर्शित करती हैं। इस अकृत्रिमता के कारण ही उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त कोमल है। स्वाभाविकता का उन्होंने इतना ध्यान रखा है कि मात्राओं की पूर्ति और तुक के आग्रह के लिए कुछ शब्दों का अङ्ग-भङ्ग भी हो गया है। 'बातास' का 'बतास', 'आधार' का 'अधार', 'ज्योति' का 'ज्योती', 'कर्णधार' का 'कर्णाधार' लिखने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। उनकी कविता में कहीं-कहीं अंत्यानुप्रास भी नहीं मिलते हैं; परन्तु तुक और शब्दों के ऐसे प्रयोग उनके काव्य की गति को मन्द नहीं करते वरन् उसमें स्वाभाविकता ला देते हैं।

दूसरी बात उनकी अभिव्यक्ति में यह है कि वह सूक्ष्मतम भावनाओं को वाणी

---

1. मधुर मुझको हो गये सब
   मधुर प्रिय की भावना ले।

देने के कारण संकेतात्मक है। उसमें शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग, अमूर्त वस्तुओं के लिए मूर्त योजनाएँ, भावों और प्राकृतिक रूपों के मानवीकरण आदि छायावादी शैली की सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनके काव्य में शब्द-चित्र भी अधिक मिलते हैं। इसका कारण यह है कि वे चित्रकार भी हैं। उनकी अन्तिम कृति 'दीप-शिखा' में प्रत्येक कविता की पृष्ठभूमि के लिए एक-एक चित्र दिया गया है। 'यामा' में भी ऐसे ही चित्र हैं। इन चित्रों की विशेषता ऐसे रंगों का विधान है, जो दृश्य या रूप को ज्यों-का-त्यों उतार दें। चित्रकार की तूलिका और कवि की वाणी दोनों के संयोग से उनकी कविता खिल उठती है। एक आलोचक ने यह ठीक ही लिखा है कि महादेवीजी के यहाँ एक ओर चित्रकला की गोद में काव्य-कला खेलती है और दूसरी ओर काव्य-कला की अमूर्तता रेखा और रंग के सहारे चित्रित (मूर्त) हो गई है। उनके चित्रों में दीपक, शतदल और काँटे तथा बादल आदि का प्रयोग वैसे ही है जैसे उनके गीतों में।

महादेवी जी ने गीतिकाव्य ही अधिक लिखा है और अंतर्मुखी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए गीतिकाव्य ही उपयुक्त होता है। इन गीतों में उनके हृदय का हर्ष-विषाद सहज रूप में व्यक्त हो उठा है। महादेवीजी ने लिखा है, "गीत का चिरन्तन विषय रागात्मिका वृत्ति से सम्बन्ध रखनेवाली सुख-दुःखात्मक अनुभूति से ही रहेगा। साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।" अपने गीतों के सम्बन्ध में उन्होंने यह उचित ही लिखा है। वास्तव में उनके गीत निरालाजी की भाँति तालस्वर के सीमित बंधन में बन्द नहीं हैं, वे अपनी ध्वन्यात्मकता में ही गेय हैं, जिनमें संगीत काव्य का अनुयायी है और मानव-वृत्तियों के चित्रों को गति और सौन्दर्य दे देता है। गीतों की जो परम्परा वैदिक काल से लेकर उपनिषद्-काल और महाकाव्य-काल तक किसी-न-किसी रूप में चलती रही, उसका प्रथम स्वर हमारी भाषा में विद्यापति द्वारा गूँजा। उसके बाद कबीर की प्रेम-भक्ति की वाणी भी पदों द्वारा जनता तक पहुँची। सूर और तुलसी ने भी उस परम्परा को आगे बढ़ाया। लेकिन उसका चरम विकास मीरा में मिलता है। मीरा के गीत हृदय की कसक के सहारे स्वरों में ध्वनित हुए हैं। मीरा के बाद गीत का स्वाभाविक रूप महादेवी में ही मिलता है। यों छायावादी युग में प्रसाद, निराला, पंत तथा अन्य कवियों के सुन्दर गीत भी मिल सकते हैं, परन्तु गीतिकाव्य का ऐसा विकास उनमें नहीं है, जो महादेवीजी की कला को छू सके। उनके गीत निसर्ग सुन्दर हैं और उनमें अपनी निजी विशेषता है और वह है उनकी स्वाभाविक गति और भाव-भंगिमा। महादेवीजी इस क्षेत्र में अद्वितीय हैं। इसके कारण उनका कला-पक्ष अनूठा और अपूर्व हो उठा है, जिसने उनकी भावनाओं को सदा के लिए अमर बना दिया है।

महादेवीजी अभी तक साधना के पथ पर हैं। 'नीहार' के धुँधलेपन में 'रश्मि' के सुनहले प्रकाश पर जो 'नीरजा' खिली थी वह 'सान्ध्य-गीत' की ध्वनि से 'दीप-

शिखा' तक अपनी सजल-सरस अनुभूति और कल्पना की पंखड़ियों से सौंदर्य विकीर्ण कर इस नारी की आत्मा की व्यथा को विश्व के कण-कण के माध्यम में से उस अनन्त, असीम के चरणों तक पहुँचाती रही। भविष्य में वे प्रभात के अनुकूल मिलन की भूमिका बाँधकर हमें अपने आनन्द का भी उसी प्रकार संदेश देंगी, जैसे विषाद का संदेश दिया है, यह आशा है। तब उन्हें न जलन रहेगी, न पीड़ा और न दीपक की भाँति तिल-तिल कर प्रिय के लिए मिटना ही पड़ेगा। तब उनके काव्य से आशा और उत्साह का स्वर्गीय गान फूटेगा और तब वे 'शलभ में शापमय वर हूँ, किसी का दीप निष्ठुर हूँ' की पुकार न लगाकर केवल यही गीत गाएँगी :

"सजल सीमित पुतलियाँ पर चित्र अमिट असीम का वह,
चाह एक अनन्त बसती प्राण किन्तु असीम-सा यह,
रज कणों से खेलती किस विरज विधु की चाँदनी मैं ?
प्रिय चिरन्तन है सजनि, क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं !"

12

महादेवी की आलोचक दृष्टि

डाक्टर नगेन्द्र

['महादेवी साहित्य को एक शाश्वत सत्य मानती हैं। अनेकता में एकता ढूँढ़नेवाली उनकी दृष्टि जीवन और साहित्य के सनातन सिद्धान्तों और मूल्यों को लेकर चलती है, जो परिवर्तनों के बीच भी अक्षुण्ण रहते हैं।

उनकी आलोचना-शैली चिन्तन की शैली है, जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। वे जैसे बौद्धिक तथ्यों को पचा-पचाकर हमारे समक्ष रखती हैं। निदान बौद्धिक तीक्ष्णता तो उनके विवेचन में इतनी नहीं मिलती, परन्तु संश्लेषण सर्वत्र मिलता है।']

जैसा मैंने एक और स्थान पर भी कहा है, महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य-तृप्ति न पाकर अमांसल सौन्दर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिंतन (अनुभूति नहीं), तितली के पंखों और फूलों की पंखड़ियों से चुराई हुई कला, और इन सबके ऊपर स्वप्न-सा पुरा हुआ एक वायवी वातावरण—ये सभी तत्त्व जिसमें घुले मिलते हैं, वह है महादेवी की कविता। महादेवी ने छायावाद को पढ़ा नहीं है, अनुभव किया है। अतएव साहित्य का विद्यार्थी उनकी विवेचना का आप्तवचन के समान ही आदर करेगा।

आज एक साथ ही महादेवीजी की लेखनी से उद्भूत विवेचनात्मक गद्य यथेष्ट रूप में हमारे सामने उपस्थित है। यामा, दीपशिखा और आधुनिक कवि की विस्तृत भूमिकाएँ, पत्रिकाओं में प्रकाशित 'चिन्तन के क्षणों में' और अब पुस्तकाकार प्राप्त उनके कतिपय लेख काव्य के सनातन सत्यों का जितना स्वच्छ उद्घाटन करते हैं, उतना ही आधुनिक साहित्य की गतिविधि का निरूपण भी।

साहित्य-दर्शन

महादेवी के साहित्य-दर्शन का आधार है भारतीय आदर्शवाद, जो जीवन और जगत् में एक सत्य की अखण्ड सत्ता मानता है। जगत् के खण्ड-खण्ड में अखण्डता प्राप्त कर लेना ही सत्य है और उसकी विषमताओं में सामंजस्य देखना

ही सौन्दर्य है। महादेवी इन्हीं दो तथ्यों को साहित्य के साध्य और साधन मानती हैं।

'···सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनंत, इसीसे साधन के परिचय स्निग्ध खण्ड रूप से साध्य को विस्मयभरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।'

स्पष्ट शब्दों में, इसका अर्थ यह हुआ कि सौन्दर्य का सम्बन्ध रूप से होने के कारण यह हमारे निकट है, हमारा उससे स्नेह-परिचय है। रूपों की परिचित अनेकता की 'भावना' करता हुआ साहित्यकार जब क्रमशः उनकी मौलिक एकता की ओर बढ़ता है तो उसे एक विशिष्ट सामंजस्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है। यही सामंजस्य-दृष्टि साहित्य की मूल प्रेरणा है और स्वभावतः आनन्दरूपा है, क्योंकि आनन्द का अर्थ भी तो हमारी अन्तर्वृत्तियों का सामंजस्य ही है। 'रसों वै सः' को माननेवाला भारतीय-साहित्यशास्त्र मूलतः इसी आनन्दरूप सामंजस्य या अखण्डता पर आधृत है। इसीसे वह एक ओर साधारणीकरण से मौलिक तत्त्व तक पहुँच सका और दूसरी ओर क्रोध, शोक, जुगुप्सा और भय आदि में भी सात्विक आनन्द की उपलब्धि कर सका।

यहीं आकर साहित्य की उपयोगिता का भी प्रश्न हल हो जाता है। जिसका साध्य सत्य है, साधन सौन्दर्य है और प्रक्रिया आनन्दरूप, उस साहित्य की उपयोगिता जीवन की चरम उपयोगिता है। परन्तु उसका माध्यम स्थूल-विधि-निषेध न होकर आंतरिक सामंजस्य ही है। इस प्रकार साहित्य एक ओर सिद्धान्तों का व्यवसाय होने से बच जाता है, दूसरी ओर सस्ता मनोरंजन होने से। इस रूप में स्वभावतः ही महादेवी साहित्य को एक शाश्वत सत्य मानती हैं। अनेकता में एकता ढूंढ़नेवाली उनकी दृष्टि जीवन और साहित्य के सनातन सिद्धांतों और मूल्यों को लेकर चलती है, जो परिवर्तनों के बीच भी अक्षुण्ण रहते हैं।

"यह सत्य है कि संस्कृति की बाह्य रूप-रेखा बदलती रहती है, परन्तु मूल तत्त्वों का बदल जाना तब तक सम्भव नहीं होगा जब तक उस जाति के पैरों के नीचे से वह विशेष भूखण्ड और उसे चारों ओर से घेर लेनेवाला विशेष वायुमण्डल ही न हटा लिया जाए।"

अतएव यह स्पष्ट है कि महादेवी कविता को गणित के अंकों में घटित होने वाला एक तथ्यमात्र न मानकर, मूल रूप में रहस्यानुभूति ही मानती हैं। उपर्युक्त उद्धरण में एकता की स्थिति को विस्मय-भरी कहने का यही तात्पर्य है। एक स्थान पर उन्होंने अपना मन्तव्य असंदिग्ध शब्दों में व्यक्त ही किया है—

'व्यापक अर्थ में तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक सौन्दर्य या प्रत्येक सामंजस्य की अनुभूति भी रहस्यानुभूति है। यदि एक सौन्दर्य-अंश या सामंजस्य-खण्ड हमारे सामने किसी व्यापक सौन्दर्य का द्वार खोल देता तो हमारे अन्तर्गत का उल्लास से आलोकित हो उठना सम्भव नहीं।"

वास्तव में कविता के ही नहीं, जीवन के विषय में भी उनकी यही रहस्यात्मक भावना है। "मनुष्य चाहे प्रकृति के जड़ उपादानों का संघात-विशेष माना जाए और चाहे किसी व्यापक चेतना का अंशभूत, परन्तु किसी भी अवस्था में उसका जीवन इतना सरल नहीं है कि उसकी पूर्ण तृप्ति के लिए गणित के अंकों के समान एक निश्चित सिद्धान्त दे सकें।" इसलिए उनका दृष्टिकोण विदेश के भूतवादी दार्शनिकों के दृष्टिकोण से जो जीवन को काम या केवल अर्थ पर केन्द्रित मानकर चलते हैं, मूलतः भिन्न है। उनकी दृष्टि समन्वयवादी है जो काम और अर्थ के आंशिक महत्त्व को तो मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करती है परन्तु जीवन को समग्रतः इनकी ही इकाइयों में घटाना स्वीकार नहीं करती। भौतिक यथार्थवाद को वे पूर्णतः स्वीकार तो करती हैं, परन्तु निरपेक्ष रूप में नहीं, आध्यात्मिक आदर्श के साथ। जीवन की खण्ड-खण्ड विविधता ही भौतिक यथार्थ है, अखण्ड एकता ही आध्यात्मिक आदर्श। पहला पदार्थ या अर्थ-काम के घटकों में आँका जा सकता है, दूसरा अनुभूति का ही विषय होने के कारण निश्चय ही थोड़ा-बहुत रहस्यमय है।" इसीलिए एक ओर महादेवीजी साहित्य के व्याख्यान में भौतिक वातावरण को उचित महत्त्व देती हैं, दूसरी ओर वह सामंजस्य या एकता की आध्यात्मिक कसौटी का उपयोग करती हैं।

इसी प्रकार वे काव्यानन्द को भी ऐन्द्रिय सम्वेदनों में न ढूंढ़कर प्राण-चेतना के उस सूक्ष्म धरातल पर ढूँढ़ती हैं जहाँ बुद्धि और चित्त, ज्ञान और अनुभूति का पूर्ण सामंजस्य हो जाता है, जो चिंतन का धरातल है, जहाँ भट्टनायक या अभिनव के शब्दों सतोगुण, तमस् और रजस् पर विजयी होता है। यहाँ आकर उनकी स्थिति एक ओर अति-बुद्धिवादी और दूसरी ओर अति-रसवादी साहित्यकारों से भिन्न हो जाती है।

सामंजस्य की यह दृष्टि, दूसरे शब्दों में संतुलन और संयम की दृष्टि है जिसमें किसी भी प्रकार के अतिचार को, जीवन-प्रवाह के उन असाधारण क्षणों को जहाँ सन्तुलन और संयम तट के मृत्तिका खण्डों की तरह बह जाते हैं, स्थान नहीं। यह सृष्टि या तो जीवन के साधारण धरातल पर ही रुक जाती है और या फिर एकदम पूर्ण स्थिति—वाल्मीकि, व्यास, शेक्सपियर पर ही रुकती है। इसलिए यह अमृत-दृष्टि बायरन जैसे विषपायियों के प्रति, जो सामंजस्य और संतुलन की अवस्था तक नहीं पहुँच पाये हैं, सदैव कितनी क्रूर रही है। एक ओर सामंजस्य-द्रष्टा रवीन्द्र माईकेल को क्षमा नहीं कर पाये थे, और दूसरी ओर सामंजस्य-द्रष्टा महादेवी उग्र या अंचल को क्षमा नहीं कर सकतीं। इनकी शक्ति को ये लोग आत्म-घातिनी शक्ति कहकर छोड़ देंगे। परन्तु क्या यह उचित है? सत्य यह है कि यह सामंजस्य नैतिक बन्धनों से सदा मुक्त नहीं हो सका, इसलिए एक स्थान पर जाकर उसमें भेद-बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। महादेवी के साहित्यिक मान नैतिकता के बोझ से काफी दबे हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं। और इसमें उनका स्त्रीत्व

बाधक हुआ है, जो मर्यादा से बाहर जीवन की मुक्ति खोजने का अभ्यासी नहीं है। और, वास्तव में अभी महादेवीजी की दृष्टि पूर्ण सामंजस्य की अधिकारिणी भी नहीं हो पाई। क्योंकि उसमें पुरुषत्व से भिन्न नारीत्व की इतनी प्रखर चेतना वर्तमान है कि वह पुरुष को आततायी, प्रतिद्वंद्वी के अतिरिक्त और कुछ कठिनाई से ही समझ पाती हैं। महादेवी जैसे उन्नत व्यक्तित्व में यह भाव अवश्य किसी ग्रंथि की ही अभिव्यक्ति है जो अभी उलझी रह गई है।

सामयिक समस्या

इन सिद्धान्तों का उपयोग उन्होंने आधुनिक हिन्दी-साहित्य के विवेचन में किया है और यहाँ हमें महादेवीजी का सक्रिय आलोचक रूप मिलता है। छायावाद और प्रगतिवाद से सम्बद्ध लगभग सभी महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर उन्होंने सम्यक् प्रकाश डाला है जो संक्रांति की इस कुहरवेला में फैली हुई अनेक भ्रांतियों को दूर कर देता है। इन प्रसंगों में से मुख्यतम प्रसंग छायावाद को लेकर आइए बहस की जाए—

छायावाद

'मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोड़ने में सारी शक्तियाँ लगा देता है।'

'छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। उसके जन्म से प्रथम कविता के बंधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा।'

'स्वच्छन्द छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छायावाद उपयुक्त ही था, और मुझे तो आज भी उपयुक्त ही लगता है।'

'छायावाद का कवि धर्म के आध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त्त और अमूर्त्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है।'

'बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव्य-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी हुई सौंदर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की, और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दुःखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, छायावाद और अनेक नामों का भार सँभाल सकी।'

'छायावाद करुणा की छाया में सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त होनेवाला भावात्मक सर्ववाद ही है।'

इस प्रकार महादेवीजी के अनुसार—

1. छायावाद की मूल चेतना है सर्ववाद और इसकी भाव-भूमि है मुख्यतः प्रकृति, क्योंकि सर्ववाद की व्यंजना का मुख्य माध्यम वही है।

2. इस सामान्य चेतना पर कवि के व्यक्तिगत सुख-दुःख की चेतना का गहरा प्रभाव है। वास्तव में सिद्धान्त में समष्टिवादी होती हुई भी यह चेतना व्यवहार में व्यष्टिवादी ही है।

3. सर्ववाद निसर्गतः ही करुणा को जन्म देता है, अतएव जन्म से ही छायावाद पर करुणा की छाया है।

4. उसका उद्‌गम-स्थान हमारी प्राण-चेतना का वह सूक्ष्म धरातल है जहाँ बुद्धि और चित्त का संयोग होता है। अर्थात् छायावाद चिंतन के क्षणों की उद्‌भूति है। अतएव वह स्वभावतः ही अंतर्मुखी कविता है।

5. छायावाद में मूर्त्त और अमूर्त्त के सामंजस्य की पूर्णता है।

उपर्युक्त विवेचन मेरी अपनी धारणाओं के इतना निकट है कि इसमें विशेष आपत्ति के लिए स्थान नहीं है। फिर भी ऐसा अवश्य लगता है कि महादेवीजी ने छायावाद की तन्वी कविता पर दर्शन का बोझ कुछ अधिक लाद दिया है। अपने मूल रूप में छायावाद द्विवेदी-युग की स्थूल प्रवृत्तियों के विरोध में जगी हुई जीवन के प्रति एक रोमानी प्रतिक्रिया थी—स्थूल उपयोगिता के स्थान पर जिसमें एक रहस्योन्मुखी भावुकता थी। सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और मांस ग्रहण न कर सकने के कारण वह एक तो वाञ्छित शक्ति का सञ्चय नहीं कर पाई, दूसरे एकांत अंतर्मुखी हो गई। इस प्रकार उसके आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है, इसको कैसे भुलाया जा सकता है।

महादेवीजी ने कविता की तात्विक परिभाषा में छायावाद को कुछ ऐसा फिट कर दिया है कि वह कविता के परिपूर्ण क्षणों की वाणी ही लगता है—यह स्वभावतः असत्य है। छायावाद की अपनी सीमाएँ हैं। उसकी कविताओं में जितनी सूक्ष्मता है उतनी शक्ति नहीं, जितनी सुकुमारता है उतनी तीव्रता नहीं, जितना अरूप-चिंतन है उतना मांसल रस नहीं आ सका—इसका निषेध कैसे किया जा सकता है। हमारे दो प्रतिनिधि कवि पंत और महादेवी जीवन में पूरी तरह उतर ही नहीं पाए। जब जीवन की भूख तड़पती थी तब तो वे परिस्थिति-वश उसे झुठलाते रहे, जब भूख मंद पड़ गई तब ये जीवन में उतरे—पर इस समय उसका संस्कार करने के अतिरिक्त इनके पास दूसरा कोई उपाय नहीं रहा। संस्कार में रस तभी आता है जब उसके द्वारा खौलती हुई वासनाओं से संघर्ष कर उन पर विजय प्राप्त की जाती है। प्रसाद और निराला में स्थान-स्थान पर वह भूख हुंकार उठी है, और वहीं वे महान् काव्य की सृष्टि कर सके हैं।

आलोचना-शक्ति

महादेवीजी की आलोचना-शैली चिंतन की शैली है, जिसमें विचार और अनुभूति का संयोग है। वह जैसे बौद्धिक तथ्यों को पचा-पचाकर हमारे समक्ष रखती हैं। निदान बौद्धिक तीक्ष्णता तो उनके विवेचन में इतनी नहीं मिलती, परन्तु संश्लेषण सर्वत्र मिलता है। कहीं भी किसी प्रकार की उलझन नहीं है। यह दूसरी बात है कि पाठक को उसे तत्काल ग्रहण कर लेने में कठिनाई हो। क्योंकि उसका तो कारण है—यह कि विचार की अपेक्षा चिन्तन को ग्रहण करने में देर लगती है। शुक्लजी की शास्त्रीय गवेषणा से सर्वथा भिन्न यह शैली प्रसाद और पन्त की ठोस बौद्धिक विवेचना की अपेक्षा टैगोर की लचीली काव्य-चिन्तना के अधिक समीप है।

एक दूसरी विशेषता जो महादेवी की आलोचना में मिलती है वह है ऐतिहासिक एकसूत्रता जो सामंजस्य को जीवन का और साहित्य का मूलाधार मानकर चलनेवाले आलोचक के लिए स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए एक ओर उन्होंने छायावाद की प्रकृति-भावना का वेदों से आरम्भ होनेवाली प्रकृति-भावना की भारतीय परम्परा के साथ बड़ी सुंदरता के साथ सम्बन्ध-निरूपण किया है; दूसरी ओर आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों का समाज की आर्थिक परम्पराओं के साथ। इसलिए उनकी आलोचना प्रायः एकांगी नहीं हुई। उसमें अंतर्मुखी वृत्तियों का संतुलन है, और जीवन की विस्तृत भूमिका पर रखकर भी साहित्य को उसके अतिप्रत्यक्ष प्रश्नों से बचाए रखने का विवेक और सुरुचि है।

सारतः महादेवी के ये निबन्ध काव्य के शाश्वत सिद्धान्तों के अमर व्याख्यान हैं। आज साहित्यिक मूल्यों के बवण्डर में भटका हुआ जिज्ञासु इन्हें आलोक-स्तम्भ मानकर बहुत कुछ स्थिरता पा सकता है।

13

गद्यकार महादेवी और नारी-समस्या

अमृतराय

['महादेवीजी की कविता समाज की दुरावस्था, असहाय नारी की विपन्न स्थिति, व्यक्ति और समाज के परस्पर 'वैषम्य', रुद्ध भावनाओं, दमित इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारों के कारण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो पानेवाले अभिशप्त जीवन का भावात्मक, आत्मकेन्द्रित निरूपण है; उनकी निरव, पराजित प्रतिक्रियास्वरूप कवि का एकांत रुदन है।

इसके ठीक विपरीत महादेवी का गद्य-साहित्य मूलतः समाज-केन्द्रित है। उसने जनता के पीड़ित जीवन को स्वर दिया है। उसने समाज के दुःख, दैन्य, उसके स्वार्थों और अभिशापों का प्रतिकार किया है। उसमें एक विद्रोही की आत्मा रुदन कर रही है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ा में नहीं, समाज में दिन-रात चलनेवाले अन्यायों और अत्याचारों में है।']

कवि के रूप में ही महादेवी अधिक प्रख्यात हैं, लेकिन उनके गद्य-साहित्य से थोड़ा-सा भी परिचय प्राप्त करने पर इस बात का पता अच्छी तरह चल जाता है कि उनका गद्यकार का रूप उनके कवि-रूप से तनिक भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रतिपादित विचारों और शैली दोनों की दृष्टि से वह हमारे आधुनिक साहित्य का एक बहुत पुष्ट अंग है और आज की हमारी प्रगतिशील सामाजिक चेतना से भली भाँति अनुप्राणित होने ही के कारण हमारे नवीन साहित्य को स्फूर्ति भी देता है।

महादेवी का गद्य-साहित्य तीन प्रकार का होता है। पहला, उनका विवेचनात्मक गद्य जो उनकी कविता-पुस्तकों की भूमिका और कुछ स्फुट निबन्धों के रूप में है; दूसरा, उनके संस्मरण; तीसरा, 'चाँद' की उनकी नारी-समस्या विषयक सम्पादकीय टिप्पणियाँ जिन्हें पुस्तकाकार एकत्र करके 'शृंखला की कड़ियाँ' नाम दिया गया है। महादेवी का काव्य पढ़ चुकने पर जब पाठक उनके इस गद्य-साहित्य को पढ़ता है तब जो बात अपनी सम्पूर्ण तीव्रता में सबसे पहले उसकी चेतना को स्पर्श करती है, वह है दोनों की परस्पर-विरोधी प्रवृत्ति। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि वह विरोध केवल विरोधाभास नहीं, समग्र विरोध है। कवि महादेवी की दृष्टि,

उनका लक्ष्य, पाठक के मन पर उनका प्रभाव, उनके साहित्यिक उपादान—सब गद्यकार महादेवी से सर्वथा भिन्न हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसा जान पड़ने लगता है कि कवि महादेवी और गद्यकार महादेवी दो व्यक्ति हैं, एक नहीं। इस बात पर तनिक और गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। महादेवी का काव्य मूलतः आत्मकेन्द्रिक है। उसकी आत्मा को भिन्न-भिन्न आलोचकों ने भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं। किसी ने उसे रहस्यवाद कहा है, किसी ने दुःखवाद और किसी ने रुदनवाद। महादेवी ने स्वयं अपनी कविता का सबसे अच्छा परिचय दिया है:

'मैं नीर भरी दुख की बदली'

उनकी इसी पंक्ति को मन में रखे हुए आप उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य का अवलोकन कर डालिये और तब आप तुरन्त जान लेंगे कि यही भाव शिराओं में बहनेवाले रक्त के समान उसमें सर्वत्र प्रवाहित हो रहा है। अब इसे आप चाहे जिस नाम से पुकार लीजिये, उसकी मूल प्रेरणा में कोई अन्तर नहीं आएगा और उसको जानने-समझने के लिए आवश्यक है कि हम कवि की सृष्टि को कठोर धरती पर उतरकर उसका निरीक्षण करें। वैसा करने पर सहज ही यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी के रुदन, दुख अथवा 'रहस्यवाद' का उद्गम सामाजिक स्थिति में ही है। उनकी कविता समाज की दुरावस्था, असहाय नारी की विपन्न स्थिति, व्यक्ति और समाज के परस्पर 'वैषम्य', रुद्ध भावनाओं, दमित इच्छाओं और प्रचलित सामाजिक कुसंस्कारों के कारण पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो पानेवाले अभिशप्त जीवन का भावात्मक, आत्मकेन्द्रिक निरूपण है; उनकी निस्व, पराजित प्रतिक्रिया-स्वरूप कवि का एकांत रुदन है। रुदन में ही कवि को संतोष या आनन्द मिलने लग जाए, पीड़ा की ही वह पूजा करने लग जाए, तब भी कवि की इस असाधारण मनःस्थिति का साक्ष्य देकर यह नहीं कहा जा सकता कि सामाजिक स्थिति से असंतोष ही उसका कारण नहीं है यह बात तो एक कठोर सत्य के रूप में अपने स्थान पर अचल है, नामों अथवा वादों के हेर-फेर से उसका कुछ नहीं बनता-बिगड़ता इसलिए महादेवी के काव्य को मूलतः आत्मकेन्द्रिक, आत्मलीन कहना ठीक है, अपनी ही पीड़ा के वृत्त में उसकी परिसमाप्ति है। संसार की पीड़ा का स्वतः उसके लिए अधिक मूल्य नहीं है, मूल्य यदि है तो कवि की पीड़ा के रंग को गहराई देनेवाले उपादान के रूप में।

इसके ठीक विपरीत महादेवी का गद्य-साहित्य मूलतः समाज-केन्द्रिक है। उसने जनता के पीड़ित जीवन को स्वर दिया है। उसने समाज के दुःख, दैन्य, उसके स्वार्थों और अभिशापों का प्रतिकार किया है। उसमें एक विद्रोही की आत्मा रुदन कर रही है। उसका मूल उत्स अपनी पीड़ा में नहीं, समाज में दिन-रात चलने-वाले अन्यायों और अत्याचारों में है। अब इसका कोई उचित कारण समझ में नहीं आता कि महादेवी के इन दोनों रूपों में ऐसा अमाप पार्थक्य, ऐसा विचित्र वैषम्य क्यों है। उनके काव्य-साहित्य के अवगाहने से तो कोई भी पाठक इसी निष्कर्ष पर

पहुँचेगा कि भौतिक जगत् के कठोर संताप उनके समीप अस्तित्वहीन हैं और वे अपने पीड़ा-लोक में ही अपना विकास देखती हैं। ध्यान देने की बात है कि इस पीड़ा-लोक में मूल आध्यात्मिक पीड़ा को ही आँका जाता है, उसी पीड़ा को जिसका भली भाँति उदात्तीकरण (sublimation) या तनिक और आगे बढ़कर कहें तो अतीन्द्रियकरण हो चुका है; जरा-मृत्यु, शोक-संताप का कारण जो सम्पूर्ण रूप से कठोर भौतिक पीड़ा है, जिसके कारण विशाल जनसमुदाय का जीवन जीने योग्य नहीं है, वह तो जैसे खोटा सिक्का है। परन्तु यह विचित्र बात है कि इसी 'खोटे सिक्के' से उनके तपःपूत जीवन का व्यापार चलता है। जिन्होंने पास से उनके जीवन को देखा है वे इस बात का साक्ष्य देंगे। जिन्हें इस बात का सुअवसर नहीं मिला है, वे ही उनके गद्य-साहित्य के अध्ययन से इस बात का प्रमाण पा सकेंगे कि महादेवी का कर्मनिष्ठ, सहज संवेदनशील, अन्याय का तत्पर विरोधी, सामाजिक तथा अन्य सभी कुसंस्कारों का उच्छेदक, समग्र संघर्षशील यही जीवन उनके गद्य में प्राणों का ओज बनकर बोल रहा है। इसलिए यह कहना बड़ी भूल होगी कि महादेवी के समीप जीवन की कठोर मूल वास्तविकताएँ मूल्यहीन हैं, क्योंकि उनका सारा गद्य-साहित्य इसी बात के विरोध में साक्ष्य देता है। लेकिन जीवन का जो पारदर्शी सत्य उनके गद्य-साहित्य का प्राण बनने की सामर्थ्य रखता है, वही उनके काव्यलोक में पहुँचकर क्यों सहसा नितांत पंगु एवं अक्षम बन जाता है और उसी ओजःस्फूर्त रूप में उनकी भावचेतना को भी क्यों नहीं प्रभावित करता, यह एक ऐसी समस्या है जिसका उत्तर इस समय देना सम्भव नहीं है। प्रस्तुत निबन्ध का विषय भी यह नहीं है। इस समय तो हमें उनके नारी-जीवन विषयक विचारों की ही समीक्षा करनी है।

भारतीय नारी आज कैसी उपेक्षित, अपमानित, प्रताड़ित, अधिकारहीन, व्यक्तित्वहीन प्राणी है, इसका प्रमाण खोजने जाने की जरूरत नहीं। जिस किसी ने भी अपनी दोनों आँखें फोड़ नहीं डाली हैं, उसके लिए यह एक स्वयंसिद्ध बात है। हमें चारों ओर नारी की दासता के प्रमाण मिलते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि भारतीय नारी से अधिक दयनीय प्राणी संसार में कठिनाई से मिलेगा। उसे न पुत्री के रूप में अधिकार है, न माता के रूप में, न पत्नी के रूप में, न बहन के रूप में। विधवा की तो जो स्थिति हमारे समाज में है, वह बिलकुल अकथ्य है। अनेक समाज-सुधारकों ने हिन्दू विधवा को समाज की बलिवेदी पर चढ़नेवाले बलिपशु की संज्ञा दी है, लेकिन चिंतन और भावनायुक्त इस बलिपशु के लिए यह संज्ञा हल्की नहीं पड़ेगी, यह कहना कठिन है। आज हिन्दू-समाज नारी की अभिशप्त परवशता की भूमिका में दम तोड़ रहा है। जड़ रूढ़ियों और बद्धमूल संस्कारों की धुँआती हुई अग्नि में जलते हुए नारी जीवन की चिराँध से साँस लेना कठिन है। शायद हम सभी लोगों के घरों की दीवारों पर नारी के किसी-न-किसी रूप की निर्मम हत्या से उछले हुए खून के छींटे मिलेंगे। समाज के इस व्रण को न जानने

का नाट्य अब कोई नहीं कर सकता। आज हिन्दू-समाज में (विशेषकर मध्यवर्गीय समाज में) नारी की क्या दशा है, इसका विक्षुब्ध परिचय स्वयं महादेवी के शब्दों में सुनिए :

'इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे अपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय या घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार यह एक स्त्री को भी पालता है तथा अपने पालित पशु-पक्षियों के समान ही यह उसके शरीर और मन पर अपना अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो विवाह के समय, गुलाब-सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय, उस असमय प्रौढ़ हुई, दुर्बल संतानों की रोगिणी पीली माता में कौन-सी विवशता, कौन-सी रुला देनेवाली करुणा न मिले!'—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 102।

और भी तीखा परिचय लीजिए :

'कानून हमारे स्वत्वों की रक्षा का कारण न बनकर चीनियों के काठ के जूते की तरह हमारे ही जीवन के आवश्यक तथा जन्मसिद्ध अधिकारों को संकुचित बनाता जा रहा है। सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित असंख्य स्त्रियों के सुनहले भविष्यमय जीवन कीटाणुओं से भी तुच्छ माने जाते देख कौन सहृदय रो न देगा? चरम दुरवस्था के सजीव निदर्शन हमारे यहाँ के सम्पन्न पुरुषों की विधवाओं और पैतृक धन के रहते हुए भी दरिद्र पुत्रियों के जीवन हैं। स्त्री पुरुष के वैभव की प्रदर्शनी-मात्र समझी जाती है और बालक के न रहने पर जैसे उसके खिलौने निर्दिष्ट स्थानों से उठाकर फेंक दिए जाते हैं, उसी प्रकार एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है। जब जला सकते थे तब इच्छा या अनिच्छा से उसे जीवित ही भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज देते थे, परन्तु अब उसे मृत पति का ऐसा निर्जीव स्मारक बनकर जीना पड़ता है जिसके सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक होना तो दूर रहा, कोई उसे मलिन करने की इच्छा भी रोकना नहीं चाहता।'—पृष्ठ 16-17।

हिन्दू-नारी की घर और बाहर दोनों जगह एक ही सी स्थिति है :

'हिन्दू नारी का घर और समाज इन्हीं दो से विशेष सम्पर्क रहता है। परन्तु इन दोनों ही स्थानों में उसकी स्थिति कितनी करुण है, इसके विचार-मात्र से ही किसी भी सहृदय का हृदय काँपे बिना नहीं रहता। अपने पितृगृह में उसे वैसा ही स्थान मिलता है जैसा किसी दूकान में उस वस्तु को प्राप्त होता है जिसके रखने और बेचने दोनों ही में दूकानदार को हानि की सम्भावना रहती है। जिस घर में उसके जीवन को ढलकर बनना पड़ता है, उसके चरित्र को एक विशेष रूपरेखा धारण करनी पड़ती है, जिस पर वह अपने शैशव का सारा स्नेह ढुलकाकर भी तृप्त नहीं होती, उसी घर में वह भिक्षुक के अतिरिक्त कुछ नहीं है। दुःख के समय अपने

आहत हृदय और शिथिल शरीर को लेकर वह उसमें विश्राम नहीं पाती, भूल के समय वह अपना लज्जित मुख उसके स्नेहाञ्चल में नहीं छिपा सकती और आपत्ति के समय एक मुट्ठी अन्न की भी उस घर से आशा नहीं रख सकती। ऐसी है उसकी वह अभागी जन्मभूमि जो जीवित रहने के अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं देती ! पति-गृह जहाँ इस उपेक्षित प्राणी को जीवन का शेष भाग व्यतीत करना पड़ता है, अधिकार में उससे कुछ अधिक परन्तु सहानुभूति में उससे बहुत कम है, इसमें संदेह नहीं। यहाँ उसकी स्थिति पल-भर भी आशंका से रहित नहीं। यदि वह विद्वान पति की इच्छानुकूल विदुषी नहीं है, तो उसका स्थान दूसरी को दिया जा सकता है। यदि वह सौन्दर्योपासक पति की कल्पना के अनुरूप अप्सरी नहीं है, तो उसे अपना स्थान रिक्त कर देने का आदेश दिया जा सकता है। यदि वह पति की कामना का विचार करके सन्तान या पुत्रों की सेना नहीं दे सकती, यदि वह रुग्ण है या दोषों का नितान्त अभाव होने पर वह पति की अप्रसन्नता की दोषी है, तो भी उसे घर में दासत्व मात्र स्वीकार करना पड़ेगा।''—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 39-40।

पुरुष-शासित समाज में नारी की दासता का इससे अधिक प्रखर परिचय दूसरा नहीं हो सकता :

'साधारण रूप से वैभव के साधन ही नहीं, मुट्ठी-भर अन्न भी स्त्री के सम्पूर्ण जीवन से भारी ठहरता है।'—अतीत के चलचित्र, पृष्ठ 53।

महादेवी इन निष्कर्षों पर किताबी ज्ञान के सहारे नहीं, जीवन के निकट परिचय द्वारा पहुँची हैं। यही कारण है कि उनके संस्मरणों में से अधिकांश नारी की परवशता का चित्र उपस्थित करते हैं। विधवा-जीवन के जो चित्र उन्होंने दिए हैं, उनमें खास तल्खी है। इस प्रश्न पर उनका ध्यान बार-बार जाने का कारण भी शायद यही है कि यहीं पर नारी की परवशता का घोरतम रूप दिखाई पड़ता है।

वेश्याओं की समस्या पर भी उन्होंने सहज संवेदनशील ढंग से विचार किया है और उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँची हैं, जिन पर कोई समाजशास्त्री पहुँचता। वेश्याओं को हेय समझनेवालों का समुदाय विस्तृत है, लेकिन उनको उस हेय स्थिति तक पहुँचाने में और उन्हें वहीं रखने में स्वयं उनका हाथ भी है, इसे समझने वाले विरले ही मिलेंगे। उन पर विचार करते हुए अधिकांश लोग अपने कल्पित पावित्र्याभिमान की गरिमा से फूलकर नाक-भौं सिकोड़ते देखे जाएँगे, लेकिन उनकी पवित्रता, उनकी नैतिकता को वेश्याओं की नैतिकता से ऊँचा कहने के लिए ठिठक कर थोड़ा विचार अवश्य करना पड़ेगा।

महादेवी कितने सहानुभूतिपूर्ण ढंग से वेश्या-जीवन पर विचार करती हैं, इसे देखिए :

'यदि स्त्री की ओर देखा जाए तो निश्चय ही देखनेवाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृग-मरीचिका में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन-भर आदि से अन्त तक सौन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त

कोमल भावनाओं को कुचलकर, आत्मसर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंटकर रूप का क्रय-विक्रय करना पड़ा—और परिणाम में उसके हाथ आया निराशा-हताश एकाकी अन्त। × × × जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत्त करता रहता है, उसके सौन्दर्य-दीप पर शलभ-सा मँडराता रहता है, परन्तु, उस मादकता के अन्त में, उस बाढ़ के उतर जाने पर, उसकी ओर कोई सहानुभूति-भरे नेत्र भी नहीं उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व, लोलुपों के द्वारा प्रशंसित रूप-वैभव का भग्नावशेष, क्या उसके हृदय को किसी प्रकार की सांत्वना भी दे सकता है? जिन परिस्थितियों ने गृह-जीवन से उनका बहिष्कार किया, जिन व्यक्तियों ने उसके काले भविष्य को सुनहले स्वप्नों से ढाँका, जिन पुरुषों ने उसके नूपुरों की रुनझुन के साथ अपने हृदय के स्वर मिलाए और जिस समाज ने उसे इस प्रकार हाट लगाने के लिए विवश तथा उत्साहित किया, वे क्या कभी उसके एकाकी अंत का भार कम करने लौट सके?"—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 111-112।

इसी समस्या पर पुनः लिखते हुए महादेवी के इस पवित्र क्षोभ को देखिए :

'इन स्त्रियों ने, जिन्हें गर्वित समाज पतित के नाम से संबोधित करता आ रहा है, पुरुष की वासना की वेदी पर कैसा घोरतम बलिदान दिया है, इस पर कभी किसी ने विचार भी नहीं किया। पुरुष की बर्बरता, रक्त-लोलुपता पर बलि होने वाले युद्ध-वीरों के चाहे स्मारक बनाए जावें, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रज्ज्वलित चिता पर क्षण-भर में जल मिटनेवाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सकें, परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिल-तिल जलानेवाली इन रमणियों को मनुष्य-जाति ने कभी दो बूँद आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा। × × × × कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ, जो इन मूक प्राणियों की दुःखभरी जीवन-गाथा लिखता; जो इनके अँधेरे हृदय में इच्छाओं के उत्पन्न और नष्ट होने की करुण कहानी सुनाता, जो इनके रोम-रोम को जकड़ लेने वाली शृंखला की कड़ियाँ ढालनेवालों के नाम गिनाता और जो इनके मधुर जीवन-पात्र में तिक्त विष मिलानेवाले का पता देता।'—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 113-114।

वेश्याओं के प्रति जो दृष्टिकोण उपर्युक्त उद्धरणों में रूपायित हुआ है, वह केवल सहानुभूतिपूर्ण ही नहीं, प्रगतिशील भी है, क्योंकि वह यथार्थ पर आधारित है, जीवन-सम्मत है। इस समस्या पर विचार करनेवाले सभी समाज-शास्त्रियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि वेश्यावृत्ति स्वीकार करने का कारण उन स्त्रियों की व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं, सामाजिक परिस्थिति-जन्य विवशता ही है। जहाँ नारी सबसे अधिक पराधीन है, वहीं वेश्यावृत्ति भी सबसे अधिक है। जहाँ सम्पूर्ण समाज के साथ-साथ नारी भी स्वाधीन है, वहाँ वेश्यावृत्ति नहीं है। ऐसा सम्पूर्ण

स्वाधीन समाज तो सोवियत रूस में ही है, इसीलिए वहाँ वेश्यावृत्ति का नाम भी नहीं है और वे स्त्रियाँ जो कभी वेश्यावृत्ति से जीविका उपार्जित करती थीं, आज सम्पूर्ण नागरिक अधिकारों के साथ अपने समाज की क्रियाशील सदस्याएँ हैं और देश को अपनी अन्य पुत्रियों के समान ही उन पर भी गर्व है। इस प्रश्न पर आगे हम और विस्तार से विचार करेंगे। यहाँ तो केवल यह दिखलाना उद्दिष्ट है कि वेश्याओं की समस्या पर न्यायपूर्ण ढंग से विचार ही नहीं किया जा सकता, जब तक आप उन्हें सामाजिक परिस्थितियों की भूमिका में रखकर न देखें। ऐसा करने पर आप उसी बर्बर असभ्य 'निष्कर्ष' पर पहुँचेंगे जिस पर विशाल अशिक्षित जन-समुदाय पहुँचता है कि वे विशेष कामुकी होती हैं और उनका कोई इलाज सम्भव नहीं। सदा ऐसी स्त्रियाँ होती रहेंगी, जिनकी सम्भोगेच्छा इतनी प्रबल होगी कि वे एक पति के प्रति अनुरक्त होकर रह ही नहीं सकेंगी, आदि। एक बार फिर यह कहना आवश्यक है कि इस प्रश्न पर यह दृष्टि घोर बर्बरता की द्योतक है। सभ्य, शिक्षित दृष्टिकोण यह है।

'मनुष्य-जाति के सामान्य गुण सभी मनुष्यों में कम या अधिक मात्रा में विद्यमान रहेंगे। केवल विकास के अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ उन्हें बढ़ा-घटा सकेंगी। पतित कही जानेवाली स्त्रियाँ भी मनुष्य-जाति से बाहर नहीं हैं, अतः उनके लिए भी मानव-सुलभ प्रेम, साधना और त्याग अपरिचित नहीं हो सकते। उनके पास भी धड़कता हृदय है, जो स्नेह का आदान-प्रदान चाहता रहता है, उनके पास भी बुद्धि है जिसका समाज के कल्याण के लिए उपयोग हो सकता है और उनके पास भी आत्मा है जो व्यक्तित्व में अपने विकास और पूर्णत्व की अपेक्षा रखती है। ऐसे सजीव व्यक्ति को एक ऐसे गर्हित व्यवसाय के लिए बाध्य करना जिसमें उसे जीवन के आदि के अन्त तक उमड़ते हुए आँसुओं को अंजन से छिपाकर, सूखे हुए अधरों को मुस्कराहट से सजाकर और प्राणों के क्रंदन को कण्ठ ही में रूँधकर धातु के कुछ टुकड़ों के लिए अपने-आपको बेचना होता है, हत्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'—पृष्ठ 115।

रूप का व्यवसाय गर्हित है, व्यवसायी नहीं; क्योंकि किन्हीं परिस्थितियों से विवश होकर ही उसे यह व्यवसाय करना पड़ा होगा, इसलिए दोष परिस्थितियों का है, परिस्थितियों का निर्माण करनेवालों का है। जो परिस्थितियों के वैभव में पड़कर बह गया, वह तो हमारी दया का पात्र ही हो सकता है। उसके प्रति तो हम केवल रचनात्मक दृष्टिकोण रख सकते हैं जिसमें हम पुनः उन परिस्थितियों का निर्माण कर सकें जिनमें पहले का रूप-व्यवसायी फिर से हमारे समाज का आदृत सदस्य बन सके। स्वतन्त्र देश और स्वतन्त्रचेता विचारक यही दृष्टिकोण रखते भी हैं। अभी कुछ दिन हुए समाचार आया था कि फ्रांस ने, नये स्वाधीन जागृत फ्रांस ने, वेश्यावृत्ति को अवैध घोषित कर दिया है और वेश्याओं को अन्य कार्यों में लगाने की व्यवस्था की है। यही सभी स्वाधीन देशों में होगा। नये रूस

का उदाहरण भी इस दिशा में बहुत उपयोगी है। अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के युद्ध में जारशाही रूस की वेश्याओं और आज की सोवियत महिलाओं का स्थान अन्य स्त्रियों से अणुमात्र भी कम नहीं रहा। उन्होंने छापामारों के दस्तों में भी काम किया। जो काम उनकी अन्य बहनों ने किया, वही उन्होंने भी उतनी ही लगन के साथ किया। इसीलिए कि संसार के सभ्यतम देश समाजवादी रूस ने उन्हें मनुष्य बनने का अवसर दिया था, उन्हें उस आत्मा का हनन करनेवाले व्यापार से छुटकारा दिया था, उसने घृणा न करके उन्हें हृदय से लगा लिया था। उनके प्रति महादेवी के दृष्टिकोण में भी यही संवेदनशीलता, यही करुणा परिलक्षित होती है और इसी करुणा में नवनिर्माण की शक्ति है। यह करुणा वायवी नहीं, जीवन के गतिशील दर्शन पर आधारित है, इसलिए जहाँ उसमें बलिपशु के लिए अजस्र करुणा है, वहीं बलि करनेवाले के लिए हिंस्र घृणा।

विधवाओं और वेश्याओं की समस्या पर विचार करने के साथ-साथ महादेवी ने कुछ अन्य सामान्य प्रश्नों पर भी विचार किया है, जैसे सामाजिक रूढ़ियाँ। प्राचीनता और नवीनता का संघर्ष बहुत पुराना है और वह आज भी सुलझने का नाम नहीं लेता। उसके सम्बन्ध में विचार करते हुए वे लिखती हैं :

'प्राचीनता की पूजा बुरी नहीं, उसकी दृढ़ नींव पर नवीनता की भित्ति खड़ी करना भी श्रेयस्कर है, परन्तु उसकी दुहाई देकर जीवन को संकीर्ण से संकीर्णतम बनाते जाना और विश्वास के मार्ग को चारों ओर से रुद्ध कर लेना किसी जीवित व्यक्ति पर समाधि बना देने से भी अधिक क्रूर और विचारहीन कार्य है।

"जीवन की सफलता अतीत से भिक्षा लेकर अपने-आपको नवीन वातावरण के उपयुक्त बना लेने, नवीन समस्याओं को सुलझा लेने में है, केवल उनके अंधानुसरण में नहीं। अतः अब स्त्रियों से सम्बद्ध अनेक प्राचीन वैधानिक व्यवस्थाओं में संशोधन तथा अर्वाचीनों का निर्माण आवश्यक है।'

"समस्त सामाजिक नियम मनुष्य की नैतिक उन्नति तथा उसके सर्वतोमुखी विकास के लिए आविष्कृत किये गए हैं। जब वे ही मनुष्य के विकास में बाधा डालने लगते हैं तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती। उदाहरणार्थ विवाह की संस्था पवित्र है, उसका उद्देश्य भी उच्चतम है, परन्तु जब वह व्यक्तियों के नैतिक पतन का कारण बन जावे, तब अवश्य ही उसमें किसी अनिवार्य संशोधन की आवश्यकता समझनी चाहिए।"

उपर्युक्त सभी उद्धरणों से एक अत्यन्त सुलझे हुए और रूढ़ियों से मुक्त प्रगतिशील विचारक का परिचय मिलता है। महादेवी के विचार में कहीं प्राचीनता के लिए आग्रह नहीं है और सर्वत्र नवीनतम मान्यताओं के स्वीकरण का भाव है। उनके विचारों में किसी सामाजिक कुसंस्कार या जड़ता की छाया भी नहीं मिलेगी। यहाँ तक कि 'जारज' या अवैध सन्तानों की समस्याओं पर भी उनके दृष्टिकोण में वही उदारता है, वस्तुस्थिति को निर्भीक भाव से ग्रहण करने

की सचाई है, जो विधवाओं तथा वेश्याओं की ओर से संघर्ष करते हुए उनमें पाई जाती है। अवैध संतति की समस्या बड़ी समस्या है। उसे उदार भाव से समस्त नागरिक अधिकारों के साथ ग्रहण कर लेने के लिए आंदोलन करनेवाले कम ही समाज-सुधारक मिलेंगे। क्रांतिकारी दृष्टिकोण के बिना यह सम्भव नहीं। महादेवी में यही क्रांतिकारी दृष्टिकोण मिलता है। पुराणपंथियों की भर्त्सना करते हुए वे लिखती हैं :

'जिन मानवीय दुर्बलताओं को वे स्वयं अविरत संयम और अटूट साधना से भी जीवन के अंतिम क्षणों तक न जीत सकेंगे उन्हीं दुर्बलताओं को किसी भूली हुई अस्पष्ट सुधि द्वारा जीत लेने का आदेश वे उन अबोध बालिकाओं को दे डालेंगे जो जीवन से अपरिचित हैं। उनकी आज्ञा है, उनके शास्त्रों की आज्ञा है और कदाचित् उनके निर्मम ईश्वर की भी आज्ञा है, कि वे जीवन की प्रथम अँगड़ाई को अंतिम प्राणायाम में परिवर्तित कर दें, आशा की पहली किरण को विषाद के निविड़ अंधकार में समाहित कर दें, और सुख के मधुर पुलक को आँसुओं में बहा डालें।'—पृष्ठ 42-43।

जिससे एक बार भी चूक हुई, उसकी क्या दुर्दशा होती है, इसे महादेवी ने विशेष रूप से 'अतीत के चलचित्र' के छठे संस्करण की मुख्य पात्री अठारह वर्ष की विधवा के चित्र द्वारा समझाया है। उसी पर विचार करते हुए लिखती हैं :

"अपने अकाल वैधव्य के लिए वह दोषी नहीं ठहराई जा सकती। उसे किसी ने धोखा दिया, इसका उत्तरदायित्व भी उस पर नहीं रखा जा सकता। पर उस आत्मा का जो अंश, हृदय का जो खंड उसके समान है, उसके जीवन-मरण के लिए केवल वही उत्तरदायी है। कोई पुरुष यदि उसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता, तो केवल इस मिथ्या के आधार पर वह अपने जीवन के इस सत्य को, अपने बालक को अस्वीकार कर देगी ? संसार में चाहे इसको कोई परिचयात्मक विशेषण न मिला हो, परन्तु अपने बालक के निकट तो यह गरिमामयी जननी की संज्ञा ही पाती रहेगी। इसी कर्तव्य को अस्वीकार करने का यह प्रबन्ध कर रही है किसलिए ? केवल इसलिए कि या तो उस वंचक समाज में फिर लौटकर गंगा-स्नान कर व्रत-उपवास, पूजा-पाठ आदि के द्वारा सती विधवा का स्वाँग भरती हुई और भूलों की सुविधा पा सके या किसी विधवा आश्रम में पशु के समान नीलाम पर कभी नीची कभी ऊँची बोली पर बिके, अन्यथा एक बूँद विष पीकर धीरे-धीरे प्राण दे।"—पृष्ठ 60-61।

अवैध सन्तान के विषय में लिखते हुए देखिए उनकी करुणा किस प्रकार इस तिरस्कृत नवजात शिशु की ओर प्रवाहित होती है :

'छोटी लाल कली जैसा मुँह नींद में कुछ खुल गया था और उस पर एक विचित्र-सी मुस्कराहट थी, मानो कोई सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। इसके आने से कितने भरे हृदय सूख गए, कितनी सूखी आँखों में बाढ़ आ गयी और कितनों को

जीवन की घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं। यह अनाहूत, अवांछित अतिथि, अपने सम्बन्ध में भी क्या जानता है? इसके आगमन ने इसकी माता को किसी की दृष्टि में आदरणीय नहीं बनाया, इसके स्वागत में मेवे नहीं बँटे, बधाई नहीं गाई गयी, दादा-नाना ने अनेक नाम नहीं सोचे, चाची-ताई ने अपने नेग के लिए वाद-विवाद नहीं किया और पिता ने इसमें अपनी आत्मा का प्रतिरूप नहीं देखा।'

कितने सजीव चित्रमय रूप में इस 'अवांछित अतिथि' के प्रति समाज का निर्मम तिरस्कार उन्होंने व्यक्त किया है। समाज के इस बर्बर निर्णय का वे कितना मूल्य आँकती हैं, वह तो इसी से स्पष्ट है कि उन्होंने एक प्रकार से समाज को चुनौती देकर इन अभागे माँ-बेटे को अपनी ममतामयी क्रोड़ में आश्रय दिया, और जैसे घोषणा की—ओ धर्मध्वजियो, तुम्हारे प्रमाण-पत्रों को मैं कूड़ा-करकट समझती हूँ।

महादेवी ने नारी की परवशता की समस्या पर केवल कवि की करुणा-विगलित दृष्टि डाली हो, सो बात नहीं है। उन्होंने एक गम्भीर समाजशास्त्री के रूप में इस समस्या पर चिंतन किया है। इसीलिए नारी की इस परवशता का मूल कारण क्या है यह पता लगाने में भी उन्हें ज़्यादा देर न लगी। उनका यह निश्चित मत है कि स्त्रियों की इस परवशता के मूल में उनकी आर्थिक परवशता है और इसीलिए उनकी परवशता का उच्छेद तब तक असम्भव है जब तक स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलम्बी नहीं हो जाती। वे कहती हैं:

'अनेक व्यक्तियों का विचार है कि यदि कन्याओं को स्वावलम्बिनी बना देंगे तो वे विवाह ही न करेंगी, जिससे दुराचार भी बढ़ेगा और गृहस्थ-धर्म में भी अराजकता उत्पन्न हो जाएगी। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा प्रधान होना चाहिए, आर्थिक कठिनाइयों की विवशता नहीं।'—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 102।

और भी अधिक स्पष्ट शब्दों में:

'स्त्री के जीवन की अनेक विवशताओं में प्रधान और कदाचित् उसे सबसे अधिक जड़ बनानेवाली अर्थ से सम्बन्ध रखती है और रखती रहेगी क्योंकि वह सामाजिक प्राणियों की अनिवार्य आवश्यकता है।'

'अर्थ का विषम विभाजन भी एक ऐसा ही बन्धन है जो स्त्री-पुरुष दोनों को सामान्य रूप से प्रभावित करता है।'

'समाज ने स्त्री के सम्बन्ध में अर्थ का एक ऐसा विषम विभाजन किया है कि साधारण श्रमजीवी वर्ग से लेकर सम्पन्न वर्ग की स्त्रियों तक की स्थिति दयनीय ही कही जाने योग्य है। वह केवल उत्तराधिकार से ही वंचित नहीं है, वरन् अर्थ के सम्बन्ध में सभी क्षेत्रों में एक प्रकार की विवशता के बन्धन में बँधी हुई है। कहीं पुरुष ने न्याय का सहारा लेकर और कहीं अपने स्वामित्व की शक्ति से लाभ

उठाकर उसे इतना अधिक परावलम्बी बना दिया है कि वह उसकी सहायता के बिना संसार-पथ में एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती।'

'इस प्रकार स्त्री की स्थिति 'नितान्त परवशता' की हो गई और पुरुष की स्थिति 'स्वच्छन्द आत्मनिर्भरता' की। यह स्थिति-वैषम्य ही नारी-पुरुष सम्बन्ध की विषमता के मूल में है।'

महादेवी के उपर्युक्त उद्धरणों को लेनिन की इस युक्ति से मिलाइए :

'जब तक स्त्रियाँ घरेलू कामकाज में फँसी रहती हैं, तब तक उनकी परवश स्थिति रहती है। स्त्री-जाति की पूर्ण स्वाधीनता के लिए और इन्हें सच्चे अर्थ में पुरुषों का समकक्ष बनाने के लिए आवश्यक है कि हम सामाजिक उत्पादन-प्रणाली का सूत्रपात करें और स्त्रियों को इस बात का अवसर दें कि वे भी पुरुषों ही की भाँति सामाजिक उत्पादन के श्रम में हाथ बँटा सकें। तब स्त्री और पुरुष की समान स्थिति हो जाएगी।'[1]

अपने इसी विचार को लेनिन एक स्थल पर और अधिक विशद रूप में प्रस्तुत करते हैं :

'युगों पहले पश्चिमी यूरोप के सभी स्वाधीनता आन्दोलनों के प्रतिनिधियों ने दशाब्दियों तक ही नहीं, शताब्दियों तक इस बात का आंदोलन किया कि (स्त्री और पुरुष के विषमतामूलक) पुराणपंथी, जड़ कानूनों को उठा दिया जाए और स्त्री तथा पुरुष में कानूनी समता स्थापित कर दी जाए। लेकिन एक भी यूरोपीय गणतांत्रिक राष्ट्र, वह तक जो सबसे आगे बढ़ा हुआ था, ऐसा न कर सका, क्योंकि पूँजीवाद का राज्य है, जहाँ ज़मीन और कल-कारखानों पर व्यक्तिगत स्वामित्व की रक्षा की जाती है, जहाँ पूँजी की सत्ता अचल है, वहाँ पुरुष का (नारी) स्वामित्व भी अटल रहेगा। रूस में हमें स्त्री और पुरुष की समता स्थापित करने में सफलता केवल इसलिए मिली कि 7 नवम्बर, 1917 को हमारे यहाँ मज़दूरों का राज्य स्थापित हुआ। × × × कामकरों की सरकार, सोवियत सरकार ने अपनी स्थापना के चन्द महीनों के अन्दर ही स्त्रियों से सम्बद्ध कानूनों में क्रांति ला दी। स्त्रियों को (पुरुषों के) अधीन रखनेवाले कानूनों का लेशमात्र भी अब सोवियत प्रजातन्त्र में नहीं रह गया है। मेरा मतलब खासतौर पर उन कानूनों से है जो स्त्री की दुर्बलता का अनुचित लाभ उठाते थे और उसे हीन तथा बहुधा अपमान-जनक स्थिति में डाल देते थे—मेरा मतलब तलाक़ के तथा अवैध सन्तान से संबद्ध कानूनों से है, स्त्री के इस अधिकार से है कि वह अपनी संतान के पिता पर गुज़ारे के लिए दावा दायर कर सके।'[2]

स्पष्ट है कि नारी-स्वाधीनता के प्रश्न पर महादेवी के विचार विज्ञान-सम्मत रूप में समाजवाद से प्रभावित हैं। नारी की परवशता का जो मूल कारण समाज-

1. Selected Works, Vol. lx. p. 496.
2. वही, पृष्ठ 496।

वाद बतलाता है, महादेवी भी अपने धर्मक्षेत्र के आधार पर उससे सहमत हैं। जीवन के प्रति महादेवी का दृष्टिकोण स्वस्थ गांधीवादी है, इसमें संदेह नहीं, किन्तु नारी-स्वाधीनता के प्रश्न पर वे समाजवाद के ही अधिक समीप हैं। गांधीवाद में नारी को घर ही में सीमित रखने का जो आग्रह है, उसे महादेवी स्वीकार नहीं करतीं। गार्हस्थिक उत्तरदायित्वों की पवित्रता आदि के सम्बन्ध में जो लम्बी-चौड़ी बातें उस ओर से कही जाती हैं, उनका भी महादेवी पर कोई प्रभाव नहीं है। महादेवी ने रोग की जड़ पहचान ली है। वे इस बात को बिल्कुल अस्वीकार करती हैं कि स्त्री का कार्यक्षेत्र केवल घर है; घर के बाहर पुरुष का कार्यक्षेत्र है, जहाँ स्त्री को पैर भी न रखना चाहिए। कहती हैं :

'वास्तव में स्त्री भी अब केवल रमणी या भार्या नहीं रही, वरन् घर तथा हर समाज का एक विशेष अंग तथा महत्त्वपूर्ण नागरिक है, अतः उसका कर्त्तव्य भी अनेकाकार हो गया है···'

महादेवी का मत है कि स्त्री का कार्यक्षेत्र घर भी है और बाहर भी। घर के दायित्वों के प्रति 'आधुनिकाओं' का जो विद्रोह है, उसे भी वे स्वीकार नहीं करतीं और घर के दायित्वों तक ही सीमित रह जानेवाली बात को, घर की गुलामी को भी नहीं स्वीकार करतीं। उनका रास्ता मध्य का है, जिसका मूल मन्त्र है :

'समाज को किसी-न-किसी दिन स्त्री के असन्तोष को सहानुभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा, जिसे पाकर वह अपने-आपको उपेक्षित न माने और जो उसके मातृत्व के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे नवीन युग की संदेशवाहिका बना सकने में समर्थ हो।'

यह घर और बाहर की सनातन समस्या को सामञ्जस्यपूर्ण ढंग से समन्वय के आधार पर हल करने का प्रयास है और शायद इस प्रश्न पर यही स्वस्थतम, प्रगतिशील दृष्टिकोण भी है। 'आधुनिका' की जो सहज प्रवृत्ति घर से सम्पूर्ण रूप में सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने की है, वह ध्वंसात्मक है, रचनात्मक नहीं। उसके सम्बन्ध में महादेवी कहती हैं :

'अनुकरण को चरम लक्ष्य माननेवाली महिलाओं ने भी अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए सत्पथ नहीं खोज पाया, परन्तु उस स्थिति में उसे खोज पाना सम्भव नहीं था। इन्हें अपने मूक छायावत् निर्जीव जीवन से ऐसी मर्मव्यथा हुई कि उसके प्रतिकार के लिए उपयुक्त साधनों के आविष्कार का अवकाश ही न मिल सका। अतः उन्होंने अपने-आपको पुरुषों के समान ही कठिन बना लेने की कठोर साधना आरम्भ की। कहना नहीं होगा कि इसमें सफलता का अर्थ स्त्री के मधुर व्यक्तित्व को जलाकर उसकी भस्म से पुरुष की रुक्ष मूर्ति गढ़ लेना है। फलतः आज की विद्रोहशील नारी व्यावहारिक जीवन में अधिक कठोर है, गृह में अधिक निर्मम और शुष्क, आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वाधीन, सामाजिक क्षेत्र में अधिक स्वच्छन्द, परन्तु अपनी निर्धारित रेखाओं की संकीर्ण सीमा की बंदिनी है।'

महादेवी 'आधुनिका' के इस 'विद्रोह' को आत्महत्या समझती हैं। उनका विश्वास है कि घर और बाहर दोनों ही स्त्री के कार्यक्षेत्र हैं, दोनों में परस्पर कोई विरोध नहीं है, वस्तुतः दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और यदि संतुलन के साथ दोनों को साथ लेकर चलने का प्रयत्न किया जाए तो थोड़े ही श्रम से इस दिशा में निश्चय ही सफलता मिल सकती है।

महादेवी इतना कहकर ही संतोष नहीं कर लेतीं कि स्त्री का कार्यक्षेत्र घर के बाहर भी है। वे अलग-अलग काम गिनाती भी हैं; जैसे, महिला-साहित्य व बाल-साहित्य की रचना। इस दो प्रकार के साहित्य की रचना में स्त्रियों को ही सर्वाधिक सफलता मिलने की सम्भावना है, क्योंकि ये दोनों विषय एक प्रकार से उन्हीं से सम्बन्ध रखते हैं। इस साहित्य-रचना के अलावा शिक्षा, चिकित्सा और कानून के क्षेत्रों में वे विशेष रूप से सहायक तथा उपयोगी हो सकती हैं। बालक-बालिकाओं की शिक्षा, रोगियों की सेवा-शुश्रूषा आदि का कार्य तथा बाल एवं महिला-साहित्य की रचना निश्चय ही ऐसे मार्ग हैं जिनके सम्बन्ध में महादेवी का उपर्युक्त सिद्धान्त लागू किया जा सके। अर्थात् वे ऐसे कार्य हैं जो उसके मातृत्व को अक्षुण्ण रखते हुए भी उसे नवीन युग की संदेशवाहिका बना सकने में समर्थ हैं। महादेवी के इन विचारों का पूरा महत्त्व तब समझ में आता है जब हम संसार की अकेली समग्र क्रान्तिकारी शासन-सत्ता, सोवियत रूस में स्त्रियों की स्थिति पर नज़र दौड़ाते हैं। वहाँ भी स्त्री-जाति का विकास उसके मातृत्व की रक्षा-मात्र के आधार पर नहीं, बल्कि उसके विकास के आधार पर हुआ है। सोवियत राज ने स्त्री के मातृत्व को विकसित करके स्त्री-जाति का उन्नयन किया है और उसे सोवियत समाज का उपयोगी सदस्य बनाया है, मातृत्व को अपहृत या विस्मृत करके नहीं। यही कारण है कि सोवियत रूस में स्त्रियों का उन्हीं क्षेत्रों में सबसे अधिक विकास हुआ जिनकी ओर महादेवी ने संकेत किया है। विभिन्न क्षेत्रों में सोवियत नारी का क्या आनुपातिक स्थान है, इसके आँकड़े देखने पर पता चलता है कि वैज्ञानिक खोज के कार्य में स्त्रियों की संख्या 34 प्रतिशत थी, विश्वविद्यालयों के कुल विद्यार्थियों में महिला विद्यार्थियों की संख्या 43·1 प्रतिशत थी चिकित्सकों की कुल संख्या में आधे से ऊपर (50·6 प्रतिशत) महिलाएँ थीं और अध्यापन के क्षेत्र में तो स्त्रियों ने पुरुषों को बिलकुल पीछे छोड़ दिया था, अध्यापिकाओं की संख्या कुल की 64·8 प्रतिशत थी। कृषि और कल-कारखानों की मज़दूरी के कार्य में भी स्त्रियाँ क्रमशः 37·1 और 39·7 प्रतिशत थीं, जो कि कम नहीं है। लेकिन शिक्षा और चिकित्सा ही वे दो मुख्य कार्यक्षेत्र हैं जिनमें स्त्रियाँ निश्चित रूप से पुरुषों से आगे हैं और उत्तरोत्तर आगे होती जाती हैं।

महादेवी ने अत्यन्त गम्भीर और शान्त मन से नारी-समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है, तत्सम्बन्धी अपने निष्कर्ष वास्तविक जीवन के अपने परिचय के आधार पर बनाए हैं। यही कारण है कि उन्होंने गांधीवादी सुधारवाद

को बिलकुल ठुकरा दिया है और आमूल क्रान्ति का मार्ग अपनाया है। उनके विचारों पर यदि किसी विचारधारा का प्रभाव पड़ा है, तो वह वैज्ञानिक समाजवाद है। हो सकता है कि उनके निष्कर्ष, उनकी चिंतना, सर्वथा मौलिक हों। उस दशा में हम यही कहेंगे कि महादेवीजी ने जीवन के यथार्थ को स्वीकार करके इस समस्या पर विचार किया है, इसलिए उनके सामाजिक निष्कर्ष अनिवार्यतः क्रान्तिकारी समाजवाद की ओर झुकते हैं, क्योंकि समाजवाद स्वयं कठोर धरती की, जीवन की, यथार्थ समस्याओं से उपजा हुआ, और विकृत यथार्थ को बदलकर उसके स्थान पर स्वस्थ यथार्थ को स्थापित करनेवाला जीवन-दर्शक है। समाजवाद के सिद्धान्तों पर संचालित सोवियत रूस का विधान अपनी 122वीं धारा में यदि नारी की स्वाधीनता की घोषणा इन शब्दों में करता है कि—

'सोवियत रूस की स्त्रियों को जीवन के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा राज्य-सम्बन्धी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के बराबर अधिकार होंगे (और) इन अधिकारों का उपयोग करने के लिए स्त्रियों को अधिक-से-अधिक सुविधाएँ दी जाएँगी।'

—तो उसका यही कारण है कि जारशाही शासनकाल में रूस की स्त्रियों की वही दशा थी जो आज भारतवर्ष की स्त्रियों की है। जारशाही शासनकाल के काले दिनों में स्त्री को केवल सामाजिक उत्पीड़न का ही सामना नहीं करना पड़ता था, वरन् पारिवारिक जीवन में भी न तो स्त्रियों के कोई अधिकार थे और न अत्याचार से बचाव के साधन। किसान-स्त्रियों का पुराने जमाने के परिवार में क्या स्थान था, इसके ऊपर विचार करते हुए स्तालिन ने कहा था—"शादी होने के पहले परिवार में काम करनेवालों में उसका स्थान पहला था। वह अपने पिता के लिए काम करती थी और एड़ी-चोटी का पसीना एक करने के बाद भी पिता के यही शब्द उसे सुनने को मिलते थे, 'मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ।' शादी होने के बाद वह अपने पति के लिए काम करती थी और उसकी प्रत्येक आज्ञा का सिर झुकाए पालन करती थी। उसके बदले पुरस्कार में उसे पति से यही शब्द सुनने को मिलते थे—'मैं तुम्हारा पालन कर रहा हूँ'।"—समाजवादी रूस की स्त्रियाँ, पृष्ठ 23।

नारी-समस्या पर महादेवी के विचार आद्यन्त समाजवाद की ओर उन्मुख हैं और उनकी पुष्ट सामाजिक चेतना का परिचय देते हैं। निम्न उद्धरण में वे अपने क्रान्तिकारी विचार अत्यन्त सुलझे हुए और संतुलित ढंग से रखती हैं :

'आरम्भ में प्रायः सभी देशों के समाज ने स्त्री को कुछ स्पृहणीय स्थान नहीं दिया, परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ स्त्री की स्थिति में भी परिवर्तन होता गया। वास्तव में स्त्री की स्थिति को समाज का विकास नापने का मापदण्ड कहा जा सकता है। नितान्त बर्बर समाज में स्त्री पर पुरुष वैसा ही अधिकार रखता है, जैसा वह अपनी स्थावर सम्पत्ति पर रखने को स्वतंत्र है, इसके विपरीत

पूर्ण विकसित समाज में स्त्री-पुरुष की सहयोगिनी तथा समाज का आवश्यक अंग मानी जाकर माता तथा पत्नी के महिमामय आसन पर आसीन है।'—पृष्ठ 128।

महादेवी का नारी-स्वाधीनता का स्वप्न कम-से-कम एक देश में जीवन की वास्तविकता पा चुका है। संसार के कम-से-कम छठे भाग पर एक ऐसा पूर्ण विकसित समाज है जो महत्तम भारतीय आदर्श के अनुरूप नारी को वह मान और आदर देता है, जो मान और आदर आज तक स्वयं भारतीय नारी को नहीं मिल सका। महादेवी ने यदि सोवियत नारी के सम्बन्ध में यथेष्ट बातें पता लगाकर उनके आलोक में भारतीय नारी की समस्या पर विचार किया होता तो उसके वर्तमान जीवन की विभीषिका और भविष्य के स्वप्नों के बीच एक लम्बी खाई न होकर कर्त्तव्य का एक सेतु होता और उनके विचारों की एक बड़ी कमी दूर हो जाती अर्थात् आज की परवश भारतीय नारी के लिए तत्काल कर्म का सन्देश—क्योंकि स्वप्न सार्थक तब होता है जब उसे कर्त्तव्य का आकार मिलता है।

14

महादेवी की गद्य-शैली

रामचरण महेन्द्र

['हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की विलक्षण शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की सद्भावना, कल्पना-शक्ति पर प्रभुत्व और शब्दों की नक्काशी का समुच्चय महादेवी की गद्य-शैली में ऐसा घुल-मिल गया है कि अनायास ही वे जीवन और समाज की विषम प्रहेलिकाओं पर सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि डाल देती हैं। उनके व्यक्ति और समाज के रेखाचित्र बड़े सजीव एवं रंगीन हैं। कला की तूलिका से उनमें रंग भरे गए हैं, कल्पना के परिधान से उन्हें सज्जित किया गया है।']

कल्पना-चाँदनी की साड़ी पहन, तारों की स्वप्निल जाली मुँह पर डाले, संध्या का सिंदूर मुखश्री पर लगाए, जिस कवयित्री की रहस्यवादी कविता मानव-जगत् से बहुत ऊँची उठकर भावगगन में विहार करती है, उसी गद्यकार महादेवी की 'शृंखला की कड़ियाँ' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' का धरातल यथार्थवादी, ठोस और पार्थिव है। संसार की कठोर निर्ममता और हृदयहीनता को उन्होंने देखा है। महादेवी की कविता में जहाँ दया और प्रेम छलकता है, वहाँ गद्य में उन्होंने प्रताड़ित नारी की परवशता, समाज की हृदयहीनता, कठोरता, जड़ रूढ़ियों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया है। जहाँ कविता में आपकी प्रकृति आत्मकेन्द्रित है, वहाँ गद्य में मूलतः समाजकेन्द्रित है। उसमें जनता का दुर्दमनीय अवसाद और आकुल पीड़ा उद्वेलित हो उठी है।

हृदय की विशालता, भाव-प्रसार की विलक्षण शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की उद्भावना, कल्पना-शक्ति पर प्रभुत्व और शब्दों की नक्काशी का समुच्चय महादेवी की गद्य-शैली में ऐसा घुल-मिल गया है कि अनायास ही वे जीवन और समाज की विषम प्रहेलिकाओं पर सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि डाल देती हैं। उनके व्यक्ति और समाज के रेखाचित्र बड़े सजीव एवं रंगीन हैं। कला की तूलिका से उनमें रंग भरे गए हैं, कल्पना के परिधान से उन्हें सज्जित किया गया है।

महादेवी का गद्य कई प्रकार का है—विवेचनात्मक, संस्मरणात्मक, यात्रा विषयक तथा नारी-समस्यात्मक। भाव के अनुसार भाषा और शैली का रूप परिवर्तित होता जाता है। जैसा विषय वे लेती हैं, वैसी ही भाषा, कल्पना और

शब्द-चयन होता है। सीधा-सादा विषय प्रस्तुत करना या कथानक उपस्थित कर देना उन्हें नहीं भाता। कल्पना के सहज स्पर्श से वे उसमें माधुर्य ग्रौर चमत्कार भर देती हैं। जहाँ उन्होंने जीवन की कठोर वास्तविकताग्रों को छुग्रा है, वहाँ वे विक्षुब्ध हो उठी हैं। समाज की रूढ़ियों, दुःख, दैन्य एवं स्वार्थ की कुटिलताग्रों को देखकर उनकी ग्रात्मा विद्रोह कर उठी है। समाज के शिकंजों में फँसी नारी की ग्रन्तर्वेदना ग्रापने प्रकट की है। विधवाग्रों, वेश्याग्रों, घर की चहारदीवारी में बन्द हिन्दू नारी, पुरुष-शासित समाज की पुरानी-नई रूढ़ियों, मिथ्या दम्भ ग्रौर ग्रत्याचार पर महादेवी ने मार्मिक ढंग से लिखा है। यह शैली ग्रालोचना-प्रधान होते हुए भी भावात्मक है। तर्क का ग्राश्रय ग्रन्त तक लिया गया है।

सर्वप्रथम प्राकृतिक दृश्यों की वर्णन-शैली पर विचार करें। प्रकृति की नाना वस्तुग्रों, वृक्ष, लताग्रों, सरिता ग्रौर दृश्यों के वर्णन में कोमल-कान्त पदावली का प्रचुरता से उपयोग हुग्रा है, उपमा का कोष जैसे लुटा दिया गया हो। इन दृश्यों की सजीवता, वर्णन की सूक्ष्मता तथा भाव-प्रवणता दर्शनीय है :

'उस सरल कुटिल मार्ग के दोनों ग्रोर, ग्रपने कर्त्तव्य की गुरुता से निस्तब्ध प्रहरी जैसे खड़े हुए, ग्राकाश में भी धरातल के समान मार्ग बना देनेवाले सफेदे के वृक्षों की पंक्ति से उत्पन्न दिग्भ्रांति जब कुछ कम हुई तब हम एक दूसरे ही लोक में पहुँच चुके थे, जो उस व्यक्ति के समान परिचित ग्रौर ग्रपरिचित दोनों ही लग रहा था, जिसे कहीं देखना तो स्मरण ग्रा जाता है, परन्तु नाम-धाम नहीं याद ग्राता।'

'चारों ग्रोर से नीलाकाश को खींचकर पृथ्वी से मिलाता हुग्रा क्षितिज रुपहले पर्वतों से घिरा रहने के कारण बादलों से बने घेरे-जैसा जान पड़ता था। वे पर्वत ग्रविरल ग्रौर निरन्तर होने पर भी इतनी दूर थे कि धूप में जगमगाती ग्रसंख्य चाँदी-सी रेखाग्रों के समूह के ग्रतिरिक्त उनमें ग्रौर कोई पर्वत का लक्षण दिखाई न देता था। जान पड़ता था जैसे किसी चित्रकार ने ग्रपने ग्रालस्य के क्षणों में पहले रंग की तूलिका डुबाकर नीचे धरातल पर इधर-उधर फेर दी है। पृथ्वी ग्रश्रुमुखी ही दिखाई पड़ती।'

महादेवी ने 'चाँद' की सम्पादिका के रूप में सम्पादकीय लेख लिखे, जो 'शृंखला की कड़ियाँ' के रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनका मूल विषय समाज तथा नारी की दयनीय स्थिति का परिचय है। रूढ़ियों से बँधे हुए समाज में भारतीय नारी ग्रपमानित, प्रताड़ित, ग्रधिकारहीन ग्रौर ग्रभिशापों से पिसा हुग्रा प्राणी है। महादेवीजी के इन लेखों में समाज के शिकंजों में फँसी हुई नारी की मूक व्यथा मुखरित हो उठी है, विद्रोह की ग्रात्मा क्रांति कर रही है। मध्यवर्ग में हिन्दू नारी का एक चित्र देखिए—तर्क ग्रौर विचार में पुष्ट ग्रौर ग्रालोचना में स्वस्थ :

"इस समय तो भारतीय पुरुष जैसे ग्रपने मनोरंजन के लिए रंग-बिरंगे पक्षी पाल लेता है, उपयोग के लिए गाय ग्रौर घोड़ा पाल लेता है, उसी प्रकार वह

एक स्त्री को भी पालता है तथा पालित पशु-पक्षियों के समान ही वह उसके शरीर और मन पर अधिकार समझता है। हमारे समाज के पुरुष के विवेकहीन जीवन का सजीव चित्र देखना हो तो, विवाह के समय गुलाब-सी खिली हुई, स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिए। उस समय, उस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल सन्तानों की रोगिणी पीली माता में कौन-सी विवशता, कौन-सी रुला देनेवाली करुणा न मिले !"—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 102।

हिन्दू-नारी के विभिन्न स्वरूपों को आपने देखा और परखा है। आप जिन निष्कर्षों पर पहुँची हैं, वे जीवन के निकट अनुभवों से आपको प्राप्त हुए हैं। पुरुष-शासित समाज में प्रताड़ित नारी की वकालत इनसे अधिक तीखे रूप में नहीं हो सकती। महादेवी बड़े सहानुभूतिपूर्ण ढंग से वेश्या के मसले हुए जीवन पर विचार करती हैं। इस सम्बन्ध में उनका एक उद्धरण लीजिए। शैली में भाव-प्रवणता, काव्य का हलका-सा स्पर्श, किन्तु हृदयस्पर्शी भावना का स्वरूप है। तर्क के साथ कविता का समन्वय देखिए :

'यदि स्त्री की ओर देखा जाय, तो निश्चय ही देखनेवाला काँप उठेगा। उसके हृदय में प्यास है, परन्तु उसे भाग्य ने मृग-मरीचिका में निर्वासित कर दिया है। उसे जीवन-भर आदि से अंत तक सौन्दर्य की हाट लगानी पड़ी, अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को कुचलकर आत्मसमर्पण की सारी इच्छाओं का गला घोंटकर रूप का क्रय-विक्रय करना पड़ा और परिणाम में उसके हाथ आया निराश-हताश एकाकी अंत।'

'…जीवन की एक विशेष अवस्था तक संसार उसे चाटुकारी से मुग्ध करता रहता है, झूठी प्रशंसा की मदिरा से उन्मत्त करता रहता है, उसके सौन्दर्य-दीप पर, शलभ-सा मँडराता रहता है, परन्तु, उस मादकता के अंत में, उस बाढ़ के उतार पर, उसकी ओर कोई सहानुभूति-भरे नेत्र नहीं उठाता। उस समय उसका तिरस्कृत स्त्रीत्व, लोलुपों के द्वारा प्रशंसित रूप-वैभव का भग्नावशेष, क्या उसके हृदय को किसी प्रकार की सांत्वना भी दे सकता है ?"—शृंखला की कड़ियाँ, पृष्ठ 111-112।

विधवाओं, वेश्याओं तथा गृह-वधुओं के विषय में महादेवी ने बौद्धिक प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। शैली विवेचनात्मक है। इसमें भाषा संस्कृत-प्रधान अलंकार-युक्त है। उनकी भाषा संयत, परिष्कृत, प्रौढ़ और विशुद्ध होती है। उनके व्यक्तित्व की समस्त गम्भीरता उसमें सर्वत्र व्याप्त रहती है। महादेवी का दुःखवाद भी यत्र-तत्र स्पष्ट हो जाता है—कभी चोट के तीखेपन में, तो कभी उपमाओं की लड़ियों में। उनके संवेदनशील हृदय के दर्शन सभी जगह हो जाते हैं। आत्मा का विद्रोह, पीड़ा का उत्स भी स्पष्ट है। वे जड़ रूढ़ियों और बद्धमूल संस्कारों को तोड़-फोड़ डालना चाहती हैं। उनके सामाजिक लेखों में गम्भीर विवेचना, गवेषणात्मक चिंतन एवं अनुभूति की पुष्ट व्यंजना सर्वदा वर्तमान

रहती है।

महादेवीजी का विवेचनात्मक गद्य उनकी कविता पुस्तकों की भूमिका और कुछ स्फुट लेखों के रूप में उपलब्ध है। इन निबन्धों की शैली पर वैयक्तिकता की छाप है। महादेवी की प्रतिभा में कविता और चित्रकला का समन्वय पाया जाता है। रेखाचित्रों को खींचने में आपको अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। चित्रकार जैसे अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में सूक्ष्मता पर ध्यान रखता है; उसी प्रकार आपके रेखाचित्र सूक्ष्म अनुवीक्षण, चित्रोपमता और अनुभूति में बड़े तीखे बन पड़े हैं। 'यामा' और 'दीपशिखा' में जैसे काव्य और चित्रकला का सन्धि-स्थल है, वैसा ही चित्र-निर्माण 'अतीत के चलचित्र' में है। इन संस्मरणों में शब्दों द्वारा रंग-रेखा की सृष्टि की गई है। चित्र उठकर कविता की सूक्ष्मता और भावना से भर गये हैं। 'नारी की परवशता की समस्या पर आपने केवल कवि की करुणा-विगलित दृष्टि डाली हो, सो बात नहीं है। उन्होंने एक गम्भीर समाज-शास्त्री के रूप में नाना सामाजिक समस्याओं पर चिन्तन किया है। इसलिए नारी की परवशता का मूल कारण क्या है, यह पता लगाने में उन्हें ज्यादा देर न लगती।'

महादेवी की 'स्मृति की रेखाएँ' यथार्थवाद की भित्ति पर खड़ी होती हैं। कला का उच्चतम विकास इन रेखाओं में आता है। अनुभूति और कल्पना का भव्य सम्मिश्रण इनमें मिलता है। भाषा सहज बोधगम्य है। कथन के ढंग तो कहीं-कहीं बड़े अनूठे हैं। भक्तिन की सेवा-भावना और नाम का वर्णन देखिये :

'सेवक-धर्म में हनूमानजी से स्पर्द्धा करनेवाली भक्तिन किसी अंजना की पुत्री न होकर एक अनाम कन्या गोपालिका की कन्या है—नाम है लछमन अर्थात् लक्ष्मी। पर जैसे मेरे नाम की विशालता मेरे लिए दुर्वह है, वैसे ही लक्ष्मी की समृद्धि भक्तिन की कपाल की कुंचित रेखाओं में बँध न सकी।"

साधारण बात को भी मर्मस्पर्शी ढंग से प्रकट किया जाता है। जैसे—"फटी और अनिश्चित रंगवाली दरी और मटमैली दुसूती का बिछौना लिपटा हुआ धरा था। उसके पास रखी हुई एक मैले फटे कपड़े की गठरी उसका एकाकीपन दूर कर रही थी। लाल चिलम का मुकुट पहिने, नारियल का काला हुक्का बाँस के खम्भे में टिका हुआ था।"

वर्णित पात्रों से स्वयं प्रभावित होने के कारण महादेवी की सहानुभूति व्यक्तियों के स्वरूप को चित्र की भाँति शब्दों में बाँधने को आकुल दीख पड़ती है। यह आकुलता कहीं-कहीं पाठक को उबानेवाली और नीरस प्रतीत होती है। ये वर्णन बहुत सूक्ष्म हैं, सूक्ष्मता की अति से लेखिका की गठन दर्शन-शक्ति तो स्पष्ट होती है पर चित्रण बहुत लम्बे हो गये हैं।

महादेवी में एक गुण विशेष प्रभावित करता है। वह है कथन की वक्रता। हर बात को ऐसा घुमा-फिराकर प्रस्तुत किया जाता है कि उसमें आंतरिक और वाह्य भाव-व्यंजना का एक वैचित्र्यपूर्ण सामञ्जस्य दिखाई देता है :

'ऊदी रंग के डोरे से भरे हुए किनारों का हर घुमाव और कोरों में उसी रंग से बने नन्हे फूलों की प्रत्येक पंखुड़ी चीनी नारी की कोमल उँगलियों की कलात्मकता ही नहीं व्यक्त कर रही थी, जीवन के अभाव की एक करुण कहानी भी कह रही थी।'

'पूर्व के कोने में पड़े हुए पुआल का गट्टा और उस पर सिमटी हुई मैली चादर की सिकुड़न कह रही थी कि सोनेवाले ने ठण्ड से गठरी बनकर रात काटी है।"

महादेवी की दृष्टि बड़ी पैनी है। आपने वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों, व्यक्तियों तथा ग्रामीणों की भावनाओं को कुशलता से परखा है। बदरीनाथ की यात्रा में कुलियों को देखकर जो भावना व्यक्त की गई है, उसमें लेखिका अपने वर्णनों को प्रभावपूर्ण और हृदयग्राही बनाने में पूर्ण सचेष्ट है। रूढ़ि के विरोध में जिस शैली का प्रयोग किया गया है, वह गवेषणात्मक और व्यंग्यात्मक है।

वर्णनों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का भी उपयोग किया गया है। ठाकुरी बाबा के गाने के शौक का चित्रण तो देखिए—'कहीं बिरहा गाने का अवसर मिल जाता तो किसी मचान पर बैठकर रात-रात-भर रखवाली करते रहते। कोई बारह-मासा सुननेवाला रसिक मिल जाता, तो उसके बैलों का सानी-पानी करने में भी हेठी न समझते।'

'...पिता के अगाध पांडित्य पर पुलकित और विस्मित होती हुई बड़े मनोयोग के साथ कथा सुनती और कौन-सा पात्र बन जाना उसके लिए अच्छा होगा, इसकी विवेचना करती रहती।'

महादेवीजी की शैली में तीन प्रकार हैं—(1) विवेचनात्मक, जिसमें मननशील साहित्य की उद्भावना है। (2) नारी-समस्या-विषयक समाजकेन्द्रिक, गवेषणात्मक। इसमें तर्क और बुद्धिवाद की उद्भावना-शक्ति प्रकट होती है। व्यंग्य और तीखापन है, कथन की वक्रता है। (3) संस्मरणात्मक—इसमें मानव तथा प्रकृति का चित्रण है, काव्य का हलका स्पर्श है, मनोवैज्ञानिक चित्रण और भावावेग है। महादेवी ने भाव-पद्धति के निदर्शन का एक चमत्कारिक रूप प्रतिष्ठित किया है, लेखिका ने अपने विचार ऐसी भाषा में गूँथने का प्रयास किया है, जो सहज बोधगम्य और सरस है। कवि-हृदय की भावुकता और संवेदनशीलता भाषा में सजग है। हिन्दी गद्य-साहित्य में महादेवी का स्थान काव्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। गद्य-साहित्य को भी उन्होंने स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान की है।

15

महादेवी और प्रकृति

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

['प्रकृति महादेवी के लिए शृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी है, उनकी आत्मा की छाया है, ब्रह्म की छाया है, उसके जीवन का अपरिहार्य अंश है। अपने असीम की ओर बढ़ती हुई महादेवी प्रकृति के कण-कण से परिचत होती हुई आगे बढ़ी हैं और सबका क्रन्दन पहचानकर आश्वस्त-सी हो गई हैं। उनकी दृष्टि गहरी भी है और विशाल भी।']

हम जिसे छायावादी युग कहते हैं उसकी सबसे बड़ी विशेषता उसमें प्रकृति का ऐसा समावेश है, जो कई शताब्दियों पश्चात् दिखाई दिया। इसीलिए कुछ आलोचकों ने भावनाओं के लिए प्रकृति से लिये गए प्रतीकों की बहुलता छायावाद में देखी तो वे छायावाद को प्रतीकों द्वारा व्यंजना की वस्तु हा मानकर चलने लगे। इससे और कुछ पता चले या न चले, इतना अवश्य है कि छायावाद में प्रकृति ने कवि की अभिव्यक्ति के लिए पग-पग पर सहायता की है। प्रकृति को अलग कर लिया जाए तो छायावाद पंगु हो जाता है।

प्रश्न यह उठता है कि छायावाद में प्रकृति का यह प्राधान्य क्यों है। हमारी सम्मति में इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि वैदिक काल से लेकर संस्कृत-साहित्य के पूर्वकाल तक जो प्रकृति परम आकर्षणपूर्ण व्यक्तित्व लिये हुए थी वह उत्तरकालीन संस्कृत-साहित्य और उसके परिणामस्वरूप हिन्दी-साहित्य में रीति-काल तक निर्वासित-सी रही। काव्य में उसका प्रयोग या तो उपदेशात्मकता के रूप में हुआ या आलंकारिक रूप में। इन दोनों रूपों में वह व्यक्तित्वहीन रही। आधुनिक युग में अंग्रेजी-साहित्य में स्वतंत्र रूप से प्रकृति का प्रयोग होने से अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम द्वारा हमारे यहाँ के कवियों पर उसका तो प्रभाव पड़ा ही, साथ ही वैदिक तथा संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से भी उस ओर कवियों का ध्यान गया और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप प्रकृति भी रूढ़िमुक्त हो गई। दूसरी बात यह है कि छायावादी कवि का कोमल और कल्पनाशील हृदय इस लोक के व्यवहार से संतुष्ट नहीं हो सका। उनकी असाधारण मानसिक स्थिति के कारण उन्हें अपने हृदय की बात समझनेवाला कोई हाड़-मांस का जीव नहीं मिला। प्रसाद, निराला, पन्त

ग्रौर महादेवी चारों ही छायावाद के महान समर्थक हैं, इसीलिए कल्पना-लोक निर्माण की ग्रोर प्रवृत्त हुए। एकाकी जीवन में सामाजिक प्राणी जी बहलाने के लिए पशु-पक्षी भी पालते देखे गए हैं ग्रौर इस प्रकार ग्रपने संतोष के लिए उपक्रम करते पाये गए हैं। यह साधारण मनुष्यों की बात है। कवि जैसा ग्रसाधारण व्यक्ति तो प्रकृति के कण-कण में ग्रपनापन ग्रनुभव करने लगा। पंत ने तो छाया तक से बाँह खोलकर गले लगने ग्रौर प्राणों को शीतल करने की भीख माँगी है। यह मनोवैज्ञानिक कारण है। छायावादी कवि ने ग्रपने हृदय की व्यथा-कथा कहने के लिए ही प्रकृति को पुनः प्रतिष्ठित किया। कारण, वह जानता था कि उसका सजातीय सम्भवतः उसके प्रति सहानुभूति नहीं भी दिखाए तब इस उपेक्षित जड़-प्रकृति को ही क्यों न ग्रपने लिये चेतन कर लिया जाय ग्रौर यह ठीक भी है। प्रकृति के भीतर भी तो वही सत्ता कार्य करती है, उसमें भी तो वैसी ही चेतना है, वैदिक ग्रौर संस्कृत कवि ने भी तो उसे सजीव ग्रौर चेतनायुक्त माना ही है, तब फिर हिन्दी कविता ग्रपने नये युग में क्यों न प्रकृति को ग्रपना कण्ठहार बनाती। यह स्वाभाविक था। इस प्रकार चाहे परिस्थिति की प्रतिक्रिया समझा जाए या मनोवैज्ञानिक कारण, छायावाद में प्रकृति की महत्त्व-स्थापना ग्रवश्यम्भावी हो गई।

महादेवी वर्मा ने ग्रपने काव्य में प्रकृति को उचित स्थान दिया है। उनकी विराट् तक पहुँचने की साधना के मार्ग में प्रकृति सदैव उनके साथ रही है। उन्होंने छायावाद ग्रौर प्रकृति के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है :

"छायावाद ने मनुष्य के हृदय ग्रौर प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला ग्रा रहा था ग्रौर जिसके कारण मनुष्य को ग्रपने दुःख में प्रकृति उदास ग्रौर सुख में पुलकित जान पड़ती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप ग्रादि में भरे जल की एकरूपता के समान ग्रनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, ग्रतः ग्रब मनुष्य के ग्रश्रु, मेघ के जलकण ग्रौर पृथ्वी के ग्रोस-बिन्दुग्रों का एक ही कारण, एक ही मूल्य है। प्रकृति के लघु-तृण ग्रौर महान वृक्ष, कोमल कलियाँ ग्रौर कठोर शिलाएँ, ग्रस्थिर जल ग्रौर स्थिर पर्वत, निविड़ ग्रंधकार ग्रौर उज्ज्वल विद्युत्-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चंचलता-निश्चलता ग्रौर मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है। जब प्रकृति की ग्रनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी ग्रसीम चेतन ग्रौर दूसरा उसके समीप हृदय में समाया हुग्रा था, तब प्रकृति का एक-एक ग्रंश एक ग्रलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।"[1]

इससे स्पष्ट है कि महादेवीजी एक ग्रोर प्रकृति में उस विराट की छाया देखती हैं ग्रौर दूसरी ग्रोर ग्रपनी छाया भी देखती हैं। महादेवी ही नहीं, हिन्दी के

1. 'यामा', 'ग्रपनी बात'. पृष्ठ 6।

छायावाद के सभी प्रमुख कवियों ने ऐसा ही किया है। प्रकृति इस प्रकार कवि के हृदय से भिन्न नहीं रह जाती, वह उसी के जीवन का अंश बनकर सम्मुख आती है। इसे यदि हम चाहें तो प्रकृति से तादात्म्य की संज्ञा दे सकते हैं। महादेवीजी के काव्य में यह प्रवृत्ति विशेषतः मिलती है। एक कविता में वे संध्या से अपनी तुलना करती हुई कहती हैं—

"प्रिय सान्ध्य गगन, मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया-सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रंगीले घन
साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर गहन
संध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन।"[1]

अर्थात् संध्या का आकाश ही मेरा जीवन है। धूमिल क्षितिज वैराग्य है, लालिमामय सूर्य मेरा सुहाग है, संध्या की छाया मेरी आकर्षणरहित काया है, रंग-बिरंगे बादल स्मृतिमय स्वप्न हैं, सुनहलापन मेरी साधें हैं, गहन अंधकार उमड़ता हुआ विषाद और संध्या का आकाश से मूक मिलन मेरी अश्रुपूर्ण हँसती हुई दृष्टि है। पूरी कविता में अपने जीवन की छाया संध्या के आकाश में प्रतिबिम्बित है।

उसी प्रकार 'मैं बनी मधुमास आली',[2] 'मैं नीर भरी दुख की बदली'[3], 'विरह का जलजात जीवन'[4], 'रात-सी नीरव व्यथा तम-सी अगम तेरी कहानी'[5] आदि कविताओं में उन्होंने प्रकृति से तादात्म्य किया है। कभी-कभी वे तादात्म्य के लिए विरोधी तत्त्वों को लेकर भी अपना काम चलाती हैं। ऐसी कविताओं में वे अपनी विशालता और अभावहीनता का परिचय देती हैं। उदाहरण के लिए नीचे की पंक्तियाँ देखिए—

"जग करुण करुण, मैं मधुर-मधुर
दोनों मिलकर देते रजकण
चिर करुण मधुर सुन्दुर-पुन्दर
जग पतझर का नीरव रसाल,

---

1. यामा, पृष्ठ 1
2. वही, पृष्ठ 147
3. वही, पृष्ठ 211
4. वही, पृष्ठ 130
5. दीपशिखा, पृष्ठ 36

पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डाल-डाल
सुन फूल-फूल उठते पल-पल
सुख-दुख मंजरियों के अंकुर।"

प्रकृति से अधिक सुखी और वैभवशालिनी कवि की आत्मा किस प्रकार प्रकृति को सौन्दर्य और शृंगार से युक्त बनाती है, यह इस कविता में द्रष्टव्य है।

महादेवीजी ने दूसरे रूप में प्रकृति का उपयोग उसका मानवीकरण करके किया है। यह प्रवृत्ति अंग्रेज़ी की देन है, ऐसा माना जाता है, पर महादेवीजी ने इसका खण्डन करते हुए वेदों में उषा, मरुत्, अग्नि आदि के सम्बन्ध में लिखी गई ऋचाओं में मानवीकरण की प्रवृत्ति देखकर उसे अपनी ही वस्तु माना है। जो कुछ भी हो, मानवीकरण महादेवीजी के प्रकृति-वर्णन की दूसरी विशेषता है। यों तो प्रकृति सजीव है और स्थान-स्थान पर उसके ऐसे चित्र मिल सकते हैं, परन्तु कुछ कविताएँ तो ऐसी हैं, जो हिन्दी की निधि कही जा सकती हैं। नीचे दो चित्र दिये जाते हैं। एक चित्र तो वसन्त की मधुरिमामयी रात्रि का है और दूसरा वर्षा का है। दोनों में नारी के दो रूपों की भव्य झाँकी है :

"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसन्त रजनी!
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीश फूल शशि का कर नूतन,
रश्मि वलय, सितधन अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी
पुलकती आ वसन्त रजनी।"[1]

× × ×

"रूपसि तेरा घन-केश-पाश!
श्यामल श्यामल, कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश।
सौरभ भीना, झीना गीला,
लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल;
चल अंचल से झर-झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण फूल;
दीपक से देता बार-बार
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास

1. यामा, पृष्ठ 122

रूपसि तेरा घन-केश-पाश।"[1]

महादेवी के मानवीकरण में प्राकृतिक वस्तुएँ ही नहीं, कभी-कभी विराट प्रकृति भी बँध जाती है। महादेवीजी ने एक कविता में उस विराट सत्ता को—परम तत्त्व को अप्सरा का रूप दिया है। उसमें प्रकाश और अंधकार को उसका सफेद और काला वस्त्र, सागर-गर्जन को मंजीरों की रुनझुन, झंझा को अलक जाल, मेघों की ध्वनि को किंकिणी का स्वर, रवि-शशि को चंचल कुण्डल, तारों को माँग के अमोल मोती, चपला को विभ्रम, इन्द्रधनुष को स्मिति, और हिमकणों को स्वेद बिन्दु का रूप दिया है :

"लय गीत मदिर, गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
आलोक तिमिर सित असित चीर
सागर-गर्जन रुनझुन मँजीर
उड़ता झंझा में अलक जाल
मेघों में मुखरित किंकिण स्वर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर
रवि शशि तेरे अवतंस लोल,
सीमन्त जटित तारक अमोल,
चपला विभ्रम, स्मिति इन्द्रधनुष,
हिम कण बन झरते स्वेद निकर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।"[2]

इस मानवीकरण में जैसे विराट प्रकृति के ही अंग रूप प्रकृति के समस्त उपादान बताये गए हैं, उसी प्रकार कहीं-कहीं उन्होंने अपना अंग भी प्रकृति को कहा है :

"मेरी निश्वासों से बहती रहती झंझावात,
आँसू में दिन-रात प्रलय के घन करते उत्पात
कसक में विद्युत् अन्तर्धान।"[3]

इससे पता चलता है कि प्रकृति उनके आराध्य का भी प्रतिबिम्ब है और उनका भी। ऐसी स्थिति में वे अपने प्रियतम से कभी भिन्न कैसे रह सकती हैं? इस अभिन्नता के अनुभव के कारण ही वे कभी-कभी प्रकृति के उपकरणों से शृंगार करके अपने को प्रियतम के प्रति समर्पित करने की तैयारी करती दिखाई देती हैं :

'रंजित कर दे यह शिथिल चरण,
ले नव अशोक का अरुण राग।

---

1. यामा, पृष्ठ 132
2. वही, पृष्ठ 180
3. वही, पृष्ठ 176

मेरे मण्डन को आज मधुर
ला रजनी गंधा का पराग ।।
यूथी की मीलित कलियों से अलि दे मेरी कवरी सँवार ।
पाटल के सुरभित रंगों से,
रंग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल
गुँथ दे रशना में अलि गुंजन
से पूरित झरते बकुल-फूल
रजनी से अंजन माँग सजनि दे मेरे अलसित नयन सार ।'[1]

उनके रहस्यवाद की कोमलता का कारण यही प्रकृति है । 'लाए कौन संदेश नए घन' या 'मुसकाता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ।' तथा ऐसे प्रकृति की सुषमा उन्हें प्रियतम का संदेश देने वाली जान पड़ती है । परन्तु कभी-कभी प्रकृति उन्हें उपदेश देती हुई भी दिखाई देती है । 'आँसुओं के देश में' शीर्षक गीत[2] में झरता हुआ सुमन, निश्चल तृण, बेसुध कोकिल और प्यासी चातकी अपनी मुद्रा और मानसिक स्थिति से उस जीवन की व्यथा का संकेत कर जाते हैं, जो दिवस भी अपने अमिट संदेश में नहीं कह पाया था :

'यह बताया झर सुमन ने,
यह बताया मूक तृण ने,
वह कहा बेसुध पिकी ने
चिर पिपासित चातकी ने
सत्य जो दिव कह न पाया था, अमिट संदेश में
आँसुओं के देश में ?'

यहाँ प्रकृति के उपमानों के नष्ट होने से जीवन के नष्ट होने का आभास मिलता है। इसे प्राक्रतिक दर्शन कहते हैं । कवि पंत की 'परिवर्तन' नामक प्रसिद्ध कविता में भी यही दर्शन है । लेकिन महादेवी ने ऐसा कम ही किया है । वे प्रकृति को अपनी सजीव संगिनी, जीवन की अंग समझती हैं । ऐसे दृष्टिकोण वाले कवि को प्रकृति बराबर नाश का सन्देश नहीं दे सकती । यह ध्रुव सत्य है ।

महादेवी के अधिकांश प्रकृति के चित्र उनके अपने भावों के ही प्रतिबिम्ब हैं । परन्तु कहीं-कहीं स्वतन्त्र दृश्य-चित्रण भी उन्होंने किया है । 'हिमालय' के निम्नांकित चित्रण में किस प्रकार रूप और रंग की सजीवता है, यह देखते ही बनता है—

"तू भू के प्राणों का शतदल ।
सित क्षीर-फेन हीरक रज से
जो हुए चाँदनी में निर्मित

1. यामा, पृष्ठ 195
2. दीपशिखा, कविता 17

पारद की रेखाओं में चिर
चाँदी के रंगों से चित्रित
खुले रहे दलों पर दल झलमल
सीपी से नीलम से द्युतिमय
कुछ पिंग अरुण कुछ सित श्यामल
कुछ सुख चंचल कुछ दुख मंथर
फैले तम से कुछ तूल-विरल,
मँडराते शत-शत अलि-बादल।"[1]

आलंकारिक रूप में महादेवीजी ने अन्य कवियों की भाँति ही उपमान ग्रहण किये हैं। उनके उपमान अधिकतर वसंत और पावस दो ऋतुओं से लिए गये हैं। साधना-पथ पर बढ़ते हुए साधक की आँखों में आँसू और होंठों पर मुस्कान दो ही संबल रूप पदार्थ होते हैं। पावस आँसू से सम्बद्ध है और वसन्त मुस्कान से। रंग भी उज्ज्वल और काला विशेष रूप से आये हैं। इन ऋतुओं से सम्बन्धित पक्षियों में भ्रमर, चातक, मयूर, कोकिल, चकोर आदि विशेष रूप से आए हैं। फूलों में कमल, हरसिंगार और गुलाब का उल्लेख बहुत हुआ है। वैसे नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा इन क्रमशः प्रकाशित ग्रन्थों में कोई ऐसा समय नहीं, जिसका वर्णन उनकी कविता में न हो। सागर, पृथ्वी और आकाश तीनों के उपकरणों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं। वसन्त और पावस में इनकी बदलती हुई छटा का दिग्दर्शन उन्होंने बार-बार कराया है। 'दीपशिखा' में पतंग प्राणों के तिल-तिल कर जलने के लिए आतुर दीख पड़ता है। प्रेम के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले के प्रतीक के लिए ही वह बार-बार आया है। दोपहरी का एक भी चित्र महादेवीजी के काव्य में नहीं है। प्रभात, संध्या और रात, तीन के ही चित्र या तीन के ही उपकरण अनेक भावों की व्यंजना के लिए आये हैं। इन दृश्यों के अंकन या इनके उपकरणों को भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में महादेवी जी ने वैभव-विलास की ही दृष्टि रखी है। जैसाकि श्री विश्वम्भर मानव ने कहा है—"हमारी साधिका ब्रह्म की सुहागिन है। उस महान ऐश्वर्यशाली की प्रेमिका के लिए चाँदी, सोना, मोती, प्रवाल, नीलम, पुखराज सामान्य वस्तुएँ न होंगी तो किसके लिए होंगी।" इन वस्तुओं के सहारे प्रकृति के उपकरणों को उन्होंने और भी सुषमामय बना दिया है।

प्रकृति महादेवी के लिए शृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करनेवाली सहचरी है, उसकी आत्मा की छाया है, ब्रह्म की छाया है, उसके जीवन का अपरिहार्य अंश है। अपने असीम की ओर बढ़ती हुई महादेवी प्रकृति के कण-कण से परिचित होती हुई आगे बढ़ी हैं और सबका क्रन्दन पहचानकर आश्वस्त-सी हो

1. दीपशिखा, कविता 144

गई हैं।[1] उनकी दृष्टि गहरी भी है और विशाल भी। इसका कारण स्वयं उन्होंने बता दिया है, जो उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए किसी प्रकार भी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं समझता :

"जड़ चेतन के बिना विकासशून्य है और चेतन जड़ के बिना आकाशशून्य। इन दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही जीवन है। चाहे कविता किसी भाषा में हो, चाहे किसी 'वाद' के अंतर्गत, चाहे उसमें पार्थिव विश्व की अभिव्यक्ति हो, चाहे अपार्थिव की और चाहे दोनों के अविच्छिन्न सम्बन्ध की, उसके अमूल्य होने का रहस्य यही है कि वह मनुष्य के हृदय से प्रवाहित हुई है।"[2]

आरम्भ में जैसे जीवन के प्रति उनकी दृष्टि विस्मय-भरी थी वैसी ही प्रकृति के प्रति भी थी। वे सीधे-सादे दृश्य-चित्रण में ही संतुष्ट हो जाती थीं अथवा प्रकृति की सुख-दुखमयी स्थिति से प्रसन्न या विषादमग्न हो जाती थीं। उनकी वृत्ति तटस्थ दर्शक की थी, लेकिन धीरे-धीरे वे उसके भीतर डूबती गई हैं और प्रकृति उनकी अनुभूति का अंग बन गई है। यही कारण है कि 'सांध्य-गीत' तथा 'दीपशिखा' के अधिकांश गीतों में प्रकृति अनुभूति का अंग बनकर ही आई है।

दुख और निराशा, विरह और विकलता, त्याग और सहिष्णुता उनके जीवन में बौद्ध प्रभाव से आए हैं, जिनके लिए प्रकृति से भी वे प्रेरणा पाती हैं। दुःख के सुखद परिणाम की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में कितनी कुशलता से हुई है—

'जब मेरे शूलों पर शत-शत,
मधु के युग होंगे अवलम्बित,
मेरे क्रन्दन से आतप के
दिन सावन हरियाले होंगे
तब क्षण-क्षण मधु प्याले होंगे?'[3]

अपने दुख में भी, अभाव में भी वे कोई ऐसी बात नहीं देखतीं, जिसके लिए वे संतापित हों। वे अपनी हीनता में भी केवल यही वरदान चाहती हैं :

'घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!
जलधि-मानस से नव जन्म पा
सुभग तेरे ही दृग व्योम में,
सजल श्यामल मंथर मूक-सा
तरल अश्रु विनिर्मित गात ले

---

1. महादेवी की रहस्य-साधना, पृष्ठ 76
अलि मैं कण-कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली
'दीपशिखा', कविता 51
2. यामा, पृष्ठ 11
3. वही, पृष्ठ 226

नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !"[1]

इस प्रकार प्रकृति ने उनके भावपक्ष का ही नहीं, कलापक्ष का भी शृंगार किया। प्रतीकों द्वारा व्यंजना तो और कवियों ने भी की है, पर उसे अपने जीवन-दर्शन—ससीम का असीम से तादात्म्य—के लिए प्रकृति को माध्यम बनाना उनकी अपनी विशेषता है। उनके काव्य में प्रकृति इतनी घुल-मिल गई है कि उसे विश्लेषण के लिए अलग करके देखना भी कठिन है। हिन्दी के वर्तमान कवियों में महादेवीजी ने प्रकृति के द्वारा अपनी भावनाओं को परिपूत अभिव्यक्ति दी है और विराट् की प्रेमानुभूति के लिए उनके व्यक्तित्व को विशालता तथा भव्यता दी है। यही उनके लिए प्रकृति की सबसे बड़ी देन है।

---

1. यामा, पृष्ठ 143

16

महादेवी वर्मा की कविता तथा चित्र-कला

प्रभाकर माचवे

[‘महादेवी की कविता में सर्वत्र एकस्वरता, एकरसता मिलती है, जो कला की दृष्टि से रसहानिपरक है।

उनमें आत्मपीड़न अत्यधिक है यानी कहीं भी उन्होंने अपने-आपको उभारकर नहीं रखा है। और वैसे उन्होंने अपने सिवा और किसी के भावों की बात भी कहाँ की है ?

अपनी अमर विचार-सम्पदा के कारण महादेवी की प्रतिभा ने ललित कला के इन रूपों को स्थूल चक्षुरिन्द्रिय को आनन्द देनेवाली चित्रकला तथा सूक्ष्म भाव-जगत् को छूनेवाली कविता को एकाकार कर दिया है। वर्ण-वर्ण में पंक्ति बन गई है, रंग रेखाकार हो उठे हैं। टेकनीक की बारीकियों के अभाव में भी उनके चित्र अपने-आपमें उद्गार हैं।’]

‘Non voglio quello che esce da te, ma sol voglio te,
O dolce Amore.’

(मैं तुझसे मिलनेवाली चीज़ नहीं चाहती, परन्तु मैं तुझे ही चाहती हूँ, ओ मधुरतम प्रिय !)—संत अगस्तीन

‘देहभाव सर्वजाय ।। तेव्हाँ विदेही सुख होय ।।1।।
तया निद्रे जे पहुडले ।। भव जागृति नाहीं आले ।।2।।
ऐसी विश्रांति साधली ।। आनंद-कला संचरली ।।3।।
त्या एकीं एक होतां ।। दासी जनी कैंची आतां ।।4।।

(देह-भाव सब विलम जाता है। तभी विदेह दशा में सुख होता है। उस निद्रा में जो एक बार सो गये। वे इस भाव-जागृति में नहीं आए। उन्हें ऐसी विश्रांति मिली कि आनन्द कला संचरित हो गई। उस एक के साथ एक हो जाने पर अब जनाबाई दासी कहाँ रह गई ?)

नामदेव की दासी जनाबाई के आर्त्त अभंगों का मराठी में वही स्थान है जो हिन्दी में और गुजराती में मीरा के पदों का। वैसे तो विश्व-साहित्य में ही संख्या और गुण के परिमाण में लेखिकाएँ और कवयित्रियाँ कम ही हुई हैं; परन्तु जो भी

हुई उन्होंने सदा मुक्तक गीति-काव्य को ही अपनाया। गार्गी वाचकनवी हो या स्ट्रावो, मुक्तावाई हो या हला, घोषा हो या शीलाभट्टारिका, दयावाई हो या ताज, सुभद्राकुमारी चौहान हो या सरोजिनी नायडू, क्रिस्चिना रोजेटी हो या एला वीलर विलकाक्स, एलिजावेथ ब्राउनिंग हो या तोरूदत्त किसी कवयित्री ने कोई महाकाव्य लिखा हो ऐसा उल्लेख साहित्य के इतिहास में नहीं मिलता। यानी नारी की काव्य-प्रतिभा ही गीति-काव्य-परक है यह स्पष्ट है।

महादेवी के गीति-काव्य के कला-पक्ष की समीक्षा से पहले महादेवी सम्बन्धी दो-तीन भ्रांतियों का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है :

एक, महादेवी इस युग की मीरा हैं।

दो, महादेवी रहस्यवादिनी हैं।

तीन, महादेवी बौद्ध-दर्शनानुयायिनी अर्थात् 'दुखवाद या शून्यवाद' की समर्थिका हैं।

समीक्षक-गण कुछ भी कहते रहे हों, अभी मुझे 'साहित्य-संदेश' में एक अनेक-उपाधि-विभूषिता भद्र महिला का लेख पढ़ने को मिला, जिसका शीर्षक भी उतना ही विचित्र था 'श्री महादेवीजी की आरती और मन-मन्दिर की भावना' (देखिए, संख्या 12, अंक 8)। उस लेख का आरम्भ और अन्त इस प्रकार से है :

"श्री महादेवीजी आधुनिक युग की मीरा हैं, इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है। उनका छायावादी दृष्टिकोण रहस्यात्मक है। वे ब्रह्मपूजन को मानती हैं, लेकिन उनकी भावना और पूजन एक अनूठे ढंग का है। प्रस्तुत काव्य उनकी पूजन की भावना व्यक्त करता है।...

इस प्रकार आरती और मन-मन्दिर की भावना को लेकर श्री महादेवीजी ने जीव और ब्रह्म की ऐक्यता को स्थापित करने का कौशल बतलाया है। साधना-वस्था में साधक के हृदय में, जगत् की रागात्मक वृत्तियों का प्रलोभन, और ब्रह्म प्राप्ति की निर्मोह वृत्ति के बीच में एक बड़ा संघर्ष उत्पन्न होता है, जिसका सुन्दर वर्णन गूढ़ भावों में किया गया है।"

साहित्य-समीक्षा के लिए परीक्षार्थियों में प्रमाण मानी जाने वाली एक प्रतिष्ठित पत्रिका के बीसवीं सदी के मध्य भाग में छपे इस लेख में महादेवीजी की आरती उतारने की लेखिका-बहन की भावना का पूरा मूल्य जानते हुए भी मुझे कहने दीजिए कि इस भ्रांति का पोषण हिन्दी के अच्छे-अच्छे मान्य समीक्षकों ने भी किया है।

एक और लेख देखिए। प्रो० रघुवीरप्रसाद सिंह ने तो स्वयं महादेवीजी के शब्द उद्धत कर उन्हें सगुणोपासक (कृष्ण की उपासिका) भक्तिन बना डाला है—अपने 'मीरा और महादेवी' लेख में। उस लेख का आवश्यक अंश उद्धृत करता हूँ।

"मीरा और महादेवी हिन्दी-साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान् कवयित्रियाँ हैं। जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक-दूसरे से

अभिन्न हैं। मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान् के भावमय भजन का पूरा प्रभाव पड़ा है। महादेवी का कथन है—'एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधना-पूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय, पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा, आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद रचना आरम्भ की थी।' मीरा के विषय में तो यह जनश्रुति प्रसिद्ध ही है कि वह बचपन में ठाकुरजी पर अपना तन-मन वार चुकी थीं।

"महादेवी रूप की आराधिका नहीं अरूप की साधिका हैं। इसका कारण देशकालगत प्रभाव ही हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के कारण देश की चिंताधारा पर अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा और इससे छायावाद युग भी अनुप्राणित हुआ। महादेवी की कविताओं में भी उसी दार्शनिक चिंतन का ब्रह्म उनके भावों का आलम्बन बना जिससे उन्होंने युग-युग का सम्बन्ध स्थापित कर अपना करुण-मधुर भाव काव्य के माध्यम से अर्पित किया।"

धन्य हो विवेकानन्द-रामकृष्ण ! तुमने बचा लिया। नहीं तो उक्त लेखक के मतानुसार महादेवीजी भी वृन्दावन के किसी मंदिर में तंबूरा लिए भजन गाती मिलतीं। आगे यही लेखक लिखते हैं कि "महादेवी अपना प्रेम दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करती हैं। लेकिन उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में उनका प्रेम-भाव बड़े ही सुस्पष्ट रूप से व्यंजित हुआ है। "महादेवी को भी प्रणय-संकेत स्वप्न में ही मिलता है।...मीरा की रति-भावना में कोई दुख नहीं है। उनकी भगवद्भक्ति स्पष्ट ही कान्तासक्ति है।...मीरा की प्रेम-भावना उबलते हुए दूध की तरह बाहर छलक-छलक पड़ती है। मीरा की इस आकुल तन्मयता पर महाप्रभु चैतन्य की कीर्तन-प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा है।" चन्द्रवली पांडेय का कथन है—"मीरा की पूजा-पद्धति कुछ वल्लभकुल से भले ही प्रभावित हुई हो, किंतु उनकी कीर्तन-प्रणाली तो सर्वथा गौरांग महाप्रभु के ही अनुकूल थी।" और आगे चलकर इस लेखक ने मीरा और महादेवी के कुछ अच्छे तुलनात्मक अंश भी दिए हैं यथा—

"महादेवी का दुखवाद उन्हें वैयक्तिक सुख-दुख से आगे बढ़कर लोक की ओर उन्मुख करता है। लेकिन भोली-भाली मीरा अपनी प्रणय-भावना को महादेवी की तरह बौद्धिक संगम से नहीं बाँध सकती थी।"

कुछ उदाहरण लीजिए—

'बरसै बदरिया सावन की,
सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की।।'

—मीरा

'मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन।
रोम-रोम में होता री सखि
एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से बन-फूल बन गए
जितने प्राणों के छाले हैं।'

—महादेवी

'सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हेंल चढ़ि-चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी
कब आवैं महाराज।
दादुर मोर पपइया बोले
कोइल मधुरे साज।
उमग्यौ इंद्र चहूँ दिसि बरसै
दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा-नवा धरिया
इन्द्र मिलण के काज।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
वेगि मिलो महाराज।'

—मीरा

'लाये कौन सँदेश नये घन
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन!
जीवन जलकण से निर्मित सा
चाह इंद्र धनु से चित्रित सा
सजल मेघ-सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा

तुम विद्युत् बन आओ पाहुन
मेरी पलकों पर पग धर-धर।'

—महादेवी

"सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पन्थ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।'

—मीरा

'पथ देख बिता दी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं।'

—महादेवी

'पपइया रे पिय की वाणी न बोल।'

—मीरा

'मुखर-पिक हौले-हौले बोल।'

—महादेवी

'पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय।
कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन है झर लाय॥'

—मीरा

'कैसे सँदेस प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती।'

—महादेवी

असल में ऐसी तुलनाओं के मूल में सबसे बड़ी भूल यह है कि जो दो कवयित्रियाँ या साहित्यकार बहुत अलग-अलग देशकाल-परिस्थितियों के परिपार्श्व में बनते हैं, उनमें समता-विषमता खोजना ही व्यर्थ है; क्योंकि बहुत-सी बातें तो उनके युग के प्रभावरूप में रहती हैं। मीरा आज पुनः जीवित होतीं तो वे महादेवी ही बनतीं या और कुछ यह कहना उतना ही कठिन है जितना महादेवी जी के काव्य में उपनिषद् और वेदान्त के ब्रह्म-तत्त्व को खोजने का निरर्थक यत्न करना।

इसी चर्चा से स्पष्ट हो गया कि महादेवी की रचनाओं के विषय में जो दूसरी और तीसरी बड़ी मान्यताएँ हैं कि वे रहस्यवादिनी हैं (अतः निर्गुण संतों की या बौद्ध-विज्ञानवादियों की निकटवर्तिनी हैं) और बौद्ध-दर्शन के प्रभाव से दुःखवाद की निवृत्ति करनेवाली कवयित्री हैं—यह दोनों भी उतनी ही अयथार्थ हैं जितनी कुछ आलोचकों द्वारा महादेवी में फ्रायड के मानदंड से कुंठित वर्जनाओं और इच्छा-पूर्ति का सरंजाम खोज निकालना।

काव्य में रहस्यवाद की स्थिति को समझने के लिए आवश्यक है कि कुछ मूलभूत तत्त्वों से परिचित हो जाएँ। केवल कुछ बाह्य भाव-साम्य तो सभी रहस्योन्मुखी कवियों में मिल जाता है, पर क्या वह पर्याप्त है ?

जैसे, महादेवी ने कहा है :

"मेरे प्रिय को भाता है
तम के पर्दे में आना
ओ नभ की दीपावालियो
तुम चुपके से बुझ जाना।"

यह भाव और 'शबे-विसाल में क्या काम जलने वालों का' कहकर सितारों को गुल करनेवाले उर्दू कवि का या अंग्रेजी के 'मेटाफिजिकल पोएट (अध्यात्मिक कवि) वॉगैन का—

"O for that Night! where I in him
Might live invisible and dim."

समान हैं तो इससे क्या ? या रवीन्द्रनाथ ने गीतांजली के आरम्भिक गीत में कहा है कि "मैं तुम्हारे हाथों में की वह वंशी हूँ जिसे भर-भरकर तुम बार-बार रिक्त कर देते थे।" या महादेवी ने भी अपने एक गीत में 'दीपशिखा' में यह वंशी की रूपक सार्थक बनाया है, तो क्या हम यह कहें कि दोनों ने मूलतः जलालुद्दीन रूमी नामक ईरानी सूफी से यह कल्पना ली है।

जिसने लिखा था :

"I rest a flute laid on thy lips,
A lute, I on thy breast recline
Breathe deep in me that I may sigh;
Yet strike my strings, and tears shall shine."

और इस प्रकार का बहुत-सा समान प्रतीक-संयोजन या संकेत-विधान प्रायः सभी रहस्यवादियों में मिल जाता है। परन्तु क्या केवल उस प्रकार की शब्दावली से कोई भी कवि रहस्यवादी हो जा सकता है ?

'सांध्य-गीत' में' महादेवीजी ने लिखा है : "शलभ ! मैं शापमय वर हूँ !" और दीपशिखा में 'अग्नि पंथी मैं तुझे दूँ कौन-सा वरदान !' तो इस प्रकार के शमा-परवाने या दीप-पतंग के उल्लेख अन्य कवयित्रियों में भी मिलते हैं।

1765 ई० की उर्दू-कवयित्री 'शोख' ने भी लिखा था :

"शमा की तरह कौन ऐ जाने !
जिसके दिल की लगी हो, सो जाने !"

या

"अब छाया है, मेह बरसता है,
जल्द आजा कि जी तरसता है !"

(उर्दू कवयित्रियाँ, दोआब : शमशेर बहादुरसिंह, पृष्ठ 156)

और मराठी की नामदेव की समकालीना जनी ने भी कहा :

"नाद पड़े कानीं ।। मृग पैज घाली प्राणी ।।
आवडी अन्तरीं ।। गज मेला पड़े गारीं ।।
चोख पाहे अंग ।। दीपें नाडला पतंग ।।
गोडी रसग का ।। मच्छ अड़करन गष्ठा ।।
गंधें अली नेला ।। मृणे जनी नोचि मेला ।।"

(यानी—नाद कानों पर आया, मृग ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। प्रेम से गज कर्दम में धँसता गया, अपनी रुचि से मर गया। सुन्दर अंग देखा और दीपक में पतंग जाकर अटक गया। मीठा काँटे के किनारे देखकर मछली वंशी में फँस गई। गंध अलि को ले गया। जनी कहती है वहीं भाग।)

परन्तु कुछ कवियों के संकेत-विधान में रहस्यवादियों की प्रिय शब्दावली आ जाने मात्र से क्या वे रहस्यवादी हो जाते हैं?

रहस्यवाद की भारतीय स्थिति को समझाने का न तो यह स्थल है, न अवसर। परन्तु मैं एलबर्ट श्वाइट्जर के 'इण्डियन थॉट एण्ड इट्स डेवलपमेंट' में पृष्ठ 263 से आगे भारतीय रहस्यवाद की विकासावस्थाओं का स्पष्टीकरण कर देना चाहता हूँ। आरम्भिक कुतूहलमय रहस्यवाद प्रकृति की विराट् शक्तियों के प्रति भय-विस्मयपूर्ण (वैदिक-औपनिषदिक); मध्ययुगीन नैतिक रहस्यवाद और उसकी तांत्रिक अराजकता तथा उच्छृङ्खल सर्व-नियम-नकार में परिणति; राममोहनराय के 'प्रकृति में परमात्मतत्त्व' देखने के नये दर्शन के पश्चात् रवीन्द्रादि का सर्वास्तिवादी रहस्यवाद—इस विकास-रेखा में बहुत-से रहस्य खिले हैं। दर्शन की मोटी-मोटी बातें जिन्हें ज्ञात हों, वे जानते हैं कि परमतत्त्व, ईश्वर, जीवात्मा और जड़ जगत् के विषय में भारतीय दार्शनिक चिंताधाराओं का विभिन्न दृष्टिकोण रहा है।

इस मत-मतान्तर के झमेले में रहस्यवाद का इतना आसानी से निरूपण करना कि महादेवीजी ब्रह्म की उपासिका हैं, मुझे यह कहने की हिम्मत नहीं होती। उन्हीं के शब्दों में कला के विषय में उनके विचार जानने से यही प्रतीत होता है कि वे छायावादी (यानी रोमैंटिक) कवयित्री हैं। परन्तु अन्य छायावादियों की भाँति निरे सौन्दर्य-शोध (यथा पन्त) या आनन्द-बोध (यथा प्रसाद) में वह खो नहीं गईं परन्तु आदर्शवाद की सूक्ष्म-छटा उन्हें प्रतीक-विधान में अटकाए रखती है।

महादेवी के ससीम-असीम की ही बात करें तो :

	परमात्मा	जीवात्मा
1. चार्वाक	नहीं है	देह ही आत्मा है।
2. बौद्ध	सर्वज्ञ बुद्ध से भिन्न कोई ईश्वर नहीं।	शून्यमय, विज्ञानमय

3. जैन	नहीं। तीर्थंकर सर्वज्ञ हैं।	देह से भिन्न, देह के अकारण
4. सांख्य	जीव ही मुक्त पुरुष है।	अन्तर्बाह्य निर्गुण
5.मीमांसक (प्रभाकर)	कर्म से अलग ईश्वर नहीं	कूटस्थ, जड़
,, (भट्ट)	है।	अंशतः जड़
6. न्याय-वैशेषिक	निमित्तकारण, उपादान-कारण नहीं। कर्मफलदाता	कूटस्थ नहीं, जड़ है।
7. वैयाकरण	'पराख्य' शब्द	अन्तर्बाह्य निर्गुण
8. पातंजल-योग	ईश्वर जीव से भिन्न निर्गुण	,, ,,
9. अद्वैतवाद	सच्चिदानन्दनरूप ब्रह्म	ब्रह्म का ही अंश
10. द्वैतवादी	सृष्टिकर्ता, सृष्टि से भिन्न	अणु परिमाण

उनके सर्वोत्तम ग्रंथ 'दीपशिखा' के 'चिंतन की क्षण से' नामक भूमिका में उन्होंने स्पष्टतः कहा है : "बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् तक फैले और ज्ञान तथा भाव-क्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया होगा। कला सत्य को ज्ञान के सिकता-विस्तार में नहीं खोजती, अनुभूति की सरिता के तट में एक विशेष बिंदु पर ग्रहण करती है।" (पृष्ठ 2)

और "जहाँ तक काव्य तथा अन्य ललित-कलाओं का सम्बन्ध है, वे उपयोग की उस उन्नत भूमि पर स्थायी हो पाती हैं जहाँ उपयोग सामान्य रह सके।··· वास्तव में कलाकार तो जीवन का ऐसा संगी है जो अपनी आत्म-कहानी में, हृदय हृदय की कथा कहता है और स्वयं चलकर पग-पग के लिए पथ प्रशस्त करता है। काँटा चुभाकर काँटे का ज्ञान तो संसार दे ही देगा, परन्तु कलाकार बिना काँटा चुभाने की पीड़ा दिये हुए ही उसकी कसक की तीव्र-मधुर अनुभूति दूसरे तक पहुँचाने में समर्थ है।" (पृष्ठ 6) और "कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है। दर्शन में चेतना के प्रति नास्तिक की स्थिति भी सम्भव है, परन्तु काव्य में अनुभूति के प्रति अविश्वासी कवि की स्थिति असम्भव ही रहेगी।" (पृष्ठ 6)

पृष्ठ आठ पर वे लिखती हैं : "चरम सीमा पर जैसे यथार्थ विक्षिप्त गतिशील है वैसे ही आदर्श निष्क्रियता में स्थिर हो जाता है। एक विविध उपकरणों का बवण्डर है और पूर्ण निमित पर अचल मूर्ति। साधारणतः जीवन में एक ही व्यक्ति यथार्थदर्शी भी है और आदर्श-स्रष्टा भी, चाहे उसका यथार्थ कितना ही अपूर्ण हो और आदर्श कितना ही संकीर्ण।"

'नास्तिकता उसी दशा में सृजनात्मक विकास दे सकती है जब ईश्वरता से अधिक सजीव और सामंजस्यपूर्ण आदर्श जीवन के साथ चलता रहे। जहाँ केवल अविश्वास ही उसका सम्बल है वहाँ वह जीवन के प्रति भी आस्था उत्पन्न किए बिना नहीं रहती और जीवन के प्रति अविश्वासी व्यक्ति का सृजन के प्रति भी

आस्थावान हो जाना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति का अन्तिम और अवश्यम्भावी परिणाम, जीवन के प्रति व्यर्थता की भावना और निराशा ही होता है। इसी से सच्चा कवि या कलाकार किसी-न-किसी आदर्श के प्रति आस्थावान रहेगा ही।" (पृष्ठ 13)

इसीलिए सच्चे रहस्यवाद और निराशावाद का कोई जोड़ नहीं है। नीत्शे ने अपने 'गे साइलेंस' (आनन्द-मौन) में गरजकर कहा था : "Where is God ? He cried ; well, I will tell you. We have murderd him—you and I...But how did we do this deed ?...Whither are we moving ?...Are we not falling incessantly ?...Are we not staggering through infinite nothingness ?...Is night not approaching, more and more night...?"

इसी भावना से, खंडित जनमत के भाव से महादेवी ने कहा :

"आज जीवन के निकट परिचय के साथ कवि में उस अखंडता का भावन भी अपेक्षित है जो मनुष्य-मनुष्य को एक ही धरातल पर समानता दे सके।" (पृष्ठ 17)

"छायावाद को तो शैशव में कोई सहृदय आलोचक ही नहीं मिल सका।··· छायावाद एक प्रकार से अज्ञात-कुल-शील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नहीं मिल सका।···

"कवियों में एक-दो अपवाद छोड़कर शेष ऐसी अनिश्चित स्थिति में रहे और रहते आ रहे हैं जिसमें न लिखने का अनिवार्य परिणाम, उपवास चिकित्सा है।··· नया कवि अपनी अनेक वाणी में बोलनेवाले नये आलोचक से उतना आतंकित है जितना दरबारी कवि राजा के षड्यन्त्रकारी मन्त्री से हो सकता था।" (पृष्ठ 19)

छायावाद की, मेरे मत से, सबसे बड़ी कमज़ोरी यह थी कि वह उत्तरोत्तर आत्माभिव्यंजन की अपेक्षा आत्म-गोपन में, आत्म-संकोचन में विश्वास करने लगा। स्वभावतः वह आत्म-हनन में जाकर रुका। इसकी विस्तृत समीक्षा मैंने सन् 1938 में 'अरमानों की चिता' नामक कविता-पुस्तक की लम्बी भूमिका में की थी। डायलैन टॉमस नामक वेल्श का कथन है कि :

"Poetry is the rhythmic inevitably narrative movement from our clothed blindness towards a naked vision."

संक्षेप में महादेवी की कविता की समीक्षा के भूमिका रूप में इतनी बातें कहने के बाद मैं उनकी कविता और चित्रकला की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करना चाहता हूँ।

(1) उनमें आत्मार्पण तथा आत्म-पीड़न अत्यधिक है। यानी कहीं भी उन्होंने अपने-आपको उभारकर नहीं रखा है। और वैसे उन्होंने अपने सिवा और किसी

के भावों की बात भी कहाँ की है ?

(2) उन्होंने अपनी उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं, रूपकों और भ्रांतिमान, अन्योक्ति तथा सांग-रूपकों की भी एक परिधि बाँध ली है। उसी में उनकी कल्पनाएँ उड़ान भरती हैं, या चक्कर काटती हैं।

(3) उनकी भाषा, चाहे गद्य हो या पद्य, साफ-सुथरी, सुघर, शिल्पिक (Chiselled) है। कहीं खोजकर ही कोई शब्द-दोष मिले।

(4) छंदों में विविधता का अभाव है, एकरसता जैसे उनकी रचनाओं में सर्वत्र संव्याप्त है।

(5) उन्होंने गीत थोड़े ही लिखे हैं। परन्तु उनमें रचना का मँजाव-निखार बहुत ही संयत है। भावनाओं पर आत्म-संयम का आदर्श नियन्त्रण है।

(6) कहीं भी उनकी कल्पना में यांत्रिकता अथवा हठाकृष्टता नहीं। अतः दूरान्वय या शब्द-अर्थ-दुरूहता की भी बाधा नहीं। ऋजु, प्रसाद-गुणमयी शैली है।

(7) उनकी कविता गेय है।

कुमारी जनस्वामी ने अपने प्रबन्ध 'महादेवी वर्मा का काव्य' में लिखा है : भाषा में संगीतात्मकता अपनी विशेषता रखती है। इसके लिए वर्ण-मैत्री, शब्द-मैत्री, पदमैत्री, कोमला तथा उपनागरिका वृत्ति इन गुणों की आवश्यकता होती है। महादेवीजी के शब्द प्रयोग में 'ट' वर्ग के वर्णों तथा कठोर वर्णों का बहुधा अभाव मिलता है। 'प' वर्ग तथा 'त' वर्ग के वर्ण म, र, ल, ण, न तथा अनुस्वार-युक्त वर्णों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। उनकी रचना में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होनेवाले कुछ शब्दों को देखिए—

मधु, मदिरा, मदिर, मादक; मादकता, विधु, मुसकान, सुरभि, सुरभित, समीर, स्पन्दन, पथिक, वेदना, पाहुन, तारक, लघु, सुधि, सुधि-सम्बल, पंथ, लहर, लास, लोल, झीना, करुणा की कोर, तुहिन कण, अश्रुकण, करुणेश, तरिणी, नाविक, सुधि-वसन्त, सुमनतीर, नवल, नेह-राग, स्मित-पराग, मधुकन, अनजानी, बोझिल, तड़ित, इसमें म, र, ल, ण, न अनुस्वारयुक्त स्वर जैसे सन्देश, संकेत आदि शब्दों के प्रयोग उपनागरिका-वृत्ति हमें मिलती है। 'त' वर्ग, 'प' वर्ग, 'च' वर्ग के वर्णों में स्वाभाविक कोमलता होती है। जैसे—तारक, नवल, पंथ, पथिक, बोझिल, चरण, चंचल आदि।

यह दुहराना उनके 'नीरजा' के उपरान्त के गीतों में अधिक हुआ है। परन्तु आरम्भिक गीतों में विशेषतः 'रश्मि' के 'अतृप्ति', 'आत्म-परिचय' आदि गीतों में विलक्षण मौलिकता और सहज नवीनता के दर्शन होते हैं। बाद में धीरे-धीरे जैसे उनकी कविता एक काट में बँधने लगती है। और 'सांध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' में आकर तो इतना स्वयं को पुनः-पुनः विभिन्न रूपों से उद्धृत करने की वृत्ति बढ़ती है कि उनका कविता के रूप के प्रति आग्रह एक स्वयं-निर्मित बंधन बन जाता है।

ऐसे समय हमारे समीक्षकगण यह नहीं विचार करते कि उनकी कविता की रसात्मकता कम होती जा रही है या बढ़ती जा रही है ? 'पौनः पुन्य' के कारण क्या वस्तुतः रसनिष्पत्ति में बाधा पड़ती है यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसी दशा में कल्पना के आवर्त्तन में आनन्द-लाभ और रस का भावन उनकी रचनाओं में कैसे होता है ?

'शम' को भावाभाव मानकर चलें तो बचे उनचास भावों को ही लें, जिनके बारे में भरत ने नाट्य-शास्त्र में पृष्ठ 73 पर 'रसानां भावनां च नाट्याश्रितानां चार्थानाम् आचारोत्पन्नानि आप्तोपदेशसिद्धानि नामानि भवन्ति' कहा है। रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, शोक, भय और (शम) यह नव रसांतर्गत स्थायीभाव हैं। सात्विक भाव हैं आठ। इनमें से रोमांच, स्वर-भेद और कम्प तो सभी भावों के साथ चलते हैं; स्तम्भ, भय और विस्मय के साथ रहता है; स्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय भय-शोक के साथ रह सकते हैं।

तैंतीस व्यभिचारी भावों में मरण, व्याधि, ग्लानि, श्रम, आलस्य, निद्रा, स्वप्न, अपस्मार, उन्माद, मद, मोह, जड़ता, चपलता यह चौदह भाव तो शारीरिक अवस्थाओं के समान हैं।

स्मृति, मति, वितर्क हैं ज्ञानात्मक मनोऽवस्थाओं से समानान्तर।

और हर्ष, अमर्ष, धृति, उग्रता, आवेग, विषाद, निर्वेद, औत्सुक्य, चिंता, शंका, असूया, त्रास, गर्व, दैन्य, अवहित्थ और व्रीडा भावात्मक मनोऽवस्थाओं से समतुल्य हैं।

महादेवी की कविता में रति, विस्मय, शोक और शम इन स्थायी भावों की और रोमांच, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय इन सात्विक भावों की प्रधानता है। व्यभिचारियों में से मरण, ग्लानि, निद्रा, स्वप्न, उन्माद, भय, मोह, चपलता, स्मृति, वितर्क, आवेग, विषाद, निर्वेद, औत्सुक्य, चिंता, शंका, त्रास, गर्व और व्रीडा—इस प्रकार से पचास में से सत्ताईस भावों का ही विशेष प्रयोग किया गया है।

स्पष्ट है कि इस कारण उनके चित्रों में और गीतों में एकांगीपन आ गया है। एकांगिता उनकी रचनाओं में कहीं भी विरोधी रंग (कांट्रास्ट) नहीं उपस्थित करती। जैसे विरह के अनन्त चित्र हैं, मिलन के चित्र अत्यन्त विरल हैं। दुःख, करुणा, वेदना, व्यथा का प्राधान्य है; सुख, हर्ष, आह्लाद, आनन्द का उस मात्रा में बहुत ही अभाव है। जैसे उनके काव्य-व्योम में उदासी की धुँधली बदली सदा, सर्वकाल छाई रहती है।

रस की निर्मिति के लिए कलाकृति के मूल में 'द्वंद्व' बहुत आवश्यक है। महादेवी की कविता में सर्वत्र एकस्वरता, एकरसता मिलती है, जो कला की दृष्टि से रस-हानि-परक है। भामह ने तो कहा था कि काव्य के लिए कुछ भी वर्ज्य नहीं, पर महादेवीजी 'टीस' शब्द पसन्द नहीं करतीं। भामह की उक्ति है :

"न स शब्दो न तद्वाच्य न सन्यायो न सा कला।
जायते यत्र काव्यांगमहो भारो महान् कवेः।"

इस एकरसता के कारण महादेवीजी की भावुकता में एक प्रकार की कुंठा, आत्मावरोध अतः—विजड़ीकरण निर्माण हो गया है, जिसका मनोवैज्ञानिक फल है सतत प्रतीक्षा और निरन्तर शाश्वत टोह की भावना। फ्रायड की शब्दावली में इसी को 'वेरड्रानगुङ्' (Verdrangung) से 'वेरडिख्टुङ्' (Verdichtung) और उसी से 'वॉलेन उंड स्ट्रैबेन' (Wollen und streben) कहा गया है।

अब वर्षा की प्रतिमाओं को ही ले लीजिए। अमरुक ने भी शृंगारपरक उसका प्रयोग किया है, पर गाथासप्तशती का कैसा नागर संस्करण है, देखिए :

"धीरं वारिधरस्य वारिकिरतः श्रुत्वा निशीथे ध्वनिम्।
दीर्घोच्छ्वासमुदश्रुणा विरहणीं बालां चिरं ध्यायता।।
अध्वन्येन विमुक्तकंठमखिलां रात्रि तथा क्रंदितम्।
ग्रामीणैः पुनरध्वगास्य वसतिर्ग्रामे निषद्धा यथा।।"

जौन डिवी ने 'आर्ट एण्ड एक्सपीरियंस' ग्रंथ के चतुर्थ अध्याय में अभिव्यंजना में कला तथा सहजता की विशद चर्चा की है। कलाकार की भावानुभूति अपने विषय के आसपास में यों आकृष्ट हो जाती है जैसे चुम्बक से लौहचूर्ण। परंतु इस अनुभूति के प्रकटीकरण में भी एक प्रकार की अनिवार्यता, अपरिहार्यता, अनिर्बंध, अनवरतता होती है, जिसका प्रत्यय क्रमशः श्लथ होनेवाली छायावादियों की कला-शैली में स्पष्ट है। महादेवी वर्मा इस नियम की अपवाद नहीं हैं। उनका वेदनावाद उत्तरोत्तर उनकी कला की सीमा बन गया है।

मेरी बात का प्रमाण उनकी आत्मकथात्मक कविता 'बीन हूँ मैं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!' में अंतिम छंद देखिए—

"दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ!
आग हूँ जिसके ढुलकते बिन्दु हिमजल के;
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के;
पलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में;
हूँ वही प्रतिबिंब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ!
नाश भी हूँ मैं अनंत विकास का क्रम भी;
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी;
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ!"

इसमें उन्होंने जीवन के भद्र और रुद्र दोनों सत्य पक्षों का वैसा ही एक साथ उल्लेख करने का यत्न किया है जैसे शिवमंगलसिंह 'सुमन' ने बाद में अपने एक

गीत में—'मैं सुन्दर और असुन्दर दोनों साथ-साथ'। पर जीवन में मिट्टी और फूल, प्रलय और सृजन, नाश और निर्माण दोनों पक्ष होने पर भी महादेवीजी ने एक ही पक्ष पर क्यों ज़ोर दिया ? इसका कारण उनकी 'रश्मि' की भूमिका में दुःखवाद के समर्थन पर उनकी उक्तियों में मिलेगा। देश परतन्त्र, दीन, दुःखी था; अतः महादेवी ने वेदनावाद अपनाया। 'दीपशिखा' के 51 गीतों में प्रत्येक गीत में अश्रु का उल्लेख है।

महादेवी के चित्रों में करुण मुद्राओं का आधिक्य है। काँटों से बँधे हाथ, मृतप्राय शिशु, अँधेरा और टिमटिमाते दीप अधिक हैं। वे लिखती हैं :

"व्यक्तिगत रूप से मुझे मूर्तिकला विशेष आकर्षित करती है, क्योंकि उसमें कलाकार के अन्तर्जगत् का वैभव ही नहीं, बाह्य आभास भी अपेक्षित रहता है।"...

"...चित्रकला में भी बहुत छोटे-से ज्ञान-बीज पर मैंने रंग-रेखा की शाखाएँ फैला दी हैं।"—दीपशिखा (पृष्ठ 21)

"कुछ अजंता के चित्रों पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से चित्रों में यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष यह तो मैं नहीं बता सकती, पर इस चित्र-मूर्ति सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है ऐसा मेरा विश्वास है।" (पृष्ठ 22)

"मेरा चित्र गीत को एक मूर्त पीठिका-मात्र दे सकता है, उसकी सम्पूर्णता बाँध लेने की क्षमता नहीं रखता।" (पृष्ठ 22)

यों उनके चित्र कविताओं के 'इलस्ट्रेशन्स' मात्र हैं। उनकी शैली पर अजंता का तो उतना नहीं जितना रोरिक, चुगताई और कनु देसाई का प्रभाव दिखाई देता है। वैसे ही शैल-शृंग, लम्बी-लम्बी रेखाएँ और सिलहुट।

वे लिखता हैं :

"काव्य इतना मूल्यवान क्यों हो कि सब तक न पहुंच सके यह भी समस्या है।" (पृष्ठ 22)

परन्तु केवल 51 चित्र-गीतों की पुस्तक 'दीपशिखा' के दाम बाईस रुपये हैं। इस ग्रन्थ की जनता से दूरी पूरी करने के लिए शायद महादेवीजी ने 1943 में 'बंग-दर्शन' भी प्रकाशित किया।

महादेवीजी की कविता के समान चित्रकला की अपनी एक विशेषता है, व्यक्तिगत शैली है। कवि-चित्रकार रहस्यवादी विलियम ब्लेक ने लिखा था कि : "Painting as well as music and poetry exists and exults in immortal thoughts."

ऐसी ही अमर विचार-सम्पदा के कारण महादेवी की प्रतिभा ने ललित-कला के इन रूपों को—स्थूल चक्षुरिंद्रिय को आनन्द देनेवाली चित्रकला तथा सूक्ष्म भाव-जगत् को छूनेवाली कविता को एकाकार कर दिया है। वर्ण-वर्ण में पंक्ति

बन गई है । रंग रेखाकार हो उठे हैं । उनकी लगन और निष्ठा का वह अंतर है कि जैसे कभी बहुत पहले संत-काव्य की परम्परा की कवयित्री सहजोबाई ने कह दिया था कि :

"उलटा सुलटा बीज गिर ज्यों,
धरती माहीं कैसे ।
उपजि रहै निहचै करि जानौ
हरि-सुमिरन है ऐसे ।।"

वैसे ही किसी नियमित चित्रकला-शिक्षण अथवा 'पर्स्पेक्टिव' के गणित और टेकनीक की बारीकियों के ज्ञान के अभाव में भी, उनके ये चित्र अपने-आप उद्गार हैं । उन्हें किसी परिचय की आवश्यकता नहीं ।

महादेवी के व्यक्तित्व में अपार करुणा है, जिसका सदुपयोग वे साहित्यकार संसद् जैसी लोकोपयोगी संस्थाओं में कर रही हैं । हमें आशा है कि आज की युद्ध की आशंका से पीड़ित, संत्रस्त मानवता को 'वंग-दर्शन' की भाँति उनकी वाणी पुन शांति का संजीवक हिम-सेक देगी । कविता और चित्रकला का जैसा सुन्दर उपयोग उन्होंने अपनी 'स्व' कीं भाव-व्यंजना में किया, वैसे ही लोक-मंगल की मर्यादा की रक्षा करते हुए हिंदी-कवियों की श्रेष्ठ परम्परा के अनुसरण में वे देश और संसार की शान्ति का मार्ग प्रशस्त करनेवाली रचनाएँ अपनी तूलिका और लेखनी से देंगी ।

यद्यपि समीक्षक की बौद्धिकता से कुछ विश्लेषण मैंने ऊपर किया है, उनकी कला-साधना के प्रति मुझे बड़ी श्रद्धा है । अतः आज की विषमता और अन्याय से पीड़ित मानवता में मैं उनसे अलेक्सी सुरकोव नामक तरुण सोवियत कवि की इस शब्दावली में अंत में अपील करना चाहता हूँ :

"Speak up !
The hour has struck when stern, severe
Truth's rights by truth must be seized."

(बोलो ! घंटा बज उठा है । कठोर, कठिन । जब सत्य से सत्य का अधिकार छीनना है ।)

17

महादेवी की दार्शनिक पृष्ठभूमि

मन्मथनाथ गुप्त

['महादेवीजी बुद्धिवाद में विश्वास नहीं रखतीं। जगत-व्यापार के समाधान के लिए बुद्धि को अयथेष्ट पाती हैं और इनके निकट भावपक्ष बुद्धिपक्ष से पृथक् है। वे प्रेम-मार्गी सूफी संतों की विचारधारा को मानती हैं। उनका अध्यात्म परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों से भिन्न है। वे ऐसा समझती हैं कि यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को अध्यात्म की संज्ञा दी जाए तो उस रूप में काव्य में उनका कोई महत्त्व नहीं है।']

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में श्रीमती महादेवी वर्मा एक बहुत अद्‌भुत विभूति हैं। उन्होंने स्वयं लम्बी-लम्बी भूमिकाओं के रूप में अपनी कविता के सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा है, पर उससे जहाँ एक तरफ उनकी कविता को समझने में आसानी हुई है, उसी प्रकार इन भूमिकाओं के कारण उनकी कविताओं को समझना और भी दुरूह हो गया है। क्योंकि उनकी कविताओं की तरह उनकी भूमिकाएँ भी बड़ी जटिल और उलझन-भरी हैं। अवश्य हम इस बात के लिए मजबूर नहीं हैं कि एक लेखक या कवि, नाटककार या उपन्यासकार अपनी रचना के सम्बन्ध में जो-कुछ भी कहता है, उसे सम्पूर्ण रूप से मान ही लें। ऐसा हो सकता है कि एक लेखक या कवि अपनी रचना में सज्ञान रूप से जिस चीज को देना चाहता है, और जिस मात्रा में देना चाहता है, सम्भव है कि उसकी रचना में उस चीज़ के अलावा दूसरी चीज़ें हों, वह चीज़ हो ही नहीं या बहुत कम हो, उसकी मात्रा लेखक के वर्णन के अनुसार न हो, इत्यादि।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि लेखक या कवि अपनी रचना के सम्बन्ध में जो कुछ कहता है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। किसी भी गम्भीर समालोचक को लेखक या कवि के इस प्रकार के वक्तव्यों को ध्यान में रखकर चलना पड़ेगा। वह उसे कितनी हद तक माने, माने या न माने, यह दूसरी बात है, पर आलोचक इन कथनों की अवज्ञा नहीं कर सकता।

महादेवीजी बुद्धिवाद में विश्वास नहीं रखतीं। उनके निकट भावपक्ष या भावनाओं का महत्त्व अधिक है। वे कहती हैं : "साधारणत: अन्य व्यक्तियों के समान

ही कवि की स्थिति भी प्रत्यक्ष जगत् की व्यष्टि और समष्टि दोनों ही में है। एक में वह अपनी इकाई में पूर्ण है और दूसरी में वह अपनी इकाई से बाह्य जगत् की इकाई को पूर्ण करता है। उसके अन्तर्जगत् का विकास ऐसा होना आवश्यक है जो उसके व्यष्टिगत जीवन का विकास और परिष्कार करता हुआ समष्टिगत जीवन के साथ उसका सामंजस्य स्थापित कर दे। मनुष्य के पास इसके लिए केवल दो ही उपाय हैं, बुद्धि का विकास और भावना का परिष्कार। परन्तु केवल बौद्धिक निरूपण जीवन के मूलतत्त्वों की व्याख्या कर सकता है, उनका परिष्कार नहीं जो जीवन के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए अपेक्षित है और केवल भावना जीवन को गति दे सकती है दिशा नहीं।"

केवल बौद्धिक निरूपण में उन्हें आस्था नहीं है। वे और भी कहती हैं : "इस बुद्धिवाद के युग में मनुष्य भावपक्ष की सहायता से अपने जीवन को कसने के लिए कोमल कसौटियाँ क्यों प्रस्तुत करे, भावना की साकारता के लिए अध्यात्म की पीठिका क्यों खोजता फिरे और फिर परोक्ष अध्यात्म को प्रत्यक्ष जगत् में क्यों प्रतिष्ठित करे, यह सभी प्रश्न सामयिक हैं। पर इनका उत्तर केवल बुद्धि से दिया जा सकेगा। ऐसा सम्भव नहीं जान पड़ता क्योंकि बुद्धि का प्रत्येक समाधान अपने साथ प्रश्नों की एक बड़ी संख्या उत्पन्न कर लेता है।"

हमने जो उद्धरण दिये उनसे यदि किसी बात का परिष्करण होता है, तो इतना ही है कि महादेवीजी जगत्-व्यापार के समाधान के लिए बुद्धि को अयथेष्ट पाती हैं, और उनके निकट भावपक्ष बुद्धिपक्ष से पृथक् है, कम-से-कम बहुत-से क्षेत्रों में पृथक् है। हमें इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि अध्यात्मवाद में भी बुद्धि को एक हद तक ही हितकर माना जाता है। हमें इसके ब्यौरे में जाने की आवश्यकता नहीं है। वे स्वयं अन्यत्र भी इस बात को स्पष्ट कर देती हैं कि प्रेममार्गी सूफी संतों की विचारधारा को वे मानती हैं। वे भावपक्ष को एकदम वर्जित करना पसन्द नहीं करतीं। प्रश्न यह उठता है कि बुद्धिपक्ष और भावपक्ष में सामंजस्य किस प्रकार हो ? कितनी मात्रा में बुद्धिपक्ष को मान्यता दी जाए और कितनी मात्रा में भावपक्ष को मान्यता दी जाए ?

इसका वे स्वयं ही उत्तर देती हैं : "भावातिरेक को हम अपनी क्रियाशीलता का एक विशिष्ट रूपान्तर मान सकते हैं, जो एक क्षण में हमारे सम्पूर्ण अन्तर्जगत् को स्पर्श कर बाह्य जगत् में अपनी अभिव्यक्ति के लिए अस्थिर हो उठता है, पर बुद्धि के दिशा-निर्देश के अभाव में इस भाव-प्रवेग के लिए अपनी व्यापकता की सीमाएँ खोज लेना कठिन हो जाता है, अतः दोनों का उचित मात्रा में संतुलन ही अपेक्षित रहेगा।" वे और भी स्पष्ट करके आगे कहती हैं : "कवि ही नहीं प्रत्येक कलाकार को अपने व्यष्टिगत जीवन की गहराई और समष्टिगत चेतना को विस्तार देनेवाली अनुभूतियों को भावना के साँचे में ढालना पड़ा है। हमें निष्क्रिय बुद्धिवाद और स्पंदनहीन वस्तुवाद के लम्बे पथ को पार कर कदाचित्

फिर चिर-सम्वेदन रूप सक्रिय भावना में जीवन के परमाणु खोजने होंगे ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारण है।"

महादेवीजी ने केवल इतना ही वतलाया कि भावपक्ष ग्रौर बुद्धिपक्ष का उचित मात्रा में सन्तुलन होना चाहिए, पर उचित मात्रा क्या है इस पर वे कहीं भी कोई रोशनी नहीं डालतीं, ग्रौर ऐसा उन्हें तार्किक रूप से करने की ग्रावश्यकता भी नहीं है क्योंकि इस ग्रौचित्य की मात्रा का निर्णय एक बौद्धिक प्रक्रिया है, ग्रौर जैसाकि उसका मतवाद है उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस प्रश्न का निर्णय बुद्धिपक्ष नहीं बल्कि भावपक्ष करेगा। यह तो स्पष्ट है कि ऐसा कह देने पर फिर किसी प्रश्न की गुंजाइश नहीं रहती।

यद्यपि महादेवीजी बुद्धिवाद को निष्क्रिय मानती हैं, ग्रौर उसे एक हद तक ही मान्यता देने को तैयार हैं, साथ-ही-साथ वह सूफी सन्तों की धारा में बहना चाहती हैं, फिर भी उनका ग्रध्यात्म परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों से भिन्न है, कम-से-कम यही उनका दावा है। वे ऐसा समझती हैं कि यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को ग्रध्यात्म की संज्ञा दी जाए तो उस रूप में काव्य में उनका कोई महत्त्व नहीं है। उनके शब्दों में ही सुनिए: 'यदि परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों को हम ग्रध्यात्म की संज्ञा देते हैं तो उस रूप में काव्य में उसका महत्त्व नहीं रहता। इस कथन में ग्रध्यात्म को बलात् लोकसंग्रही रूप देने का या उसकी ऐकांतिक ग्रनुभूति ग्रस्वीकार करने का कोई ग्राग्रह नहीं है। ग्रवश्य ही वह ग्रपने ऐकांतिक रूप में भी सफल है, परन्तु इस ग्ररूप-रूप की ग्रभिव्यक्ति लौकिक रूपकों में ही तो सम्भव हो सकेगी।

"जायसी की परोक्षानुभूति चाहे जितनी ऐकांतिक रही हो परन्तु उनकी मिलन-विरह की मधुर ग्रौर मर्मस्पर्शिनी ग्रभिव्यंजना क्या किसी लोकोत्तर लोक से रूपक लाई थी? हम चाहे ग्राध्यात्मिक संकेतों से ग्रपरिचित हों परन्तु उनकी लौकिक कलारूप सप्राणता से हमारा पूर्ण परिचय है। कबीर की ऐकांतिक रहस्यानुभूति के सम्बन्ध में भी यही सत्य है।"

वे मानती हैं कि उनकी कविता जिस नवीनता की ग्रोर गई, उसे ग्रस्पष्टता, सूक्ष्म की ग्रभिव्यक्ति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव, यथार्थ से पलायनवृत्ति ग्रादि बताकर ग्रतीत ग्रौर वर्तमान से सम्बन्धहीन एक ग्राकस्मिक ग्राकाशचारी ग्रस्तित्व देने का प्रयत्न किया गया है। पर वे इन ग्राक्षेपों का कुछ उत्तर देने के बजाय इतना कहकर सन्तोष कर लेती हैं कि "इन ग्राक्षेपों की ग्रभी जीवन में परीक्षा नहीं हो सकी है, ग्रतः ये हमारे मानसिक-जगत् में विशेष मूल्य रखते हैं।"

महादेवीजी दुःखवादी हैं। स्मरण रहे कि हमारे यहाँ के प्राचीन दर्शन-शास्त्रों में कई दुःखवाद को ही ग्राधारशिला मानकर चलते थे। इसलिए यदि यह कहा जाए कि महादेवीजी प्राचीन परम्परा की लीक में हैं तो कोई ग्रत्युक्ति न होगी। स्वाभाविक रूप से दुःखवादी का ध्येय मुक्ति या निर्वाण या इसी प्रकार की कोई

अवस्था हो सकती है। इसी कारण उनकी कविता की टेक यही है :

"नहीं अब गाया जाता देव,
थकी अँगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज,
मिला लो यह अस्फुट झंकार।"

प्रकृति को भी वे इसी रूप में देखती हैं :

"रजतकरों की मृदुल, तूलिका,
से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार,
कणियों पर जब आँक रहा था,
करुण कथा अपनी संसार।
तरल हृदय की उच्छ्वासें जब
भोले मेघ लुटा जाते,
अंधकार दिन की चोटों पर
अंजन बरसाने आते।"

× × ×

"पीड़ा का साम्राज्य बस गया,
उस दिन दूर क्षितिज के पार" इत्यादि।

× × ×

"रजत प्याले में निद्रा ढाल,
बाँट देती जो रजनी बाल,
उसे कलियों में आँसू घोल,
चुकाना पड़ता किसका मोल।"

× × ×

"दुख के पद छू बहते झर-झर
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर
लघु मानस में वह अतृप्ति असीम जग को आमन्त्रित कर लाता।"

इस प्रकार जहाँ से भी खोल जाइए, वहीं पर दुःखवाद का पुट मिलेगा। इसी कारण मुक्ति या निर्वाण ही कवयित्री का ध्येय है।

"जब असीम से हो जाएगा,
मेरी लघुसीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।"

यह मिटने का खेल ही उनके निकट एकमात्र खेल है। प्रकृति की ओर वह बहुत ज़ोर से आकृष्ट होती हैं, पर जैसाकि मैं बता चुका प्रकृति को वे अनिवार्य

रूप से दुःखमय देखती हैं :

"देकर सौरभ दान पवन से,
कहते जब मुरझाये फूल,
जिसके पथ में बिछे वही,
क्यों भरता इन आँखों में धूल।
अब इनमें क्या सार, मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है, कितना निष्ठुर है संसार।"

इसी प्रकार अन्य बीसियों कविताएँ उद्धृत की जा सकती हैं। उन्हीं के शब्दों में सुनिए कि वे अपने दुःखवाद के सम्बन्ध में क्या कहना चाहती हैं। वे लिखती हैं : "अपने दुखवाद के विषय में भी दो शब्द कहना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुःख के धूपछाँहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए भी किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं हैं। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब-कुछ मिला है, परंतु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।

"इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझनेवाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

"अवश्य ही उस दुखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा परंतु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती—

"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किंतु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परंतु दुःख सबको बाँटकर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।

"मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रंदन है।

"अपने भावों का सच्चा शब्द-चित्र अंकित करने में मुझे प्रायः असफलता ही मिली है, परंतु मेरा विश्वास है कि असफलता और सफलता की सीढ़ियों द्वारा ही

मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है।

"इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर 'आँसू की माला' ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा।

"परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है। जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों का उपहास-सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है उसी प्रकार संध्याकाल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर कातर क्रंदन कर उठेगा तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा। ऐसा ही मेरा स्वप्न है।"

यह तो हुआ महादेवी का दर्शन-शास्त्र। जैसाकि मैं पहले ही बता चुका यह दुःखवाद भारत के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है। ऐन वैदिक युग के बाद से ही इस प्रकार के विचारों की प्रधानता चली आ रही है। षड्दर्शन के जो प्राप्त संस्करण हैं तथा बौद्ध, जैन आदि सारे दर्शन इसी प्रकार के दुःखवाद को लेकर चले और पनपे। फिर भी महादेवी के दुःखवाद में और पहले के दुःखवादियों में एक बहुत बड़ा फर्क यह है कि महादेवी अपने इस दुःखवाद के कारण उन लोगों की तरह प्रकृति से और विस्तृत रूप से जगत् व्यापार से आँखें हटा नहीं लेतीं बल्कि वह उनकी तरफ और भी प्रबलता के साथ खिंचती हैं। वे पार्थिव मिलन को कोई महत्त्व न देती हुई भी सर्वत्र मिलन और विरह की भाषा, प्रणय और प्यारे की बोली को अपनाती हैं, वे मधुमय मुरली की तान, चल-चितवन से बेखबर नहीं होतीं। इन्हीं कारणों से वे जिस कविता की सृष्टि करती हैं, वह आधारभूत रूप से दुःखवादी होते हुए भी एक अजीब गुदगुदी पैदा करने में समर्थ होती है, विरह में मिलन का कहीं पर पुट आ जाता है, दुःख एक रोमांटिक रूप में हमारे सामने आता है। दूसरे शब्दों में वे दुःखवाद को कविता का रूप देने में समर्थ होती हैं और यही उनकी रचना की लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण है। अवश्य असली कारण तो सामाजिक है, सचमुच ही हम जिस दुनिया में रहते हैं, विशेषकर महादेवी ने जिस युग में काव्य-साधना की, उस युग में आम जनता के जीवन में दुःख का ही बोलबाला था। महादेवी ने इस दुःख के सागर में बैठकर कुछ मुक्ता-रत्न चुने, उनसे पेट तो नहीं भरा, और न किसी समस्या का समाधान हुआ, पर यह जरूर हुआ कि लोग इनकी चकाचौंध से अपने कष्टों को पल-भर के लिए ही सही, विस्मृत कर गये।

सम्भव है कि जब यह दुःखवाद का मेघ हम पर से हटे, तब लोग दुःखवादी दर्शन या कविता को अपनाना पसन्द न करें, पर महादेवीजी ने अपनी कविताओं में जिस सुंदर संतुलित मधुर भाषा का प्रयोग किया है, उसके कारण उनकी कविता हिन्दी-साहित्य में अमर रहने के लिए बाध्य है। स्मरण रहे कि महादेवी ने जिस युग में काव्य-साधना की, उस युग में बहुत-से लोग, कहें या न कहें, यह विश्वास

करते थे कि हृदय को स्पर्श करनेवाली कविता केवल उर्दू में लिखी जा सकती है, हिन्दी खड़ीबोली में नहीं। उस समय यह काव्य-साधिका हमारे सम्मुख आई, और धीरे-धीरे इस संदेह-जाल को दूर कर दिया। इस दृष्टि से उनकी काव्य-रचना हिन्दी-साहित्य में एक नवयुग प्रवर्त्तिका है।

18

महादेवी के रेखा-चित्र

गोपालकृष्ण कौल

['टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से बने 'स्कैच' चित्रकार की जीवन के प्रति होने वाली सजीव अनुभूति की साकार अभिव्यक्ति करते हैं।

'रेखाचित्र' न कहानी है और न गद्यगीत, न निबन्ध है और न संस्मरण; रेखाओं से जीवन के विविध रूपों का आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपनाकर ही शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्रों को 'रेखा-चित्र' की संज्ञा प्रदान की गई।

महादेवी के 'रेखा-चित्र' उनके जीवन से सम्बन्धित हैं। जिन पात्रों का चित्रण इनमें हुआ है वे कलाकार की जीवन-कथा का हृदय छूने वाले अंग हैं।']

चित्र भावना की नीरव-अभिव्यक्ति होता है। उसमें रेखाएँ और रंग बिना भाषा के ही बोल उठते हैं। किन्तु चित्र केवल रेखाओं और रंगों से ही नहीं, शब्दों से भी खींचे जाते हैं। अभिव्यक्ति के लिखित प्रकार के रूप में भावना के चित्रण के लिए शब्द और रेखाएँ समान उपकरण हैं—दोनों ही रहस्यमय अनुभूति को मानस की गहराई से सतह पर लाकर अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं।

महादेवी वर्मा ने अपनी रहस्यमय भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए शब्द और रेखाएँ—दोनों को ही अपनी कला का उपकरण बनाया है। चित्रण में उन्हें विशेष रुचि है। उनके गीति-काव्य में अनेक शब्द-चित्र हैं। जैसे शेक्सपियर और कीट्स के सामने नया भाव आते ही—उसके नये-नये चित्र भी बनने लगते थे और उन्होंने अपने काव्य में भावों का चित्रीकरण करके भावनाओं को एक साकारता-सी प्रदान की—वैसे ही महादेवी वर्मा की रहस्यमय भावना की अभि-व्यक्ति अपने काव्य में प्रतीकों से छोटे-छोटे चित्र प्रस्तुत करके होती है। महादेवी —कवि के साथ कुशल चित्रकार भी हैं। शायद इसीलिए काव्य में भी चित्र बनाती हैं। 'दीपशिखा' काव्य-संग्रह में महादेवीजी के चित्रों के गीत और गीतों के चित्र हैं। उसमें उन्होंने रेखा और शब्द—दोनों में ही कविता को आकार प्रदान किया है। जैसे चित्रकार प्रकृति के अनेक सुन्दर-असुन्दर उपकरणों को रेखांकित करके चित्र में भावना को रूप प्रदान करता है उसी प्रकार महादेवी रहस्यमय भावनाओं की

अभिव्यक्ति के लिए अपने काव्य-चित्रों को प्रस्तुत करने में प्रकृति के अनेक उपकरणों को प्रतीक के रूप में प्रयोग करती हैं। वर्षा से करुणा, ग्रीष्म से क्रोध, पतझर से दुख, वसन्त से आनन्द को संकेत द्वारा अभिव्यक्त करती हैं। सुख के लिए वे 'मलय-पवन', 'मधु' और 'रश्मि' आदि शब्दों का प्रयोग करती हैं। आँसू के लिए उन्होंने 'मकरन्द', 'नक्षत्र' और 'तुहिन-कण' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। जीवन के प्रतीक के रूप में उन्होंने तरी, प्याली, लहर आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में भावाभिव्यक्ति न करके, प्रतीकों से रहस्यमय भावना को अभिव्यक्त करने की शैली चित्रकार की शैली है, क्योंकि जब कवि मात्र शब्द से अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाता तभी वह ऐसे प्रतीक-चित्र प्रस्तुत करता है। किन्तु यह उसकी मजबूरी नहीं, बल्कि उसके कलागत सौन्दर्य की विशेषता बन जाती है।

महादेवी वर्मा अपने गीति-काव्य में व्यक्ति-प्रधान हैं, समाज की अभिव्यक्ति का उसमें अभाव है। उसमें वे व्यष्टि हैं, समष्टि नहीं। वैसे उसमें प्रकृति के विराट् सौन्दर्य के दर्शन किये गए हैं, जड़ में चेतन के स्पन्दन को अनुभव किया गया है, किन्तु जो चेतन का यथार्थ रूप है—जन-जीवन, उसके दर्शन का उसमें अभाव है। इसलिए गीति-काव्य में उनकी व्यक्ति-साधना है। प्रियतम के रूप में 'ब्रह्म' उनका साध्य, विरह उनकी साधना और परमात्मा से मिलने को बेचैन आत्मा उनकी साधिका है। गीति-काव्य में वे प्रेमिका हैं, प्रणयिनी हैं। प्रेम की अतृप्त प्यास, विरक्तिमय अनुराग, वासनाहीन विरह-पीड़ा और एक अज्ञात ईश्वरीय सौन्दर्य के प्राकृतिक सौन्दर्य में दर्शन—उनके काव्य के विषय हैं। वे वेदना, करुणा और दुख की कवि हैं। 'रश्मि' की भूमिका में उन्होंने लिखा है :

"संसार साधारणत: जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है; उस पर पार्थिव दुख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसीकी प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगती है।"

जो पार्थिव है, उससे उनकी विरक्ति है। उनका दुख आध्यात्मिक है और वेदना में अलौकिक अनुराग का रस है। किन्तु पार्थिव और स्थूल मानकर काव्य में उन्होंने जन-जीवन के समष्टि रूप समाज की यथार्थ और जाग्रत चेतना को स्थान नहीं दिया। वैसे गीति-काव्य व्यक्ति-प्रधान कला-साधना है, किन्तु समाज के प्रति कवि के जागरूक दृष्टिकोण की झलक उसमें प्रतिबिम्बित हो सकती है, यदि कवि का समाज के प्रति कोई जागरूक दृष्टिकोण हो। वर्तमान समाज में व्याप्त दुख, दैन्य, विषमता और उत्पीड़न की झलक उनके गीति-काव्य में नहीं क्योंकि उसमें जो दुख और वेदना है वह भी उनके अलौकिक प्रेम की विरह पीड़ा के लक्षण मात्र हैं। इसीलिए उन्होंने काव्य के अधिकांश उपमान और प्रतीक भी प्रकृति से ग्रहण किये हैं, जन-जीवन से नहीं। किन्तु महादेवी के रेखाचित्रों में समाज के प्रति आकर्षण

हैं। गीति-काव्य में जो कला व्यक्ति-प्रधान थी, रेखा-चित्रों में वह समाज-प्रधान हो गई है। जन-जीवन में व्याप्त दुख, दैन्य और उत्पीड़न के चित्रों को उन्होंने शब्दों की रेखाओं से चित्रित किया है। इन रचनाओं में समाज के प्रति महादेवीजी के एक जागरूक दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं।

रेखा-चित्र लिखने की शैली लेखकों को चित्रकला से प्राप्त हुई है। टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से बने 'स्कैच' चित्रकार की जीवन के प्रति होने वाली सजीवन अनुभूति की साकार अभिव्यक्ति करते हैं। रेखाओं से जीवन के विविध रूपों का आकार देने की प्रणाली की विशेषता को अपनाकर ही शब्दों द्वारा जीवन के विविध रूपों को साकार करने वाले शब्द-चित्रों को 'रेखा-चित्र' की संज्ञा प्रदान की गई। रेखा-चित्र न कहानी है और न गद्यगीत; न निबन्ध है और न संस्मरण; वह एक स्वतंत्र कला है। रेखा-चित्र केवल व्यक्तियों का ही नहीं, स्थान, वातावरण और भावात्मक व्यक्तित्व का भी खींचा जाता है। रेखा-चित्रकार और कैमरामैन का काम एक-सा है। जैसे कैमरामैन जो जैसा है, उसको वैसा ही कैमरे द्वारा चित्रित करने का प्रयत्न करता है। किन्तु यथातथ्य चित्रण में मात्र कैमरे का लैंस ही काम नहीं करता बल्कि कैमरामैन की 'ऐंगिल' देने और 'पोज' लेने की पैनी दृष्टि भी बड़ा काम करती है। रेखा-चित्रकार भी एक पैनी दृष्टि रखता है। वह वस्तु या व्यक्ति में स्थित अनेक प्रभावों और प्रतिक्रियाओं के दर्शन करके मात्र शरीर का ढाँचा ही नहीं खींचता, बल्कि मन, आत्मा और जीवन की विशेषताओं का भी नक्शा अपनी रेखाओं में प्रस्तुत करता है। 'रेखा-चित्र' की सीमा बड़ी नहीं हो सकती। उसका अधिक विस्तार उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। उसमें गठन होना चाहिए और शब्द-रेखाओं में अभिव्यक्ति की शक्ति। 'थम्ब-नेल स्कैच' लघुतम रेखा-चित्र का आधुनिकतम नमूना है, जिसमें चार-छः पंक्तियों में ही चित्र प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे रेखा-चित्र अभी हिन्दी में नहीं लिखे जाते। किन्तु रेखा-चित्र 'लिरिक' नहीं है, इसलिए कलाकार व्यक्ति का रेखा-चित्रण करते हुए भी समाज को नहीं भूल सकता। वह व्यक्ति-प्रधान होकर सबल रेखा-चित्र नहीं अंकित कर सकता। इसके लिए उसे जनजीवन का सामीप्य प्राप्त करना अनिवार्य है।

इसीलिए गीतिकाव्य में व्यक्ति-प्रधान महादेवी की भावना रेखा-चित्रों में समाज-प्रधान हो गई है। रेखाचित्रों में उनकी अनुभूति मात्र प्रणयिनी की अनुभूति नहीं। उनमें मातृत्व की ममता, बहन का स्नेह और नारीत्व की विविध अनुभूति की अभिव्यक्ति है। उनमें जन-जीवन में व्याप्त दुख, दैन्य, अशिक्षा, उत्पीड़न आदि के प्रति विराट् सहानुभूतिपूर्ण करुणा और ममता है—कहीं-कहीं विद्रोह भी है किन्तु वह ममता और करुणा से अभिभूत है। किन्तु महादेवी की कला में यदि कहीं जन-जीवन और समाज का प्रतिबिम्ब मिलता है तो इन रेखा-चित्रों में ही, इसलिए महादेवी के साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है। दूसरे इन रेखा-चित्रों का सम्बन्ध महादेवी के जीवन से है। जिन पात्रों का चित्रण इनमें हुआ है

वे कलाकार की जीवन-कथा का हृदय छूने वाले अंग हैं। 'अतीत के चल-चित्र' की भूमिका में उन्होंने लिखा है :

"इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अँधेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुँधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं; उसके बाहर तो वे अनंत अन्धकार के अंश हैं। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं वह बाहर रूपांतरित हो जाएगा।"

यद्यपि, 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चल-चित्र' में महादेवीजी के जीवन-संस्मरण भी निहित हैं, फिर भी उनमें रेखा-चित्र ही अधिक हैं। उनके रेखा-चित्रों के पात्र ऐतिहासिक महापुरुष नहीं बल्कि भारतीय जन-जीवन के वे कुरूप चिह्न हैं, जो कुछ तो अशिक्षा और शोषण से दीन और सरल बन गए हैं और कुछ महादेवी की ममता और करुणापूर्ण सहानुभूति से। दलित और पिछड़ा हुआ मानकर जिन व्यक्तित्वों की हम उपेक्षा कर देते हैं, महादेवी ने अपनी विराट् सहानुभूति के सहारे उनका अंतरंग अध्ययन कर इन रेखा-चित्रों में प्रस्तुत किया है। इनमें कहीं-कहीं दबा हुआ विद्रोह भी मुखरित होता है। विशेषतः भारतीय नारीत्व के विविध रूपों का अध्ययन भी इनमें प्रस्तुत किया गया है।

'स्मृति की रेखाएँ' में पहला रेखा-चित्र एक देहाती वृद्ध महिला का है, जिसका नाम भक्ति है, जो अशिक्षा और अज्ञान के अंधकार में अनेक दुर्गुणों के साथ कुछ ऐसे गुण भी रखती है, जो उसके व्यक्तित्व का प्रबल आकर्षण हैं। दूसरा चित्र एक चीनी फेरीवाले का है, जो अपने देश को छोड़कर अपनी खोई हुई बहिन को तलाश करने के लिए कपड़े की फेरी लगाता फिरता है। विगत जीवन में उसने कितना कष्ट और व्यथा उठाई, इसका चित्र महादेवी की करुणापूर्ण शब्द-रेखाओं में उभरकर सामने खड़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस संग्रह में गाँव की गरीबी, पहाड़ी श्रमपूर्ण अभावग्रस्त जीवन, धोबियों की पारिवारिक झाँकी के मन हिला देने वाले भावनापूर्ण रेखा-चित्र हैं।

'अतीत के चल-चित्र' में पहले रेखा-चित्र में श्रमजीवी ग्रामीण नौकर के जीवन की झाँकी है, जो घर से छुटपन में भाग आता है और महादेवी के परिवार में बचपन से प्रौढ़ावस्था तक ईमानदारी से काम करता है—भृत्य रामू के चरित्र के गुण-दोष उभरकर सामने आ गए हैं।

दूसरे रेखा-चित्र में एक बाल-विधवा का चित्रण है, जो परिवार के अत्याचार और उपेक्षापूर्ण वातावरण में बिना बोले ही घुट-घुट के अपना जीवन बिताती है। बिना बोले ही उसकी करुण आँखें उसके जीवन की तमाम वेदना को व्यक्त करती हैं।

तीसरे रेखा-चित्र में विमाता के दुर्व्यवहार से पीड़ित एक निरीह बालिका का चित्रण है।

चौथे रेखा-चित्र में भंगियों के पारिवारिक चित्रण के साथ उपेक्षित भारतीय नारीत्व के रूपदलित समाज की नारी सबिया का कर्मठ चरित्र है, जो अशिक्षित और पीड़ित होते हुए भी उत्सर्ग की महान् भावना से अनुप्राणित है।

सब्ज़ी बेचने वाले अंधे अलोपी, बदलू कुम्हार और कर्मठ पहाड़ी महिला लक्ष्मी के रेखा-चित्र जन-जीवन के विविध रूप हैं।

इन चित्रों के चरित्र लेखिका के विगत और वर्तमान से साक्षात सम्बन्ध रखते हैं; इसलिए इन संग्रहों में रेखा-चित्र ही नहीं हैं, रेखा-चित्र के अतिरिक्त संस्मरण भी हैं जिन्हें व्यक्ति-प्रधान निबन्ध भी कहा जा सकता है, किंतु इन चलचित्रों और स्मृति की रेखाओं में जो रेखा-चित्र हैं, उनमें विशेष बल है और वे हिंदी साहित्य के लिए गौरव की वस्तु हैं। चीनी फेरी वाले के रेखा-चित्र को हिंदी के प्रसिद्ध संस्मरण लेखक और रेखा-चित्रकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने साहित्य का चिर-स्मरणीय रेखा-चित्र बताया है। अलोपी, रामू, बदलू और सबिया के रेखा-चित्र भी हिंदी में अपने ढंग के सर्वप्रथम और सफल रेखा-चित्र हैं।

महादेवीजी के रेखा-चित्रों में पात्र स्वयं कम बोलता है, इसलिए संवाद कम हैं किंतु जितने संवाद हैं वे चरित्र की सूत्ररूप में व्याख्या करने में समर्थ हैं। लेखिका स्वयं उनके विषय में अधिक बोलती है, किंतु उसके बोलने में ही चरित्र बोल उठता है। क्योंकि इन रेखा-चित्रों में संस्मरण के अंश भी विद्यमान हैं, इसलिए लेखिका की दृष्टि चरित्रों को चारों ओर से घेरे रहती है। वह चरित्र को अपनी ममता और करुण सहानुभूति की गोद में बैठाकर उसकी रेखाएँ खींचती है। महादेवी कवि हैं, इसलिए रेखाओं में भावना और कल्पना के रंग भरती हैं। वे सादी रेखाओं से ही चित्र को नहीं खींचतीं। उनके वाक्य लम्बे होते हैं किंतु शिथिल नहीं—उनमें भावनाओं की अभिव्यक्ति की प्रभावपूर्ण चुस्ती है। इन रेखा-चित्रों में चरित्र की अतल गहराई में घुसकर मानवीय भावनाओं के मोती चुन-चुनकर सतह पर लाने का सफल प्रयास है। वे केवल रेखाओं में आकृति और मुद्रा को ही अंकित नहीं करतीं, वरन् मन के सूक्ष्म-भावों को भी उभारकर शब्द-रेखाओं में बाँधने का प्रयत्न करती हैं। हिंदी में रामवृक्ष बेनीपुरी चोटी के रेखा-चित्रकार हैं किंतु उनके रेखा-चित्र कहानी या कथा-प्रधान होते हैं और आकृति प्रमुख होती है, किंतु महादेवी के रेखा-चित्रों में कहानी के साथ कविता भी रहती है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अधिकतर बड़े लोगों के रेखा-चित्र और संस्मरण लिखे हैं, किंतु महादेवी ने जीवन में आनेवाले उन उपेक्षित चरित्रों को अपनाया है, जिनमें भारतीय समाज की ज्वलंत समस्याएँ साकार हैं।

इन रचनाओं में लेखिका का समाज के प्रति एक जागरूक दृष्टिकोण भी है। कवि के रूप में जितनी वे पार्थिव समस्याओं से दूर हैं—इन रचनाओं में उतनी ही समीप हैं। यद्यपि इनमें लेखिका युग-चेतना के अनुरूप विद्रोहिणी नहीं, फिर भी उसमें जैसे बुद्ध की करुणा और माता के विराट् मातृत्व के दर्शन होते हैं। वह

घृणा से अधिक ममता और सहानुभूति में विश्वास करती है, इसलिए उसकी विद्रोह की आग पर करुणा और सहानूभूति का हिम आच्छादित है, फिर भी कहीं-कहीं वह दबाया नहीं जा सका है, विशेषतः नारी के प्रति होने वाले अत्याचार से वह व्याकुल हो उठती हैं। लछमा का चित्र खींचते हुए नारी पर होनेवाले पुरुष के अत्याचार के प्रति वह कह उठती हैं :

"एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष-समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहतीं।"

'अतीत के चल-चित्र' के छठे संस्करण में व्यभिचार से उत्पन्न संतान की माँ को समाज जब सहन नहीं कर सकता और जब कि अबोध नारी को धोखा दिया गया है तब वह कह उठती हैं :

"यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशु को गोद में लेकर साहस से कह सकें कि बर्बरो ! तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व—किसी प्रकार न देंगी, तो इनकी समस्याएँ तुरन्त सुलझ जावें।"

इस प्रकार इन रेखा-चित्रों में विद्रोही वाणी भी है। इनमें सामाजिक चेतना है। जीवन के प्रति महादेवी के दृष्टिकोण का परिचय देने के लिए उनकी सामाजिक कला की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं, जिनमें व्यक्ति में समय की जागरूक समस्याओं की हलचल को देखने का प्रयत्न किया गया है।

महादेवी में रेखा-चित्र लिखने की प्रबल शक्ति है। वे एक चित्रकार हैं और गीति-काव्य में भावना-चित्रों को प्रस्तुत करने वाली श्रेष्ठ कलाकार हैं। यद्यपि संस्मरण का संस्पर्श होने से उनकी कुछ रचनाएँ पूर्ण रेखा-चित्र नहीं कही जा सकतीं, किंतु उनमें भी रेखा-चित्रों के स्फुट अंश दिखाई पड़ते हैं। हिंदी में छायावादी शैली के गद्य, सबल रेखा-चित्र और भावना में संस्मरण की दृष्टि से 'स्मृति की रेखाएँ' और 'अतीत के चल-चित्र' उनकी सबल और ऐतिहासिक रचनाएँ हैं जिनमें उनका रेखा-चित्रकार का रूप प्रधान है।

19

'नीरजा' (एक विश्लेषण)

विजयेन्द्र स्नातक

['नीरजा' महादेवीजी के अनुभूति एवं चिंतन-प्रधान अट्ठावन गीतों का संकलन है। काव्यांगों की दृष्टि से यह मुक्तक गीति-काव्य के भीतर आती है। आत्म-साक्षात्कार का आनन्द पाकर जैसे साधक परितोष पाता है वैसा ही परितोष भाव 'नीरजा' की अनेक कविताओं में व्यक्त हुआ है। जिन कविताओं में कल्पना का विशेष आग्रह न होकर अनुभूति को चित्रित किया गया है, निःसंदेह वहाँ काव्यानन्द के साथ एक प्रकार की नैसर्गिक रसानुभूति भी उपलब्ध होती है।

सचमुच 'नीरजा' के विरह, दुःख, वियोग और अद्वैतपरक गीतों में एक ऐसी चमक है जो एक साथ मानस को आलोक से परिपूर्ण कर देती है। जैसे रात्रि के तमाच्छन्न आकाश में उल्का का प्रकाश सहसा फैलकर उजियाले की दिव्य छटा दिखाता है वैसे ही इन गीतों का आलोक भी, जहाँ कहीं गम्भीर चिंतन में कवयित्री नहीं उतरी है, वहां काव्य के चरम सौन्दर्य का दर्शन कराता है।']

महादेवी वर्मा की रचनाओं में 'नीरजा' का स्थान कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, रसानुभूति के उत्कर्ष के साथ अभिव्यंजना का क्रमिक विकास 'नीरजा' में स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'नीरजा' कवयित्री की काव्यानुभूति की तीसरी सोपान हैं, किन्तु इस सोपान तक पहुँचते-पहुँचते उसे मंजिल की आभा-मंडित चोटियाँ दिखाई पड़ने लगी हैं। कल्पना का प्राधान्य अब क्षीणतर होकर चिन्तन और अनुभूति के रूप में परिवर्तित हो गया है, आनन्द और उल्लास का स्निग्ध आलोक कवयित्री के अंतर में नीरजा' के विकास में सक्षम होकर उसे हर्ष के वातावरण में विचरण करने की प्रेरणा दे रहा है। श्री रायकृष्णदास के शब्दों में—" 'नीरजा' में 'नीहार' का उपासना-भाव और भी सुस्पष्टता और तन्मयता से जाग्रत हो उठा है। इसमें अपने उपास्य के लिए केवल आत्मा की करुण अधीरता ही नहीं, अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है। 'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है। मानो, कवि की वेदना, कवि की करुणा अपने उपास्य के चरणस्पर्श से पूत होकर आकाश-गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींच देने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।" इन

पंक्तियों में 'नीरजा' को अश्रुमुखी वेदना के कणों के साथ आत्मानन्द के मधु से मधुर कहा गया है। संसार को अपनी शांत-स्निग्ध भावधारा से आप्लावित करने वाली 'नीरजा' को कवयित्री की उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण रचना हमने प्रारम्भ में इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण कहा है। 'नीरजा' में काव्यानुभूति के उत्कर्ष के साथ आनन्दानुभूति के मनोरम स्थलों का भी अभाव नहीं है।

'नीरज' महादेवीजी के अनुभूति एवं चिंतन-प्रधान अट्ठावन गीतों का संकलन है। काव्यांगों की दृष्टि से यह मुक्तक गीति-काव्य के भीतर आती है। अन्तर्मुखी सूक्ष्म भावनाओं को व्यक्त करने के लिए गीति-काव्य सर्वश्रेष्ठ साधन स्वीकार किया जाता है। यद्यपि गीत शब्द के विषय में आज-दिन भ्रांतियों का अभाव नहीं—सभी शीर्षक-हीन लघु-काय कविताओं को लोग गीति-काव्य के नाम से व्यवहृत करते हैं। गीति-तत्त्व के अभाव में हमने अनेक कविताओं को गीति-काव्य में परिगणित होते देखा है किन्तु गीत की यदि सीमा-मर्यादा निधारित की जाए तो संगीत और काव्य के समुचित समन्वय को ही गीत कहा जा सकता है। संगीत के अन्तर्गत उसका प्रधान कर्म गेयता का होना नितांत आवश्यक है। महादेवीजी के गीतों में हम इन दोनों तत्त्वों के पूर्ण समावेश के साथ अंतर्दर्शन और आत्म-निष्ठता की प्रधानता देखकर उनकी प्रभावोत्पादकता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। 'नीरजा' के गीतों में रागात्मक अनुभूति की तीव्रता एक ऐसा समाहित प्रभाव उत्पन्न करती है कि कुछ क्षणों के लिए मानसिक आवेगों का प्रसार गीत के भाव के अतिरिक्त कहीं और जाता ही नहीं। कहना न होगा कि ऐसा मोहक प्रभाव गीतों के कला-पक्ष की परिपूर्णता के कारण उत्पन्न नहीं होता और न उसकी संगीतात्मकता का ही यह फल है—यह तो निश्चय ही गीतों के अन्तराल में समाविष्ट सूक्ष्म भाव-गरिमा है जो पाठक को अपने में लीन किए रखने की अनुपम शक्ति रखती है। जिन पदों में यह भाव-अभिव्यंजना की दुर्बोधता या भाव की अति सूक्ष्मता के कारण अव्यक्त रह गया है, वहाँ कलापक्ष के चमत्कार पर पाठक नहीं रीझता। 'नीरजा' में ऐसे अनेक गीत हैं जो अपनी भाववस्तु की गहनता के कारण अज्ञेय से बने रह जाते हैं। उनकी यह अज्ञेयता क्यों है यह जानने के लिए कवयित्री की भावाभिव्यंजन-शैली की अपेक्षा भाव-वस्तु का अनुशीलन ही अधिक आवश्यक है। भाव-प्रसार की क्षमता जिन गीतों में न्यून मात्रा में है उनमें भी गेयता और आत्मनिष्ठ भावना का अभाव नहीं है।

जैसा कि हमने प्रारम्भ में कहा है कि 'नीरजा' के गीत अनुभूति और चिन्तन-प्रधान होने के कारण 'नीहार' और 'रश्मि' के गीतों से अधिक आत्म-चेतनापूर्ण हैं। आत्म-चेतना की जागृति गीति-काव्य की आत्मा है। अपने हृदय का हर्ष-विषाद प्रकट करने के लिए गीत एक ऐसा सरस माध्यम है जिसमें हमारी भावना और अनुभूति को प्रतिफलित होने का पर्याप्त अवकाश मिलता है। महादेवीजी ने स्वयं गीत का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "गीत का चिरंतन विषय

रागात्मिका-वृत्ति से सम्बन्ध रखने वाली सुख-दुखात्मक अनुभूति से ही है। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्दरूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।'' 'नीरजा' के गीतों में उक्त परिभाषा को पूर्णरूप से चरितार्थ होते पाते हैं।

'नीरजा' के गीत-तत्त्व के मूल रूप को समझने के लिए उसकी अभिव्यंजना-शैली के अन्य उपादानों का हृदयंगम करना भी आवश्यक है। महादेवीजी ने जिस युग में काव्य-क्षेत्र में पादार्पण किया वह छायावाद का उत्कर्षकाल था, छायावादी अभिव्यंजना इतनी समृद्ध और परिपुष्ट हो चुकी थी कि उसमें निम्नकोटि के प्रतिभाहीन कवि के पाँव जमना सम्भव न था। महादेवीजी ने छायावादी काव्य-प्रणाली की अभिनव मान्यताओं को स्वीकार करके भी उसमें अपना व्यक्तित्व सबसे पृथक् रखा, इसी व्यक्तित्व की स्थापना में उन्हें छायावादी प्रवृत्तियों में नूतनता का संचार करना पड़ा जो उनकी रहस्यानुभूति का मूल बीज है। महादेवी-जी के कवि-व्यक्तित्व की विशिष्टता उनके काव्य-वैशिष्ट्य का प्राण है, छायावाद का मूलदर्शन समझने में उन्होंने अपना नवीन मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, और हमें यह कहने में संकोच नहीं कि छायावाद के मूल-दर्शन को जिस समग्रता के साथ इन्होंने पहचाना कदाचित् 'प्रसाद' जी को छोड़कर किसी अन्य छायावादी कवि ने उतनी व्यापकता से उसे ग्रहण नहीं किया। छायावाद के दर्शन का मूल उन्होंने 'सर्वात्मवाद' में बताकर अपनी काव्य-धारा में केवल प्रकृति के प्रति ही प्रीति व्यंजित नहीं की प्रत्युत जड़-चेतन सभी में सार्वत्रिक प्रीति एवं प्रणय निवेदन देखा। इस सर्वात्मवाद का आदर्श भले ही प्राचीन आत्मवादी दर्शनों या उपनिषदों के समान ब्रह्मपरक न हो किन्तु इसमें प्रिय के प्रति आकुल आत्मा की पुकार बड़े ऊर्जस्वित स्वरों में गूँजती है। उपनिषदों का आत्मवाद दर्शन के चक्रव्यूह में आकर फँस गया था और शंकर के अद्वैतवाद सिद्धान्त के प्रवर्तन से पहले तक वैराग्य-भावना के प्रचार का ही प्रकारान्तर से साधन बना रहा। महादेवीजी ने अपनी कविता में रहस्य-भावना को स्थान देते हुए यद्यपि अद्वैत मत की अवहेलना नहीं की है किन्तु उनका अद्वैत काव्य की मृदुल-मोहक सरणियों में होकर माधुर्य-सिक्त हो गया है। उनकी रहस्यभावना में भक्तों और निर्गुणियों की रूढ़ि के अनेक स्थल पर समावेश होने का कारण भी उनकी आत्मनिवेदन की परम्परा तथा यही 'मधुरतम व्यक्तित्व की सृष्टि' कहा जाता है। काव्यात्मक परिच्छेद में रहस्य-भावना के साथ ईश्वरोन्मुख प्रेम की अभिव्यक्ति चिर-अनादि से चली आ रही है, कवयित्री ने 'नीरजा' के इस प्रकार के प्रेम का बड़ा सजीव और सुन्दर वर्णन किया है। इस वर्णन में जिस अलौकिक 'प्रिय' का आह्वान, मिलन, विछोह, निवेदन, उत्सर्ग और समर्पण है वह भौतिक अस्तित्व न रखते हुए भी उसी प्रकार भौतिक है जिस प्रकार कबीर, जायसी आदि की रहस्यवादी कविता में। अन्तर्मुखी भाव-नाओं की प्रधानता के कारण महादेवीजी अपनी रचनाओं में प्राकृतिक सुख-दख

अथवा उसके सामंजस्य का कोई उल्लेख नहीं करतीं। प्राकृतिक दृश्यों का बाह्य-अंकन भी इसी कारण उनकी कविता में अपेक्षाकृत विरल है। यह ठीक है कि अन्य छायावादी कवियों की भाँति वे भी प्राकृतिक पदार्थों को चेतन अस्तित्व प्रदान करती हैं और कल्पना के द्वारा उन्हें मूर्त रूप देकर उनमें भावनाओं का आरोप भी करती हैं, किन्तु इस प्रक्रिया में उनकी अपनी मौलिकता निर्माण-चातुरी में है, उनके उपकरण अन्य छायावादी कवियों से कुछ इतर कोटि के होते हैं, इसीलिए उन्हें छायावादी होने पर भी रहस्यवादी कोटि में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है। रहस्य-वाद का प्रसार चिन्तन-क्षेत्र में ही होता है। अपनी पहली रचना 'नीहार' से ही महादेवीजी अद्वैतवाद का सहारा पाकर इस ओर अग्रसर हुई हैं, किन्तु 'नीरजा' में आकर वे चिन्तनमात्र से अद्वैत भावना को पल्लवित नहीं करतीं। अनुभूति का आश्रय भी उनका सम्बल बनकर उन्हें रहस्योन्मुख करता है। 'नीरजा' की कविताओं में तो वे प्रियतम को अपने अन्तर में बसा हुआ देखकर तुष्ट भी होती हैं। आत्म-साक्षात्कार का आनन्द पाकर जैसे साधक परितोष पाता है, वैसा ही परितोषभाव 'नीरजा' की अनेक कविताओं में व्यक्त हुआ है। जिन कविताओं में कल्पना का विशेष आग्रह न होकर अनुभूति को चित्रित किया गया है, निस्सन्देह वहाँ काव्यानन्द के साथ एक प्रकार की नैसर्गिक रसानुभूति भी उपलब्ध होती है।

रहस्यवादी कविता में आत्मा और परमात्मा के विरह का वर्णन मिलन और दर्शन की अपेक्षा अधिक मार्मिक और आकर्षक होता है। 'नीरजा' में भी विरह-दशा का वर्णन बहुत ही श्लाघ्य और मनोरम है। प्रियतम के विरह से भी जीवन की सार्थकता का अनुभव हो सकता है, जीवन को विरह का जलजात बताते हुए 'नीरजा' के विरहजन्य उपादानों से ही निर्माण का विवरण प्रस्तुत किया गया है:

"विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,
जीवन विरह का जलजात !
आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल-कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात,
जीवन विरह का जलजात !"

प्रिय की अनुभूति के वर्णन-अद्वैत-भावना के साथ 'नीरजा' में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं। प्रियतम का सान्निध्य पाकर आत्मा अहंकार से तृप्त नहीं होती वरन् वह बेसुध-सी होकर उसमें तादात्म्य-सुख पाती है, उसे प्रिय-परिचय की आकांक्षा भी नहीं रहती, जग-परिचय की इच्छा नहीं रहती, स्वर्ग और अप-वर्ग में लय होने की स्पृहा भी निःशेष हो जाती है :

"तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या !

तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति
भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या
तुम मुझमें प्रिय! फिर परिचय क्या!"

तादात्म्य के स्वरूप-वर्णन में महादेवीजी ने दोनों का पार्थक्य जिस काव्यमयी शैली से—लय किया है वह निराला के 'तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग और मैं चंचल-गति सुर सरिता'—का ध्यान दिला देता है। यथार्थ में, प्रेयसि और प्रियतम के पृथक् अस्तित्व का भ्रम ही हमारे मोहपाश का कारण है, उसे समझने से दोनों की एकता समझी जा सकती है:

"चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं, सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय!
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या!"

संसार के समस्त पदार्थों में गति और परिवर्तन उपस्थित करने वाला असीम शक्ति-युत प्रिय विश्व के कण-कण में व्याप्त रहकर भी हमें दूर लगता है और विरही आत्मा युग-युगांतर से करुण विलाप करके उसकी वियोग-ज्वाला में जलता रहता है। 'नीरजा' के 'पथ देख बिता दी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं'—गीत में प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा करके इस भाव को बड़ी सरस शैली से व्यक्त किया है। अपनी रहस्यानुभूति को लौकिक रूप के द्वारा व्यक्त करने में महादेवीजी को आशातीत सफलता मिली है। 'रश्मि' और 'नीहार' में भी लौकिक रूपकों की प्रचुरता है, किन्तु 'नीरजा' में तो इनकी छवि देखते ही बनती है। इन रूपकों में भी छटा उस पर स्थल में और दीप्तिमय हो जाती है जब कवयित्री अपने अंतर के हर्षातिरेक में बेसुध होकर गीत लिखने बैठती हैं। हृदय की सच्ची अनुभूति के अंकन में लीन होकर जब वे गा उठती हैं तब उसमें न कहीं कृत्रिमता रहती है और न कहीं अस्पष्टता। नीचे के गीत में स्वाभाविक सरल भाव की स्निग्ध व्यंजना देखकर महादेवीजी की कला का मूल्यांकन करिए:

"बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुम से हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ!

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !"

आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन 'नीरजा' के गीतों में मधुर मात्रा में है। रहस्यवाद की भावना को व्यक्त करने के लिए साधारणतः चार मुख्य स्तरों का क्रमिक विकास होता है जो महादेवीजी की 'यामा' में संकलित चारों कृतियों में देखा जा सकता है। वैयक्तिक सुख-दुख की सीमा को पारकर जब आत्मा दुख-वेदना के द्वारा भी सुख और हर्ष का अनुभव करने लगती है तभी भावात्मक रहस्यवाद का चरम उत्कर्ष काव्य में आता है। भावनात्मक रहस्यवाद के चित्र प्रस्तुत करने वाले कवि में लौकिक सुख-दुख को अलौकिक में लीन करने की क्षमता होना अनिवार्य है। महादेवी ने स्वयं लिखा है : " 'नीरजा' और 'सांध्य-गीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिससे अनायास ही मेरा हृदय सुख-दुख में सामजंस्य का अनुभव करने लगा।" यही कारण है कि 'नीरजा' में व्यक्त वेदना के गीत आनन्द का पथ प्रशस्त करते हैं, दुख का नहीं। यह वेदना अलौकिक होकर आत्मानन्द से परिपूर्ण हो जाती है और प्रियतम के पास ले जाने में सहायक होती है। 'नीरजा' का पहला ही गीत जिस अश्रु-नीर को लेकर अवतीर्ण होता है वह 'दुख से आविल सुख से पंकिल' है। वह 'जीवन पथ का दुर्गमतम तल, अपनी गति से कर सजल सरल' युग-तृषित तीर को शीतल करता है। 'कौन तुम मेरे हृदय में' गीत लिखते हुए भी इसी प्रकार की वेदना के मधुर रूप को अङ्कित किया गया है। 'पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में ?' कहकर वेदना द्वारा ही उसकी प्राप्ति कही गई है। वेदना और दुख की स्थिति को महादेवीजी सदैव उच्च स्थान देती हैं—"दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।" दुख के आत्मिक रूप को उन्होंने अपनी कविता में मुखरित किया है। प्रियतम के आह्वान में भी दुख-मार्ग का संकेत इस बात का द्योतक है कि वे दुख को त्याग, उत्सर्ग और समर्पण का साथी-संगी मानती हैं।

दुखवाद 'नीरजा' के गीतों में जहाँ कहीं व्यक्त हुआ है वहाँ लौकिक सीमाओं से ऊपर अलौकिक आनन्द-पथ को प्रशस्त करता हुआ ही है :

"तुम दुख बन इस पथ से आना !
शूलों में नित मृदु पाटल-सा, खिलने देना मेरा जीवन,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना,
नित जलता रहने दो तिल तिल, अपनी ज्वाला में उर मेरा,

इसकी विभूति में, फिर ग्राकर ग्रपने पद-चिह्न बना जाना।
तुम दुख बन इस पथ से ग्राना।"

दुख में ग्रपने ग्रस्तित्व को लीन करके ग्रात्मानन्द लाभ करना ही जीवन की सार्थकता है, 'मिटने वालों की बेसुध रंग-रंलियाँ' ही विश्व में सौरभ, राग, ग्रालोक ग्रौर हास्य की सृष्टि करती हैं।

"मेरे हँसते ग्रधर नहीं जग की ग्राँसू लड़ियाँ देखो
मेरे गीले पलक छुग्रो मत मुर्झाई कलियाँ देखो—"

गीत में इसी भाव की सुन्दरतम व्यंजना है।

इस दुख से संतप्त होने पर ग्रात्मा की तितिक्षा इतनी हो जाती है कि वह सब कुछ सहने में ग्रपने को समर्थ पाती है। मृत्यु का भी भय उसे रंचमात्र ग्रातंकित नहीं करता। संसार की समस्त विभीषिकाग्रों पर विजय पाकर परमात्मा के मिलन के लिए उन्मुख ग्रात्मा सतत ग्रपने पथ पर ग्रग्रसर होती रहती है:

"कमलदल पर किरण ग्रंकित चित्र हूँ मैं क्या चितेरे?
है युगों का मूक परिचय देश से इस राह से,
हो गई सुरभित यहाँ की रेणु मेरी चाह से,
नाश के निश्वास से मिट पाएँगे क्या चिह्न मेरे?
नाच उठते निमिष पल मेरे चरण की चाप से,
नाप ली निस्सीमता मैंने दृगों की माप से,
मृत्यु के उर में समा क्या पाएँगे ग्रब प्राण मेरे?"

प्रिय के ग्रद्वैत भाव के साथ ग्रपने भीतर-बाहर समाविष्ट पाकर साधिका को उसकी पूजा-ग्रर्चना का उपक्रम ग्राडम्बर प्रतीत होता है। ग्रपने जीवन को ही वह ग्रसीम का सुन्दर मन्दिर मानती है ग्रौर फिर 'क्या पूजा क्या ग्रर्चन रे!' कहकर इस बाह्याडम्बर की उपेक्षा करती है। सचमुच ही 'नीरजा' के विरह, दुख, वियोग ग्रौर ग्रद्वैतपरक गीतों में एक ऐसी चमक है जो एक साथ मानस को ग्रालोक से परिपूर्ण कर देती है। जैसे रात्रि के तमाच्छन्न ग्राकाश में उल्का का प्रकाश सहसा फैलकर उजियाले की दिव्य छटा दिखाता है वैसे ही इन गीतों का ग्रालोक भी, जहाँ कहीं गम्भीर चिन्तन में कवयित्री नहीं उतरी हैं, वहाँ काव्य के चरम-सौन्दर्य का दर्शन होता है।

'नीरजा' में महादेवीजी की चिन्तन-दिशा में ग्रवश्य उल्लेखनीय परिवर्तन हुग्रा है। ग्रात्मा ग्रौर परमात्मा के ग्रस्तित्व के साथ इसमें प्रकृति या विश्व का ग्रस्तित्व भी रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता हुग्रा दृष्टिगत होता है। द्वैतरहित होकर ही संकल्प-विकल्प की द्विविधा मिटती है। जब कोई भिन्नता नहीं रह जाती तब फिर यह जड़-चेतन सभी तद्रूप भासने लगता है:

"यह क्षण क्या द्रुत मेरा स्पन्दन,
यह रज क्या नव मेरा मृदुतन,

यह जग क्या लघु मेरा दर्पण
प्रिय तुम क्या चिर मेरे जीवन।"

'नीहार' और 'रश्मि' की कविताओं में प्रकृति उनके साथ सहानुभूति प्रकट करती थी, किन्तु 'नीरजा' में आकर कवयित्री को विश्वास हो चला है कि उसके प्रिय के आगमन की बेला सन्निकट है। उनके आगमन से पहले चिर सुहागिनी का आभरण उन्हें अपने अंग-प्रत्यंग पर सजाना है। अतः वसन्त रजनी को शृंगार करने के लिए उत्साहित करती है—प्रकृति की वसन्तकालीन छटा का भी इसी प्रसंग में चित्रण कवयित्री ने कर दिया है :

"तारक मय नव वेणी बंधन
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि वलय सित घन अवगुंठन
मुक्ताहल अविराम बिछा दे चितवन से अपनी
पुलकती आ वसंत रजनी।"

'नीरजा' की मूल-भावना का यथार्थ परिचय देने वाली उनकी 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' कविता है। इस गीत में दीपक कवि के व्यक्तित्व का प्रतीक है। अपने सुकुमार-कोमल शरीर को, अपने जीवन के प्रत्येक अणु को दीपक की वर्त्तिका की भाँति जलाती हुई कवयित्री अपने प्रियतम का पथ आलोकित करना चाहती है। अपने को मोम की भाँति गलाकर आलोक फैलाने वाली दीप-शिखा में विश्व-कल्याण और संसार-सेवा का जो उदात्त आदर्श दृष्टिगत होता है वह काव्य का ही नहीं, संसार का आदर्श है :

"युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश सिन्धु अपरिमत,
तेरे जीवन का अणु गल-गल।"

भाव-पक्ष के साथ ही 'नीरजा' की काव्य-सामग्री बहुत समृद्ध है। प्रकृति के अनेक सुन्दर दृश्य-चित्र, रजनी और दिवस के वर्णन, जहाँ हमारी भावनाओं को उत्तेजित और अनुभूति को तीव्र बनाते हैं वहाँ साथ-ही-साथ प्रकृति-वर्णन के भी सुन्दरतम स्थल प्रस्तुत करते हैं। विभावरी, वसन्त, रजनी, यामिनी आदि के द्वारा कवयित्री ने भावोत्कर्ष की शैली का अच्छा परिचय दिया है। 'नीरजा' में गीतों के साथ लोक-गीतों और उर्दू शैली से रूपांतर करके नवीन गीतों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। गीति-काव्य की नूतन शैली को दृष्टि में रखकर यदि 'नीरजा' के छन्द लय, संगीत, ध्वनि, ताल आदि पर विचार किया जाए तो निस्सन्देह वह छायावादी युग की इस दिशा में अन्यतम श्रेष्ठ रचना है। 'नीरजा' में गीति-काव्य का पूर्ण विकास है, इसमें तो सन्देह का अवकाश है ही नहीं।

20

'यामा' का दार्शनिक आधार

नन्ददुलारे बाजपेयी

['महादेवी के काव्य में वैराग्य-भावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में भी दुख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध संन्यासियों और संन्यासिनियों सरीखी एक चिंता-मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शांति के प्रति एक अशांति महादेवीजी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किंतु इस कारण उनकी कविता में एकरूपता 'मोनोटनी' नहीं आई है, जैसा कुछ लोग आरोप करते हैं। उनमें प्रचुर वैभिन्न्य है।']

'यामा' श्री महादेवी वर्मा का सम्पूर्ण काव्य संग्रह है। इसके चार यामों में उनकी चारों स्फुट रचना-पुस्तकें संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त महादेवीजी की कोई अन्य रचना शायद प्रकाश में नहीं आई है। अवश्य यहाँ मेरा मतलब केवल उनकी काव्य-रचनाओं से ही है। ये सबकी सब मुक्तक पद्य और गीत रूप में हैं, जिनकी संख्या दो सौ से कुछ कम है। साथ ही 'यामा' में महादेवीजी की लिखी भूमिकाएँ और उनके बनाये कितने ही चित्र हैं, जिनसे उनके काव्य पर आवश्यक प्रकाश पड़ता है।

अच्छा होता यदि हम बिना कोई भूमिका बाँधे ही 'यामा' का अध्ययन (यहाँ अध्ययन से मेरा मतलब उसकी विशेषताओं के पर्यवेक्षण से है) आरम्भ कर सकते किन्तु ऐसा करने में एक कठिनाई दीखती है। 'यामा' केवल एक संग्रह पुस्तक ही नहीं है, उसमें महादेवीजी के पूरे काव्य-व्यक्तित्व को हम नवीन काव्यधारा से एकदम अलग रखकर नहीं देख सकते। साम्य और वैषम्य के वे सूत्र हमें संक्षेप में देखने होंगे जिनके द्वारा महादेवीजी सामयिक काव्य-जगत् से बँधी हुई हैं। उनके लिए एक छोटी-सी, उपयुक्त, 'सेटिंग' हमें तैयार करनी होगी।

हिन्दी में महादेवीजी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्य-काल में हुआ था, किन्तु आरम्भ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थीं। मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। इस व्याख्या में आये 'सूक्ष्म' और 'व्यक्त' इन अर्थ-गर्भ शब्दों को हम अच्छी तरह

समझ लें। यदि वह सौन्दर्य सूक्ष्म नहीं है,साकार होकर स्वतन्त्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अंतर्गत नहीं ले सकेंगे। छायावाद के इस सीमांत पर हम स्काट और वाइरन जैसे अंग्रेज़ी के कवियों को पाते हैं जिन्होंने विमोहक और तल्लीनताकारी नारी-सौन्दर्य को लम्बी कथाओं के सूत्र में ताना है, और प्रकृति की अनिर्वचनीय सुषमा को पृष्ठभूमि बनाकर चित्रित किया है। वे प्रकृत छायावादी नहीं कहे जा सकते और छायावाद के दूसरे सीमांत पर वर्ड्सवर्थ को देखते हैं जिसकी प्रकृति के प्रति इतनी सार्वत्रिक प्रीति हैं कि वह व्यक्त सौन्दर्य के प्रति निस्पंद,वेपहचान निगूढ़-सी मालूम देती है; सव कुछ तो सुन्दर ही है, ऐसी भावमयता में मग्न-सी हो गई है। वह भी प्रकृत छायावादी नहीं है। प्रकृत छायावादी तो अंग्रेज़ी में प्राकृतिक सूक्ष्म सौन्दर्य-भावना का एकमात्र अधिष्ठाता 'शैले' ही हुआ है जो एक ओर कुछ समीक्षकों द्वारा (जो सूक्ष्म के विरोधी हैं) हवाई और आसमानी बताया गया है किंतु दूसरी ओर जिसे नास्तिक (अव्यक्त सत्ता का विरोधी) कहे जाने का श्रेय भी प्राप्त है। आशा है, छायावाद की इस मध्यवर्तिनी भूमि पर पाठकों की दृष्टि गई होगी।

मुझे आशा नहीं है कि छायावाद की मेरी यह व्याख्या निकट भविष्य में सर्व-मान्य हो सकेगी, किंतु इसकी दार्शनिक और काव्यात्मक शैली इतना सुस्पष्ट व्यक्तित्व रखती है और यह अन्य निकटवर्ती वादों से इतना पृथक् अस्तित्व बनाये हुए है कि कोई कारण नहीं कि यह आखिरकार एक अलग वाद के रूप में स्वीकार न कर ली जाए। सम्प्रति हिन्दी के अधिकांश समीक्षक छायावाद और रहस्यवाद के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं कर रहे। नवीन काव्ययुग के निर्माता स्वर्गीय प्रसादजी का इस विषय का विवरण विशेष ध्यान देने योग्य है। वर्तमान रहस्य-वाद के सम्बन्ध में वे लिखते हैं : "विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य-लहरी के 'शरीरं त्वं शम्भो' का अनुकरणमात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है,वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा 'अहं' का 'इदम्' से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।"

अव, विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता की भावना सार्वत्रिक भी हो सकती है और एक-एक सुन्दर वस्तुगत भी हो सकती है। शम्भु अथवा आत्मा का शरीर सारा सृष्टिप्रसार ही है, इस दृष्टि से व्यक्त वस्तु-मात्र में सौन्दर्य की एक ही धारा प्रवाहित है। प्रकृति में कुछ भी असुन्दर नहीं, यहाँ व्यष्टि-भेद नहीं है। पुनः प्राकृ-तिक सौन्दर्य के द्वारा अहं (आत्मा)का इदम् (प्रकृति)से समन्वय करने का प्रयत्न व्यष्टि सौन्दर्य को स्वीकार करता है। इस प्रकार प्रसादजी ने व्यष्टि सौन्दर्य-दृष्टि (छायावाद) और समष्टि सौन्दर्य-दृष्टि (रहस्यवाद) में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया। किन्तु मैं इस अन्तर का विशेष रूप से आग्रह करता हूँ क्योंकि इसने दो

विशेष पृथक्-पृथक् काव्यशैलियों की सृष्टि की है। व्यष्टि सौन्दर्यबोध एक सार्व-जनीन अनुभूति है। यह सहज ही हृदयस्पर्शी है, यह सक्रिय और स्वावलम्बिनी काव्यचेतना की जन्मदात्री है। इसे मैं प्राकृतिक अध्यात्म कह सकता हूँ। समष्टि सौन्दर्यबोध उच्चतर अनुभूति है। फिर भी यह प्रत्येक क्षण रूढ़िबद्ध होने की सम्भावना रखती है। इसमें इन्द्रियानुभूति की सहज प्रगति या विकास के लिए स्थान नहीं है। यह कदम-कदम पर धर्म के कठघरे में बन्द होने की अभिरुचि रखती है।

काव्य में यह रहस्यवाद, बड़े-बड़े दुर्दिन देख चुका है। अपने अतिप्राकृत स्वरूप के कारण पहले तो इसकी अभिव्यक्ति ही अतिशय दुर्गम और दुरूह है, किंतु कुछ सच्चे रहस्यवादियों ने कुछ अनोखे रास्ते निकाले भी तो उन पर चलने वाले बहुत से भूठे रहस्यवादी नकलनवीस निकल आए। उन्होंने काव्य की पूरी-पूरी अधोगति कर डाली। सारी प्रकृति को समाहित करने वाले निर्गुण प्रेम की विशुद्ध व्यंजना विषय-वासना का नंगा नाच बनकर रह गई। उपनिषदों का ऊर्जस्वित आत्मवाद सम्पूर्ण कर्त्तव्यों से हाथ समेटने का बहाना सिद्ध हुआ। योग और तंत्र-शास्त्रों की प्रकृति को आत्मा में लय करने की सारी प्रक्रिया जो पूर्ण मनुष्यत्व का साधन थी, अनहोनी सिद्धियों और तामसिक उपचारों का दूसरा नाम बन गई। शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक सबलता का प्रचारक रहस्यवाद 'ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा' गाकर भीख माँगने वालों का ब्रह्मास्त्र बन गया। एक ओर तो यह नकली रहस्यवाद की प्रगति हुई और दूसरी ओर रूढ़िबद्ध होकर रहस्यकाव्य विनय के पदों, भक्तिगीतों, धार्मिक आख्यानों आदि में परिणत हो गया। अवश्य ही ईरान और फारस के कुछ निर्गुनियों ने रहस्यकाव्य की वास्तविक मर्यादा स्थिर रखी किन्तु उनकी संख्या अँगुलियों पर गिने जाने के योग्य है। यह इतनी भी है, यह कम गौरव की बात नहीं क्योंकि हम यह कह चुके हैं कि रहस्यानुभूति एक अति विरल वस्तु है और उसकी काव्य-प्रक्रिया भी उतनी ही दुरूह और दुःसाध्य है।

रहस्यकाव्य की मुख्य परम्पराओं में हम नीचेलिखे भेदों की परिगणना कर सकते हैं। यदि हम प्रकृति की ओर से आत्मसत्ता की ओर आगे बढ़ें तो इस गणना का क्रम इस प्रकार होगा—विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप, यह पहली सीढ़ी है। इसके अंतर्गत सुख और दुख का सामंजस्य, जिसे प्रसादजी ने समरसता कहा है, आ जाता है। यही प्रसादजी की 'अपरोक्ष अनुभूति' भी है। महादेवीजी ने इसे छायावाद की सीमा में मानकर एक-दूसरे ढंग से कहा है : "छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महा-प्राण बन गई अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जलकण और पृथ्वी के ओस बिंदुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।" वास्तव में यह रहस्यवाद का पहला और व्यापक उपक्रम है जिसमें भावना-बल से 'एकोऽहं बहुस्याम्' को 'एकोऽहं' की

ओर प्रतिवर्तित करते हैं। सांसारिक सुख-दुख, राग-विराग आदि जितने भी द्वन्द्व हैं सबको एक ही चेतन से सम्बद्ध करने की यह प्रणाली रहस्यवाद के प्रथम सोपान पर मिलती है। इस सोपान पर हम महादेवीजी को नहीं पाते। यद्यपि अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के विकास के सिलसिले में उन्होंने लिखा है कि : "पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे हृदय में ही खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक व्यक्त वेदना भी थी; फिर यह सुख-दुःख मिश्रित अनुभूति ही चिंतन का विषय बनने लगी और अंत में अब मेरे मन ने न जाने कैसे उस भीतर-बाहर में एक सामंजस्य ढूंढ़ लिया है, जिसने मुख-दुख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है", किन्तु महादेवीजी के काव्य में प्राकृतिक सुख-दुःख का अथवा उसके सामंजस्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। प्रकृति के किसी भी दृश्य का मानव मनोभाव का आकलन उनकी रचनाओं में नहीं के बराबर है। दृश्य प्रकृति में हिमालय पर ही उनकी एक रचना 'यामा' में देखने को मिली किन्तु वहाँ भी अन्तर्मुखी भावना ही उभर पाई है। प्रकृति के रूपों में, दृश्यों और भावों को महादेवीजी ने चेतना का प्रेरक न रखकर उन सबको एक-एक चेतन व्यक्तित्व-सा दे दिया है। उनकी पहली ही रचना में 'निशा की धो देता राकेश चाँदनी में जब अलकें खोल ; कली से कहता था मधुमास बता दो मधुमदिरा का मोल', यद्यपि व्यक्त सौन्दर्य की भी झलक लिये हुए है किन्तु वहाँ वह गौण है और महादेवीजी की रचनाओं में उत्तरोत्तर गौण होता गया है। आगे चलकर सारी प्रकृति और उसके समस्त उपकरण एक निखिल वेदना की अनेक रूप अभिव्यक्ति के लिए भाँति-भाँति की दौड़ लगाते हैं, जिसे हम इसी निबंध में देखेंगे कि प्रकृति की परिपूर्ण छवि की आत्मरूप प्रतिष्ठा हमें वर्ड्सवर्थ में ही मिलती है। कुछ लोग हिंदी में गुरुभक्तसिंह को वर्ड्सवर्थ का स्थानापन्न मानते हैं, किन्तु प्रकृति की आध्यात्मिकता की अनुभूति गुरुभक्तसिंह में हमें विशेष नहीं मिलती। एक-एक डाली, एक-एक लता, एक-एक पत्ती अथवा उद्भिज्ज को चेतन क्रियाशील उल्लेख कर देने से ही उनकी आध्यात्मिकता प्रकाश में नहीं आती। यह चेतन व्यक्तित्व देने (या 'पर्सानिफाई' करने) की प्रकृति ही ह्रासोन्मुख होकर 'चिड़ियों का विवाह' नामक ग्रामीण गीत में परिणत हो गई है जिससे सब चिड़ियों को विवाह-सम्बन्धी एक-एक काम सिपुर्द किया है। समरसता (सुख-दुःख का आध्यात्मीकरण) और अपरोक्ष आध्यात्मिक अनुभूति का हिन्दी में सबसे सुन्दर उदाहरण प्रसादजी का 'आँसू' काव्य है।

रहस्यवाद के इस सोपान से ऊपर उठने पर हम प्राकृत या अपरोक्ष अनुभूति को छोड़कर परोक्ष अनुभूति के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। महादेवीजी के काव्य की यही भूमि है। परोक्ष अनुभूति के भी कितने ही भेदोपभेद हैं जिन्हें दार्शनिक दृष्टि से तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—सगुण साकार, सगुण निराकार और

निर्गुण निराकार। एक दिव्य व्यक्तित्व पर, वह प्रेममय हो, करुणमय हो अथवा शक्तिमय या आनन्दमय, आस्था रखने वाले सगुण साकार के अनुयायी होते हैं। महादेवीजी की अधिकांश रचना का यही दार्शनिक आधार दीखता है। वे लिखती भी हैं: "मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग-जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस (प्राकृतिक) अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया।" मधुरतम व्यक्तित्व की यह नियोजना महादेवीजी के काव्य में मौजूद है किंतु उसके निकट आत्मनिवेदन करनेवाले बहुत-से भक्त कवि हो गए हैं जिनका धार्मिक दृष्टि से पर्याप्त आदर है किंतु जिन्हें रहस्यकाव्य का स्रष्टा नहीं कहा जा सकता। स्पष्ट है कि महादेवीजी ने अपने इस वक्तव्य में आवश्यक सतर्कता से काम नहीं लिया। यही नहीं, उन्होंने रूढ़िबद्ध धार्मिक काव्य और वास्तविक रहस्य काव्य का स्पष्ट अंतर सदैव अपने सामने नहीं रखा है जिससे उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर प्रकृत अध्यात्म की जगह रूढ़ि के चिह्न मिलते हैं।

सगुण साकार दार्शनिकता का सबसे बड़ा खतरा यही है कि वह निस्सीम सौन्दर्यसत्ता का रहस्य खोकर सीमा रेखाओं में आ जाता और वास्तविक परोक्ष अनुभूति-सम्पन्न काव्य का विषय न रहकर, धर्म और उपासना का आधार बन जाता है। सगुण दार्शनिकों और कवियों ने इस कठिनाई को खूब अच्छी तरह समझा था। इसीलिए उन्होंने बचत के कई उपाय निकाले थे। प्रथम, उन्होंने उस मधुरतम व्यक्तित्व को अलौकिक सत्ता-सम्पन्न अंकित करने की चेष्टा की। इसके लिए दार्शनिकों को दिव्य-सत्ता सम्बन्धी एक नई दार्शनिक प्रक्रिया ही चलानी पड़ी जिसमें उस दिव्य व्यक्तित्व के सभी उपकरणों, उसके नाम, रूप, लीला और धाम को तथा उससे सम्पृक्त वस्तुव्यापार को बार-बार अप्राकृत घोषित करना पड़ा। किंतु काव्य अथवा कलाओं का काम केवल घोषणा से नहीं चलता। उन्हें ऐसी प्रतीक-योजना का सहारा लेना पड़ा जिससे वस्तुतः अलौकिक का आभास मिल सके। कवियों को उस मधुरतम चरित्र के निर्माण में दिव्य सौन्दर्यसृष्टि की अशेष कला समाप्त कर देने पर भी सीमा के अन्दर सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें पद-पद पर उस व्यक्तित्व की महिमा का अलग से निर्देश करते रहना पड़ा, जिस पद्धति को हम 'श्रीमद्भागवत' और 'रामचरितमानस' में भी देखते हैं। फिर भी ससीमता और असीमता, साकारता और रहस्य में जो मौलिक अंतर है उसकी पूर्ति नहीं हुई। फलतः सीता-राम और राधा-कृष्ण की पूर्ण परोक्ष अनुभूति काव्य के अन्दर नहीं हो सकी। तब रामायत कवियों ने रहस्य का पल्ला छोड़कर चरित्र की व्यक्त महत्ता के आग्रह द्वारा महाकाव्य की सृष्टि कर डाली और कृष्णायत

कवियों ने प्रेम और सौन्दर्य की अशेष तरंगिणी बहाकर राधाकृष्ण की जो चरितावली निर्माण की वह रोमांचक भावों से भर गई। किंतु रहस्यवाद के निकट होते हुए भी वह रहस्यकाव्य नहीं कहा जा सकता। अवश्य इस चरित्र के दो प्रधान प्रसंगों—रास और भ्रमरगीत में हम रहस्य काव्य के सारे लक्षण पाते हैं। रहस्य के क्षेत्र में वैष्णव कवियों की वास्तविक सफलता इन्हीं दो प्रसंगों को लेकर है।

जब उस मधुरतम व्यक्तित्व के प्रति आत्मनिवेदन का क्रम आरम्भ हुआ तब तो काव्य स्पष्टतः धार्मिक घेरे में आ गया। यहाँ मेरा मतलब उन विनयगीतों से है जिनका कृष्णकाव्य में भी प्राचुर्य है और जिनसे तुलसीदासजी की 'विनय-पत्रिका' भरी हुई है। इस प्रकार के काव्य में प्रकृत रहस्यात्मक अनुभूतियों की टोह लगाना व्यर्थ श्रम है। मूर्त प्रतीकों में अलौकिक अमूर्त तत्त्व का साक्षात्कार करानेवाली समुन्नत रहस्य-कला उसमें हम नहीं पाते। यदि हममें पर्याप्त काव्य-भावना का विकास होता तो उन्हें उन्नत रहस्यकाव्य कहना हमने कभी का छोड़ दिया होता। धार्मिक काव्य की दृष्टि से उनका आदर सदैव रहेगा, किंतु प्रकृत काव्य की दृष्टि से नहीं।

मेरा यह आशय नहीं है कि 'महादेवीजी ने मधुरतम व्यक्तित्व' की सृष्टि करके रहस्य की इतिश्री कर दी है और न मैं यही कह रहा हूँ कि उसके प्रति उनका आत्मनिवेदन भी धार्मिक कवियों के ही ढंग का है। प्रचुर कल्पना-गुण के कारण महादेवीजी ने रहस्यात्मकता कभी खोई नहीं किंतु उनकी रचनाओं में भक्तों और निर्गुणियों की रूढ़ि भी कम नहीं मिलती। इसे हम आगे चलकर देखेंगे। इसका मुख्य कारण मधुरतम व्यक्तित्व की नियोजना और आत्मनिवेदन की परम्परागत प्रेरणा ही है। किंतु महादेवीजी के पास फिर से लौटने के पहले हम रहस्यवाद की शेष दोनों श्रेणियों को भी थोड़े में देख लें।

सगुण निराकार शैली सूफियों की है। सच पूछिए तो परोक्ष रहस्यकाव्य का सच्चा स्वरूप हमें इन्हीं में मिलता है। प्राकृतिक प्रेम-प्रतीकों के भीतर परोक्ष प्रेम-सत्ता का इतना प्रगाढ़ धाराबद्ध प्रवेश और पुनः-पुनः उस अव्यक्त का नैसर्गिक आवाहन और आलेख हम अन्यत्र कहाँ पाते हैं? अवश्य, जहाँ यह प्रेम कथानक का रूप धारण करता है, वहाँ वही कठिनाई सूफियों के सामने भी आती है जो वैष्णव साकारोपासकों के सामने आई है। यहाँ सूफियों ने कथा को सैद्धान्तिक दृष्टि से रूपक मात्र घोषित किया है किंतु इससे समस्या सुलझ नहीं पाई। फलतः सूफी आख्यानक काव्यों में रूपक की चिंता न कर, सारी वर्णना के भीतर अति मोहक प्राकृतिक सौन्दर्य-तल्लीनता, प्रेम के प्रति परिपूर्ण आत्मविसर्जन और फिर भी उसकी दुष्प्राप्ति का संकट दिखाकर अव्यक्त प्रेम-रहस्य का इंगित किया गया है। इन कथानकों को रहस्यकाव्य कहने में फिर भी संकोच रह ही जाता है। यह स्पष्ट ही इसलिए कि कथा के सूत्र साद्यंत रहस्य की रक्षा नहीं कर सकते और यदि उन्हें रूपक मान लें तो सहज काव्य-सौन्दर्य की हानि हो जाती है। इसीलिए

कथानकों वाले जायसी ग्रादि कवियों को रूपक के स्वरूप की चिंता न कर सारे काव्य को, चाहे वह मायारूपिणी नागमती ग्रथवा विद्यारूपिणी पद्मावती का प्रसंग हो, ग्रात्मविसर्जनकारी ग्रलौकिक प्रेम-पीर से ग्राप्लुत कर देना पड़ा है। फिर भी कथा का चक्र स्थान-स्थान पर बाधक बन ही गया है।

कुछ समीक्षक इसी निराकार प्रेमव्यंजना के भीतर, व्रज में विहरण करने वाली, गिरिधर-मूर्ति की उपासिका, चिरंतन प्रेम ग्रौर चिर-विरहमयी मीरा के काव्य को भी शुमार करते हैं किंतु ऐसा करने का हमें कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं दीखता। जिन्होंने सूरदासजी के 'गोपीविलाप' ग्रौर 'भ्रमरगीत' का ग्रध्ययन किया है उन्हें मीरा को किसी निराकार कृष्ण की उपासिका बना देने की ग्रावश्यकता नहीं प्रतीत होगी। ग्रवश्य मीरा एक नारी थीं ग्रौर गिरिधर के प्रति उनका प्रियतम भाव था किंतु ऐसा ही भाव गोपियों का भी था, जो निराकार की उपासिका नहीं थीं। स्वप्न में प्रियतम के दर्शन ग्रादि के उल्लेख गोपियों के विरह-वर्णन में भी मिलते हैं ग्रौर मीरा में भी। महादेवीजी ग्रौर मीरा दार्शनिक दृष्टि से एक ही परम्परा की ग्रनुयायिनी प्रतीत होती हैं।

निर्गुण निराकार ही ग्राध्यात्मिक दार्शनिकता की चरम कोटि है। एक ग्रखंड, ग्रव्यय चेतन तत्त्व जिसमें त्रिकाल में भी कोई भेद किसी प्रकार सम्भव नहीं, जिस चित स्थिर ग्रात्मतत्त्व के ग्रविचल गौरव में संसार की उच्चतम ग्रनुभूतियाँ भी मरीचिका-सी प्रतीत होती हैं, वह परिपूर्ण ग्राह्लाद जिसमें स्मित-तरंगों के लिए कोई ग्रवकाश नहीं, रहस्यवाद का सर्वोच्च निरूप्य है। इसके ग्रोजस्वी निरूपण उपनिषदों के जैसे ग्रौर कहीं नहीं मिलते। ग्रागे चलकर इसकी महामहिमा का क्षय होने लगा, इसमें विरह के कमज़ोर ग्रंग जुड़ने लगे ग्रौर क्रमशः यह वैराग्यमूलक करुण साधनाग्रों का ग्रधिष्ठान बना दिया गया। काव्य में जब तक इसका केवल सांकेतिक स्वरूप रहा तब तक यह ग्रधिक विकृत नहीं हुग्रा था (उदाहरणार्थ ग्रारम्भिक बौद्ध-साहित्य में) किंतु जब इसमें साम्प्रदायिक शब्दावली प्रवेश करने लगी ग्रौर इड़ा-पिंगला ग्रादि की चर्चा बढ़ गई तब काव्यदृष्टि से इसका ह्रास होने लगा। कबीर की चमत्कार-पूर्ण प्रतिभा ग्रौर ग्रंतर्दृष्टि के फलस्वरूप एक बार फिर यह ग्रक्षर तत्त्व प्रकाश में ग्राया किंतु इस बार यह उतना ग्रोजस्वी ग्रौर महिमामय नहीं था। कारण, इस बार प्रतिस्पर्द्धिनी माया भी दलबल सहित उपस्थित थी। कबीर से ग्रागे बढ़ने पर माया रानी की छाया भी काव्य में ज़ोर पकड़ने लगी ग्रौर क्रमशः ग्रक्षर की सत्ता ग्रसंख्याक्षरों की ग्रंतिम सीमा पर जा पहुँची। जहाँ ग्रारम्भ में भेदों की ग्रस्वीकृति इष्ट थी वहाँ ग्रंत में भेदों का प्राबल्य ही प्रमुख बन गया। ऐसी ग्रवस्था में निश्चल ग्रध्यात्मसत्ता ग्रपने पूर्व गौरव में कैसे स्थिर रहती?

ऊपर मैं प्रसंगवश कह चुका हूँ कि महादेवीजी के काव्य में छायावाद-युग की विशेषताएँ नहीं मिलतीं। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति 'पल्लव' वाले पंतजी का

(इस प्रयोग के लिए क्षमा चाहता हूँ) सा विमोहक आकर्षण उनमें नहीं, इसके बदले वे प्रकृति के एक-एक रूप या उसकी एक-एक वृत्ति को साकार व्यक्तित्व देकर उनके व्यापारों की कल्पना करती हैं जिनमें उनकी समृद्ध कल्पना-शीलता प्रकट हुई है। अवश्य यह कल्पना-बाहुल्य ही छायावाद-युग की एक विशेषता उनके काव्य में दीखती है। किंतु वे कल्पनाएँ सब जगह सीधी और चोट करने वाली नहीं हैं, उनका प्रत्यक्ष रूप सहज आँखों के सामने नहीं आता। कहीं-कहीं तो उन प्रतीकों का वह कल्पित व्यापार हमारे सौन्दर्य-संस्कारों के प्रतिकूल पड़ जाता है और कहीं-कहीं वह इतना क्लिष्ट होता है कि हम ईप्सित सौन्दर्य की झाँकी नहीं पा सकते। इन दोनों का एक-एक उदाहरण मैं देना चाहता हूँ :

"रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर, जब रोती थी उजियाली।।"

यह प्रभात का दृश्य है। रजनी का झिलमिल तारों की जाली ओढ़कर जाना, बड़ी ही सरल और मार्मिक कल्पना है। किन्तु उजियाली का रोना हम साधारणतः कहीं नहीं देखते ? वह प्रायः हँसती ही आती है। यहाँ हमें अपनी अभ्यस्त अनुभूतियों को दबाकर यह कल्पना करनी पड़ती है कि प्रभातकाल की नमी, अथवा ओस—आँसू के रूप में उजियाली रो रही है।

क्लिष्ट कल्पना का एक उदाहरण मैंने यह चुना है :

"निःश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार।
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियों के वन्दनवार।।
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार !
आँसू से लिख-लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।।"

आकाश में रात्रि के समय अचानक बादल छा गए हैं और पानी बरसने लगा है। इसी अवस्था की कल्पना यह जान पड़ती है। अथवा यह रात्र्यंत की कल्पना है। रात्रि के मुक्तावलियों के अभिराम वन्दनवार (तारिकापंक्ति), छिन्न होकर लुट गए हैं। निःश्वासों का नीड़ उसका शयनागार बन गया है (इसका इतना ही अर्थ मेरी समझ में आ पाता है कि रात्रि दुखपूर्ण निःश्वास ले रही है)। तारे बुझ रहे हैं, बूंदें गिरने लगी हैं, वही मानो बुझते तारों के नीरव नयनों का हाहाकार और उसके आँसू हैं जिनके द्वारा यह लिखा जा रहा है; संसार कितना अस्थिर है ! कितनी कल्पना हमें ऊपर से करनी पड़नी है, कृपया विचार कीजिए ? और अब भी मुझे निश्चय नहीं कि मेरा अर्थ ठीक ही है।

जिस क्षण को महादेवीजी की कल्पना ने पकड़ा है—तारों से हँसते हुए आकाश में सहसा मलिन बादलों का छा जाना, अथवा निशान्त में तारों का डूबना, वह काव्योपयुक्त और अति सुन्दर है, किन्तु क्या यही बात उनके इस चित्रण के सम्बन्ध में कही जा सकती है ?

इसके दो कारण मुझे दीखते हैं एक तो यह कि महादेवीजी की कविताएँ

इतनी अन्तर्मुख हैं कि वे प्रकृति के प्रत्यक्ष स्पन्दनों, उनकी ध्वनियों और संकेतों से सुपरिचित नहीं; और दूसरा यह कि वे काव्य के एक-एक बन्द को एक-एक चित्र के रूप में सजाना चाहती हैं, जिसमें वस्तुओं और व्यापारों की योजना संश्लिष्ट हुआ करती है और चूँकि वे मानसिक वृत्तियों और वातावरणों को भी उन्हीं वस्तु-व्यापारों के द्वारा ध्वनित करना चाहती हैं, इसलिए यह कार्य उनके लिए दुसाध्य हो जाता है। उनके इन दीर्घ चित्रणों की तुलना अन्य प्रमुख छायावादियों से कीजिए तो अन्तर आप दीखेगा :

"देख वसुधा का यौवन-भार, गूँज उठता है जब मधुमास।
विधुर उर के से मृदु-उद्गार, कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास।
न जाने सौरभ के मिस कौन संदेसा मुझे भेजता मौन!"

—सुमित्रानन्दन पंत ('मौननिमंत्रण')

अथवा :

"पवन में छिपकर तुम प्रतिपल, पल्लवों में भर मृदुल हिलोर।
चूम कलियों के मुद्रित दल, पत्र-छिद्रों में गा निशि-भोर।।
विश्व के अन्तस्तल में चाह, जगा देती हो तडित्-प्रवाह।।"

—निराला ('स्मृति')

अवश्य ये चित्र अधिक हल्के और अलंकृत हैं, इनमें सूक्ष्मतर रूप-योजना और भावव्यंजना की वह महत्त्वाकांक्षा भी नहीं है, यह हम स्वीकार करेंगे, किन्तु तब हम महादेवीजी से कहेंगे कि वे अपनी उच्चतर कला-आकांक्षा के उपयुक्त सामग्री का भी संचय करें। यह कहना भी उचित न होगा कि जिस सूक्ष्मतर भाव-भूमि के चित्र महादेवीजी देती हैं उसमें अस्पष्टता अनिवार्य है। अस्पष्टता काव्य का कोई गुण नहीं है, यह चित्रण की दुर्बलता ही है। अस्पष्ट, छाया-भावों का चित्रण भी सुस्पष्ट मोती के पानी जैसा भीतर में दमकता और नैसर्गिक होना चाहिए। काव्य की विशेषता तो इसी में है।

महादेवीजी ने भी जहाँ अलंकृत चित्रांकण छोड़कर सीधा रास्ता पकड़ा है, वहाँ बड़ी सजीव कविता का स्रोत बह चला है :

"स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास, देव-वीणा का टूटा तार।
मृत्यु का क्षणभंगुर उपहार, रत्न वह प्राणों का शृंगार।।
नई आशाओं का उपवन, मधुर वह था मेरा जीवन।"

और जहाँ वे कल्पना के अर्द्धस्फुट या दुरूह उपमानों को छोड़कर इसी सरलता के साथ रूपांकण भी करने लगी हैं (यद्यपि ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं) वहाँ उनके चित्र खूब साफ आए हैं; जैसे :

"जाग-जाग सुकेशिनी री,
अनिल ने आ मृदुल हौले शिथिल वेणी-बंध खोले;
पर न तेरे पलक डोले। बिखरती अलकें झरे जाते

सुमन वर-वेषिनी री।
छाँह में अस्तित्व खोये, अश्रु से सब रंग धोये।
मन्दप्रभ दीपक सँजोये, पन्थ किस का देखती तू,
अलस स्वप्न निवेशिनी री !"

पाठक देखेंगे कि यह सौन्दर्य-चित्रण आध्यात्मिक रहस्य-मुद्राओं से परिपूर्ण है, इसे छायावाद की परम्परा में हम नहीं ले सकते। इनमें एक विलक्षण उदासीनता, सात्विकता, शांति और निश्चलता झलकती है। छायावाद की चेतनता, चाञ्चल्य और चटक इनमें नहीं। महादेवीजी के काव्य की यह एक सार्वत्रिक विशेषता है।

किन्तु महादेवीजी की अधिकांश रचनाओं में ऊपर के-से भाव-संकेतक रूप-चित्र नहीं मिलते, भावों का चित्रण ही प्रधानतः मिलता है। मेरी अपनी दृष्टि से रूपचित्रण की सहायता बिना रहस्यवाद की काव्य-कला का पूर्ण प्रस्फुटन नहीं हो सकता। जो स्वयं अदृश्य वस्तु है उसे अस्फुट उपमानों से व्यक्त करना, पाठकों को काव्य-रस से अंशतः वञ्चित ही रखना है। जैसे 'बेसुध पीड़ा' के सम्बन्ध में ये पंक्तियाँ :

"इसमें अतीत सुलझाता अपने आँसू की लड़ियाँ
इसमें असीम गिनता है वे मधुमासों की घड़ियाँ"

किन्तु इनकी गणना कहाँ तक की जाए, यह महादेवीजी की प्रधान काव्य-शैली ही है। तो भी इसके अन्दर कुछ उच्च कोटि की रचनाएँ भी उन्होंने की हैं। जहाँ व्यक्त रूप किसी-न-किसी प्रकार आ गए हैं वहाँ रचना प्रायः सुन्दर हुई है :

"किसी नक्षत्र-लोक से टूट,
विश्व के शतदल पर अज्ञात।
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद,
तरल मोती-सा ले मृदु गात—
नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान !"

अथवा :

"स्मित तुम्हारी से छलक यह ज्योत्स्ना अम्लान,
जान कब पाई हुआ उसका कहाँ निर्माण !
अचल पलकों में जड़ी-सी तारिकाएँ दीन,
ढूँढतीं अपना पता विस्मित निमेषविहीन।"
... ...

"कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?

अनुसरण निःश्वास मेरे कर रहे किसका निरंतर ?
चूमने पद-चिह्न किसके लौटते यह श्वास फिर-फिर ?"

यह पिछला पद प्रसादजी के 'कौन हो तुम इसी भूले हृदय की चिर खोज ?' का स्मरण दिलाता है। यद्यपि महादेवीजी और प्रसादजी की रहस्यभावना में यह सुस्पष्ट अन्तर आता है कि महादेवीजी का झुकाव सदैव करुणा और भक्ति की ओर रहता है जब कि प्रसादजी प्रायः तादात्म्य (वही तू है) का संकेत करते हैं।

'मत अरुण घूँघट खोल री' और 'शृंगार कर ले री सजनि' रहस्यात्मक रूप-विन्यास के सुन्दर उदाहरण हैं।

'सांध्य-गीत' में दार्शनिक एकाग्रता उच्चतर हो उठी है, किंतु काव्य-उपादान उतनी ही मात्रा में समृद्ध नहीं हो पाया। इसीलिए सम्भवतः इन गीतों की रहस्य-भावना ही प्रधान स्थान पा गई है, उपयुक्त रूपयोजना उन्हें नहीं मिल सकी। भावना का वैसा ही विकास होते हुए भी 'सांध्यगीत' में और महाकवि रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' में दो मुख्य अन्तर हैं। उनकी अजेय काव्यशक्ति कभी उसकी भावना का साथ नहीं छोड़ती। भावना की दौड़ में पिछड़ जाने पर ही काव्य को :

"पंकज कली, पंकज कली
क्या तिमिर कह जाता करुण
क्या मधुर दे जाती किरण !"

जैसे अन्योक्ति पद्धति पकड़नी पड़ती है। यद्यपि यह अन्योक्ति ऊँचे दर्जे की है, किंतु अन्योक्ति कितने ही ऊँचे दर्जे की हो, उनकी काव्य से भिन्न बौद्धिकता बिना खटके नहीं रह सकती। दूसरी बात यह है कि रवि बाबू की रचनाओं में कल्पना की जो एकतानता, जो प्रसार, जो अटूट शृंखला मिलती है वह इन गीतों में उतनी नहीं। तो भी छोटे-छोटे टुकड़ों में अपने ढंग की सफाई और काफी काम महादेवीजी के बहुत-से गीतों में मिलता है।

प्रसाद के 'आँसू', निराला की 'स्मृति' जैसी उदात्त और एकतान कल्पना तथा 'पल्लव' का-सा सौन्दर्योन्मेष महादेवीजी में नहीं है, किन्तु वेदना का विन्यास, उसकी वस्तुमत्ता ('आब्जेक्टिविटी') का बहुरूप और विवरणपूर्ण चित्रण, जितना महादेवीजी ने दिया है, उतना वे तीनों कवि नहीं दे सके हैं।

'सांध्य-गीत' की पहली ही कविता में सांध्य-गगन और जीवन का बिम्ब-प्रतिबिम्ब स्वरूप महादेवीजी के काव्य में चित्रांकण-कला का एक सफल उदाहरण है, भले ही प्रकृत भावोच्छ्वास का प्रवेश उसमें न हो।

मैंने ऊपर कहा है कि छायावाद काव्य के व्यक्त प्रकृति के सौन्दर्य-प्रतीकों को न लेकर महादेवीजी ने उन प्रतीकों की अव्यक्त गतियों और छायाओं का संग्रह किया है। इससे उनकी रचनाओं में वेदना की विवृत्ति और रहस्यात्मकता बढ़ गई है किन्तु वे स्थल कहीं-कहीं अधिक दुरूह भी हो गए हैं। उदाहरण के लिए यह रचना लीजिए :

"उच्छ्वासों की छाया में, पीड़ा के आलिंगन में,
निश्वासों के रोदन में, इच्छाओं के चुम्बन में,
उन थकी हुई सोती-सी, उजियाली की पलकों में,
बिखरी उलझी हिलती-सी मलयानिल की अलकों में,
सूने मानस-मन्दिर में, सपनों की मुग्ध हँसी में,
आशा के आवाहन में, बीते की चित्रपटी में,
रजनी के अभिसारों में, नक्षत्रों के पहरों में,
ऊषा के उपहासों में, मुस्काती-सी लहरों में,
जो बिखर पड़े निर्जन में, निर्भर सपनों के मोती,
मैं ढूंढ़ रही थी लेकर धुँधली जीवन की ज्योती।"

लाक्षणिकता उसी हद तक काव्य में काम दे सकती है जिस हद तक वह उसके धारावाही सौन्दर्य में रोड़े न अटकाये। महादेवीजी के काव्य की जो भूमि है उसी भूमि की रचनाएँ कतिपय छायावादी कवियों की भी मिलती हैं, किन्तु उसकी व्यंजना व्यक्त सौन्दर्य-प्रतीकों की ओर सीधी लाक्षणिकता के आधार पर होने के कारण स्पष्टतर हुई है। उदाहरणार्थ हम निरालाजी की ख्याति-प्राप्त रचना 'तुम तुङ्ग हिमालय-शृङ्ग और मैं चञ्चल गति सुरसरिता' को लें तो दोनों का अन्तर साफ दिखाई देगा। हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि महादेवीजी के ऐसे प्रयोग सर्वत्र दुरूह हो गए हैं, कहीं-कहीं वे अतिशय मार्मिक हैं। जैसे :

"उन हीरक के तारों को कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिलाकर प्राणों का आसव डाला।
मलयानिल के झोंकों में अपना उपहार लपेटे।
मैं सूने तट पर आई बिखरे उद्गार समेटे।
काले रजनी अञ्चल में लिपटी लहरें सोती थीं।
मधु मानस की बरसाती बारिदमाला रोती थी।"

ये पंक्तियाँ हमें प्रसादजी के 'आँसू' की सुन्दर कड़ियों की याद दिलाती हैं। अवश्य प्रसादजी में सौन्दर्य-सम्वेदन के दोनों स्वरूप 'आनन्द' और 'वेदना' का एक-सा प्रसार मिलता है, किंतु महादेवीजी में उसके पिछले अंश की ही प्रधानता है।

अपनी इस एकपक्षिता के दो कारण महादेवीजी ने बताए हैं जो इस प्रकार हैं : "जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब-कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।" इसके अतिरिक्त "बचपन से ही भगवान् बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।" इस दुःख के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करती हुई वे लिखती हैं : "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है।

हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किंतु हमारा एक बून्द आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्बर बनाए बिना नहीं गिर सकता।"

इस स्पष्टीकरण में महादेवीजी ने सुख और दुःख के स्वरूप को अस्पष्ट ही रख छोड़ा है। उन्होंने दुःख के आध्यात्मिक स्वरूप और सुख के भौतिक स्वरूप को सामने रखकर विचार किया है। किन्तु इसके विपरीत सुख का आध्यात्मिक और दुःख का भौतिक स्वरूप भी है जिसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गई। दुःख की तामसिक, राजसिक और सात्विक तीनों अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं, उसी प्रकार सुख की भी। यह सब कुछ उस संवेदन पर अवलम्बित है जिससे सुख और दुःख का निस्सरण होता है। महात्मा बुद्ध ने दुःखवाद को आध्यात्मिक अर्थ में लिया है, उसी प्रकार भारतीय दर्शनों ने 'आनन्द' का आध्यात्मीकरण कर लिया है। इसलिए भौतिक आधार पर सुख और दुःख का जो व्यतिरेक (या 'कंट्रास्ट') महादेवीजी ने ऊपर दिखाया है "उसे मैं उनकी व्यक्तिगत सात्विकता का परिणाम मान सकता हूँ। उसे दार्शनिक सत्य या काव्य की कसौटी मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ।"

यह स्त्रियोचित सात्विकता भी महादेवीजी के काव्य की सार्वत्रिक विशेषता है। इससे उनके काव्य को एक सुन्दर क्रांति मिली है; यद्यपि कहीं-कहीं अति सरलता, सौन्दर्य स्पर्श से वंचित भी रह गई है। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, महादेवीजी की वेदना पहले व्यक्तिगत भावुकता अथवा रूढ़िगत भक्तिभावना के रूप में रही है जो क्रमशः निखरती गई है। अब मैं इनके एक-एक उदाहरण दूँगा:

भावुकता का स्वरूप निम्नांकित 'फैंसी' में प्रकट हुआ:

"चाहता है यह पागल प्यार, अनोखा एक नया संसार।
कलियों के उच्छ्वास शून्य में ताने एक वितान,
तुहिन-कणों पर मृदु कम्पन से सेज बिछा दें गान—
जहाँ सपने हो पहरेदार, अनोखा एक नया संसार।"

रूढ़िगत भक्तिभावना मुझे वहाँ दीखती है जहाँ महादेवीजी ने रहस्यमय आध्यात्मिक सत्ता को स्थूल उपास्य का रूप दे दिया है अथवा जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का, जिसमें कवि-हृदय बिना मुग्ध हुए नहीं रहता, स्थान-स्थान पर प्रतिषेध किया है।

"निराली कलकल में अभिराम, मिलाकर मोहक मादक गान।
छलकती लहरों में उद्दाम, छिपा अपना अस्फुट आह्वान।
न कर हे निर्झर भंग समाधि, साधना है मेरा एकान्त।"

किन्तु नीचे के पद्य में रूढ़िरहित आध्यात्मिकता का निरूपण है:

"छाया की आँख-मिचौनी, मेघों का मतवालापन,
रजनी के श्याम कपोलों पर ढरकीले श्रम के कन।

फूलों की मीठी चितवन, नभ की यह दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के वे किरणों की फुलझड़ियाँ।
विधु की चाँदी की थाली मादक मकरन्द भरी-सी,
जिसमें उजियाली रातें लुटतीं घुलती मिसरी-सी।
भिक्षुक से फिर जाश्रोगे जब लेकर यह अपना धन,
करुणामय तब समझोगे, इन प्राणों का महँगापन।"

'न थे जब परिवर्तन दिन-रात, नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात' से आरम्भ होने वाला पूरा गीत भी रूढ़ पद्धति पर बना है। किन्तु आगे चलकर जहाँ वेदना तपकर निखर उठी है, वहाँ रूढ़ि का लेश भी नहीं दीखता और काव्य ऊँचे धरातल पर आ पहुँचा है। यहाँ वेदना खूब सशक्त सम्वेदन की छटा लेकर आती है :

"देव, अब वरदान कैसा ?
वेध दो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है।
मैं तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है !
छीन सब मीठे क्षणों को इन अथक अन्वेषणों को।
आज लघुता ले मुझे दोगे निठुर प्रतिदान कैसा ?
जन्म से यह साथ हैं मैंने इन्हीं का प्यार जाना।
स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना !
इन्द्र-धनु से नित सजी-सी, विद्यु हरीक से जड़ी सी।
मैं भरी बदली रहूँ चिर मुक्ति का सम्मान कैसा ?"

इस अवस्था की अनुभूतियों का वैविध्य और काव्य की मनोहारिता महादेवी जी में ऊँची श्रेणी की है। कोई भी छायावादी इतने अटल भाव से इस भूमि में स्थिर नहीं रह सका। इस भूमि की प्रदीप्त अनुभूतियों का ऐसा संकलन नवीन युग का कोई हिन्दी कवि नहीं कर सका है। तो भी हम कहेंगे कि महादेवीजी का काव्य व्यक्तिगत दुख को सब जगह आध्यात्मिक ऊँचाई तक नहीं ले जा सका है।

महादेवीजी जिस नये क्षेत्र में जिस नवीन ढंग से काम कर रही हैं, इससे उनकी कठिनाइयों का अनुमान हम कर सकते हैं। एक तो परोक्ष स्तर की निगूढ़ अनुभूतियों का संग्रह, फिर उसका परिष्करण और उन्हें उपयुक्त व्यंजना देना, तीनों ही आयास-साध्य हैं। फिर महादेवीजी अपनी व्यंजना शैली में भी एक नवीनता रखती हैं। ऐसी अवस्था में हमें आश्चर्य नहीं होता कि भाषा, तुकों और छन्दों के विन्यास की ओर वे पर्याप्त सतर्क नहीं हो सकीं। महादेवीजी की भाषा में हमें समृद्ध छायावादी चमत्कृति नहीं मिलती। तुकों के सम्बन्ध में भी काफी शिथिलता दीखती है, छंदों और गीतों में भी एकरूपता अधिक है। भावों को काव्याभिव्यंजना देने के सिलसिले में कहीं-कहीं सुन्दर कल्पनाओं के साथ ढीले प्रयोग एक पंक्ति के बाद दूसरी ही पंक्ति में मिल जाते हैं :

"जिन नयनों की विपुल नीलिमा में मिलता नभ का आभास।
जिस मानस में डूब गए कितनी करुणा कितने तूफान।
जिन अधरों की मंद हँसी थी नव अरुणोदय का उपमान।
किया दैव ने जिन प्राणों का केवल सुषमा से निर्माण।
ओठों की हँसती पीड़ा में आहों के बिखरे त्यागों में।
जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करुणा, कितने संदेश पथ में बिछ जाते बन पराग।"

इन उद्धरणों की पहली पंक्तियाँ जितनी सुन्दर और काव्योपयुक्त हुई हैं, उतने ही प्रत्येक दूसरी पंक्ति के चिह्नित प्रयोग चिंत्य हो गए हैं। कई पंक्तियाँ शुष्क गद्य-सी प्रतीत होती हैं :

"मैं मदिरा तू उसका खुमार।
मैं छाया तू उसका अधार।"

"चल चितवन के दूत सुना उनके पल में रहस्य की बात।
मेरे निर्निमेष पलकों में मचा गये क्या-क्या उत्पात।
गये तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण।
नहीं पर मैंने पाया सीख, तुम्हारा-सा मनमोहन गान।।"

नीचे लिखी पंक्ति ध्वनि-शैथिल्य का एक उदाहरण है :

"शिथिल मधु-पवन गिन-गिन मधुकण,
हरसिंगार झरते हैं झर - झर।"

'तुम बिन', 'उन बिन' जैसे प्रयोग अधिक नहीं अखरते और 'पथ बिन अंत' भी चल जाता है। 'मैं न जानी', 'मैं प्रिय पहचानी नहीं' जैसे व्याकरण-असम्मत प्रयोग भी अप्रिय नहीं लगते। तो भी कहना पड़ता है कि महादेवीजी की रहस्यानुभूति जितनी समृद्ध है, उनकी काव्य-प्रतिभा उतनी ही उत्कृष्ट नहीं और भाषाशक्ति भी सीमित है। किन्तु अभी महादेवीजी निरन्तर विकास के मार्ग पर बढ़ रही हैं, वे किस दिशा में कितना बढ़ेंगी यह अब तक अज्ञात है। इसलिए उनकी किसी भी विशेषता पर अंतिम मुहर अभी नहीं लगाई जा सकती।

अब यहाँ मुझे उन मतदाताओं के समाधान में कुछ अंतिम शब्द कहने होंगे जो महादेवीजी की अनुभूतियों पर काल्पनिकता का आरोप करते हैं। उनकी समझ में नहीं आता कि किस जगत् की बातें वे कर रही हैं और उनसे हमारा क्या सम्बन्ध हो सकता है। इन्हीं में से वे कुछ लोग भी हैं जो आधुनिक कोलाहल में व्यस्त होने के कारण या तो महादेवीजी के काव्य-जगत् में पहुँच ही नहीं पाते, अथवा दो-चार चीज़ों की बानगी लेकर, शेष सब एकरूप ही हैं, कहने की जल्दबाजी करते हैं। इन सबको मेरा उत्तर यह है कि महादेवीजी के काव्य का आधार उसी अर्थ में काल्पनिक कहा जा सकता है जिस अर्थ में कबीर और मीरा का काव्याधार काल्पनिक है, जिस अर्थ में 'गीतांजलि' और 'आँसू' काल्पनिक हैं।

जो महादेवी का अध्ययन नहीं कर सकते वे इन कवियों का भी अध्ययन कैसे कर सकते हैं, अथवा इनको भी एकरूप क्यों नहीं ठहरा सकते ! यहाँ मैं उन महानुभावों का शुमार नहीं कर रहा जिनकी राय में रहस्यवाद किसी प्राचीन वर्बर युग की स्मृति है, मनुष्य की अविकसित वाल्य-भावना की सृष्टि है और जो वैज्ञानिक विकास-सिद्धान्त से बहुत दूर की चीज़ हो गई है। ऐसे लोग तो काव्याध्ययन के अधिकारी भी हैं, मैं नहीं मानता।

ऊपर मैंने प्रसंगवश 'मीरा' का नाम ले दिया है। साथ ही कुछ अन्य-अन्य कवियों के नाम भी आए हैं जिनसे महादेवीजी की तुलना करने का मेरा मंतव्य नहीं रहा, केवल काव्य की आधारभूमि मिलती-जुलती दिखानी थी। फिर भी अक्सर लोगों का आग्रह रहा है कि मीरा और महादेवी के काव्य की तुलना के सम्वन्ध में कुछ कहूँ। मेरा कहना यह है कि मीरा और महादेवी के काव्य का आधार वहुत अंशों में एक-सा है किन्तु ये दोनों दो युगों की सृष्टियाँ हैं। अपने-अपने युगों के अनुरूप ही इन दोनों का काव्य-व्यक्तित्व है। मीरा का काव्य नैसर्गिक भावोद्रेक का नमूना है। वह अलौकिक प्रेम और विरह से भीगे हुए हृदय का उद्गार है। इसमें काव्यकला की वारीकियाँ हमें नहीं मिलतीं, मूर्तिमान विरह की तड़प और मिलन के स्पंदन सुन पड़ते हैं। प्रकृति और कल्पना की सहायता से भावों का चित्रण वे नहीं करने बैठीं। मध्ययुग के सभी समुन्नत कवियों की यह अप्रतिम नैसर्गिकता उनकी अपनी चीज़ है। उस तरह की चीज़ आज इस बौद्धिक विकास के युग में ढूँढ़ना दोनों युगों का अपमान करना है। महादेवीजी में भी अनुभूति की सच्चाई है और गहराई है किन्तु वे काव्य-कला में सजकर आई हैं। मीरा अपने प्रियतम की खोज में राजमहल छोड़कर निकल आई थीं और उन्हें गृह-वन पुकारती फिरती थीं। उनकी काव्य-पुकार साकार है। महादेवीजी की ध्वनि अधिक धीमी और अधिक सभ्य होनी समुचित ही है।

विशुद्ध काव्यदृष्टि-से महादेवी मीरा की ऊँचाई पर कम ही पहुँचती हैं। काव्यकला से सज्जित होने पर भी उनकी कविता में तीव्र नैसर्गिक उन्मेष नहीं, साथ ही उनमें एकांगिता भी है। उक्त भावना-शिशु के लिए मुक्त आकाश में पक्षी की भाँति उड़कर चराचर जगत् की जो सौन्दर्य-सामग्री, जो सहज आस्वाद्य फल, कविगण प्रस्तुत किया करते हैं, महादेवीजी में उसकी कमी है। भावना-शिशु का प्यार उन्हें अपना नीड़ छोड़ने नहीं देता। फलतः उनके काव्य में प्राकृतिक उपमानों का वैविध्य नहीं है। उनकी कविता कुछ अंशों में कोरी भावना-निष्ठा से, जो व्यक्तिगत है, विजड़ित है। अपनी बात स्पष्ट करने के लिए मैं 'प्रसादजी' की दो पंक्तियाँ लेता हूँ। ये उनके 'चन्द्रगुप्त' नाटक में आई हैं, विषय है देश-प्रेम का :

"अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
... ...

लग् सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ग्रोर मुँह किये, समझ नीड़ निज प्यारा।"

कवि ग्रपने मूल विषय को लेकर कितनी दूर चला गया है, व्यक्तिगत भाव के भार से कितना छूटा हुग्रा ! पक्षियों का ग्रनुकूल पवन के सहारे, छोटे-छोटे इन्द्रधनुषों के-से पंखे पसारे, ग्रपनी ईप्सित दिशा में नीड़ों की ग्रोर उड़ना, ग्रौर मेरा देश। (सुख, सौन्दर्य ग्रौर ग्रपनेपन की व्यंजना) ग्रनजान-क्षितिज को कूल-किनारा मिलना—सहारा मिलना, ग्रौर मेरा देश (ग्राश्रय, दाक्षिण्य ग्रौर ग्रौदार्य का भाव) ! ग्रौर साथ ही क्षितिज को किनारा मिलने ग्रौर पक्षियों के नीड़ की ग्रोर उड़ने की मूर्तिमत्ता कितनी सहज, भव्य ग्रौर हृदयग्राहिणी है: यह भावना तो है ही, किन्तु समुन्नत काव्य के वेष में। महादेवीजी की शक्ति भावना के विश्लेषण में है, प्राकृतिक रूपों ग्रौर उपमानों द्वारा उसे व्यंजित करने में नहीं। वाह्य निरपेक्षता ग्रौर ग्रंतरंगता जो महादेवीजी में एक सीमा तक बढ़ी हुई है, उसकी काव्यशक्ति को परिपूर्ण विकास नहीं दे रही है।

सभी उच्चकोटि के रहस्यवादी कवियों ग्रौर स्वयं मीरा में भी भावना का प्राचुर्य उपयुक्त प्राकृतिक उपमाग्रों ग्रौर कल्पनाग्रों के सहारे, काव्यात्मक परिच्छेद में व्यक्त हुग्रा है। बल्कि हृदय के सूक्ष्म की व्यंजना के लिए ग्रन्य कवियों की ग्रपेक्षा रहस्यवादी कवि को प्रकृति की—उसकी एक-एक भावभंगी, रूप-रंग, गति-ग्रनुगति की—ग्रौर भी महीन परख रखनी पड़ती है; ग्रन्यथा उसका काम नहीं चल सकता।

मीरा का काव्य प्रेम ग्रौर विरह पर ग्राश्रित है, जो एक ग्रोर उसे सहज हृदयग्राही बनाता है ग्रौर दूसरी ग्रोर काव्य के विषय को विस्तीर्ण कर देता है। महादेवी के काव्य में वैराग्य भावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में दुख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्धसंन्यासियों ग्रौर संन्यासिनियों सरीखी एक चिंता-मुद्रा, एक विरक्ति, एक तड़प, शांति के प्रति एक ग्रशांति महादेवीजी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है। किंतु इस कारण उनकी कविता में एकरूपता 'मोनोटनी' नहीं ग्राई है; जैसा कुछ लोग ग्रारोप करते हैं। उनमें प्रचुर वैभिन्न्य है।

ग्राशा है मैंने दोनों का, ग्रन्तर यथासम्भव थोड़े में स्पष्ट कर दिया है।

ग्रब मैं ग्रन्त में यह कहूँगा कि ग्राधुनिक कवियों में महादेवीजी का क्या स्थान है, इसका निर्णय करना ग्रभी हमारे लिए ग्रसामयिक होगा। इस युग के ग्रग्रगण्य कवियों में सम्भवतः उनका स्थान सुरक्षित रहेगा (केवल इसलिए नहीं कि भारत ग्रध्यात्म-प्रधान देश है, बल्कि उनके काव्यगुणों के कारण) किन्तु उनमें उन्हें कौन-सा विशेष पद प्राप्त होगा यह तो समय ही बता सकता है। मैं कह चुका हूँ कि उनका विकास ग्रभी बन्द नहीं हुग्रा है।

21

'यामा' का आलंकारिक सौन्दर्य

डा० ओम्प्रकाश

['महादेवीजी ने श्वासों के तार में अपने सपनों को गूँथकर वेदना-चर्चित बंदनवार बनाया है, जीवन के घट को दुखरूपी जल से भरा है। उनके दोनों नेत्र झिलमिलाते हुए दो दीपक हैं। आँसू का तेल भरा जा रहा है और सुधिरूपी बत्ती जलकर पदध्वनि पर प्रकाश कर रही है।

अपने अलंकारों द्वारा श्रीमती वर्मा ने न जाने प्रकृति के कितने मनोहर चित्र खींचे हैं। उनके अधिकतर चित्रों में प्रकृति में करुणा-मूर्ति नारी का ही साधनामय स्वरूप दिखाई पड़ता है।']

महादेवी वर्मा के काव्य में कला का जो सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है उसकी समता के लिए खड़ी बोली में स्वर्गीय प्रसादजी के काव्य-सौन्दर्य के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं दिखाई पड़ता। श्रीमती वर्मा का काव्य मुक्तक है जिसमें सौन्दय ही प्रधान उद्देश्य होता है और प्रसादजी का झुकाव भी मुक्तक काव्य की ओर है; अतः प्रबन्ध कल्पना में अपनी प्रतिभा को व्यय न करके दोनों ने सौन्दर्य सृष्टि में अधिक सफलता प्राप्त की है। काव्य-सौन्दर्य में प्रथम अवयव छन्द, दूसरा भाषा तथा तीसरा अलंकार होता है; यह हम पहले कह चुके हैं। प्रस्तुत लेख में श्रीमती वर्मा के प्रसिद्ध काव्य 'यामा' का अलंकारों की दृष्टि से विश्लेषण करके उसके मूल्यांकन का प्रयत्न किया जाएगा।

यद्यपि श्रीमती वर्मा अपने इस ग्रंथ में रूपक, उपमा तथा अपह्नुति के प्रयोग द्वारा सौन्दर्य-चित्रण में अधिक सफल हुई हैं फिर भी सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करनेवाला प्रयोग 'सांग रूपकों का है; संख्या अधिक न होते हुए भी उनका अपना महत्त्व है। कुछ सांग रूपक तो साधारण चमत्कार के लिए ही आए हैं:

"रवि-शशि तेरे अवतंस लोल।
सीमंत-जटित तारक अमोल।।
चपला विभ्रम, स्मित इंद्र-धनुष।
हिमकण बन झरते स्वेद-निकर।।
अप्सरि ! तेरा नर्तन सुंदर।।" (180)

किन्तु सबसे अधिक चमत्कार-पूर्ण आरती का सांग रूपक है, जिसे पढ़कर सूर के 'हरि जू की आरती वनी' वाले पद का ध्यान आ जाता है, जहाँ श्लेष तथा अनुप्रयास का भी मनोहर पुट उस प्राचीन अप्रस्तुत को नवीन रूप में उपस्थित करता है :

"प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।
श्वासों में सपने कर गुंफित।
वंदनवार वेदना चर्चित॥
भर दुःख से जीवन का घट नित।
मूक क्षणों से मधुर भरूँगी भारती॥1॥
दृग मेरे दो दीपक झिलमिल।
भर आँसू का स्नेह रहा ढल॥
सुधि तेरी अविराम रही जल।
पदध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती॥2॥
यह लो प्रिय निधियों मय जीवन।
जग की अक्षय स्मृतियों का धन॥
सुख सोना करुणा हीरक कण।
तुमसे जीता आज तुम्हीं को हारती॥3॥" (189)

इस गीत में श्वासों के तार में अपने सपनों को गूँथकर वेदना-चर्चित वन्दनवार बनाया है, जीवन के घट को दुख-रूपी जल से भरा गया है और मूक क्षणों को आरती के सुन्दर श्लोकों से भरा गया है। दोनों नेत्र झिलमिलाते हुए दो दीपक हैं। आँसू का तेल भरा जा रहा है और सुधि-रूपी वत्ती जलकर पदध्वनि पर प्रकाश कर रही है। फिर असंख्य धन, निधि, सोना तथा हीरक लुटा दिए जाते हैं। सांग रूपक तथा अनुप्रयास तो हैं ही, 'भर', 'वारती' तथा 'स्नेह' पर श्लेष भी है।

इसी प्रकार एक दूसरा सांग रूपक वसंत रजनी का है, जिसमें समासोक्ति का भी सुन्दर चमत्कार है :

"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसन्त रजनी।
तारकमय नव वेणी बंधन।
शीशफूल कर शशि का नूतन॥
रश्मिवलय सित धन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे।
चितवन से अपनी॥" (122)

यहाँ बीच की तीन पंक्तियों को सांग रूपक के लिए लिखा गया है किन्तु अन्त में सारे छन्द को समासोक्ति में अवसित कर दिया है, इसलिए सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। 'नीहार' में इस प्रकार के अलंकारों की कमी है किन्तु 'रश्मि', 'नीरजा'

में इनकी अधिकता है। अधिकतर सांग रूपक अधिक लम्बे नहीं हो पाए हैं।

'यामा' में दूसरा प्रचलित अलंकार 'समासोक्ति' है; इस अलंकार द्वारा श्रीमती वर्मा ने न जाने प्रकृति के कितने मनोहर चित्र खींचे हैं। किन्तु हमें यह अलंकार अधिकतर 'संसृष्टि' तथा 'संकर' के रूप में मिलता है, अपने विविक्त रूप में बहुत कम। अधिकतर चित्रों में प्रकृति में करुणा मूर्ति नारी का ही साधनामय स्वरूप दिखाई पड़ता है। पहला ही गीत देखिए :

"निशा की, धो देता राकेश।
चाँदनी से जब अलकें खोल॥" (1)

यहाँ निशा और राकेश के पारस्परिक व्यवहार—अलकें खोलकर धो देना—से नायक और नायिका के कामुकतापूर्ण व्यवहार की प्रतीति होती है। 'नीहार' ही में दूसरा उदाहरण देखिए :

"गुलालों से रवि का पथ लीप।
जला पश्चिम में पहला दीप॥
विहँसती सन्ध्या भरी सुहाग।
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग॥" (17)

यहाँ संध्या के व्यवहार में किसी ऐसी नायिका की प्रतीति होती है जो अपने प्रिय की साधना में तत्पर रहकर अपने को सौभाग्यवती मानती हुई आनन्द का अनुभव करती है। 'विहँसती , 'दृगों' आदि शब्दों का प्रयोग इसी प्रतीति के लिए हुआ है। 'गुलाल', 'दीप' और 'स्वर्ण-पराग' में उपमेय के छिपे रहने और उपमान मात्र के प्रयोग से 'रूपकातिशयोक्ति' भी है।

'नीरजा' में साधारण तथा प्रचलित प्रयोगों द्वारा इस अलंकार का चमत्कार देखने योग्य है। प्रायः उपमा तथा उत्प्रेक्षा की सहायता लेकर 'संसृष्टि' कर दी गई है :

"मृदुल अंक धर, दर्पण सा सर।
आज रही निशि दृग इंदीवर॥" (103)

यहाँ पर निशा के व्यवहार में उस नायिका के व्यवहार की प्रतीति होती है जो अपनी गोद में दर्पण रखकर अपने नेत्रों में अंजन लगाती है। 'दर्पण सा सर' में उपमा, 'दृग-इंदीवर' में रूपक तथा 'मृदुल अंक' में रूपकातिशयोक्ति है। इसलिए इन अलंकारों से संश्लिष्ट समासोक्ति सारे छन्द में है। एक दूसरे छन्द में उत्प्रेक्षा द्वारा समासोक्ति को अनुप्राणित किया गया है :

"झूम गर्वित स्वर्ग देता।
नत धरा को प्यार-सा क्या ?" (128)

यहाँ गर्वित स्वर्ग का झूमकर नत धरा को प्यार देने में कामुक तथा स्वाभिमानी नायक का सहमी हुई नायिका को चूमने वाले व्यवहार की प्रतीति होती है। 'प्यार-सा' कहकर सम्भावना द्वारा उत्प्रेक्षा है।

जैसा कि हम देख चुके हैं रूपकातिशयोक्ति, समासोक्ति, सांग रूपक, अतिशयोक्ति, उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों की बहुलता इन गीतों में प्रकृति के अनेक मनोहर तथा आकर्षक चित्र खींचती है। कुछ साधारण अलंकारों का चमत्कार भी, यद्यपि अधिक मात्रा में नहीं है, दर्शनीय है :

"वृन्त विन नभ में खिले जो।
अश्रु बरसाते हँसे जो॥
तारकों के वे सुमन।
मत चयन कर अनमोल री॥" (171)

यहाँ पर 'तारकों' पर 'सुमन' का आरोप किया गया है और इसीलिए 'वृन्त बिन' का प्रयोग है; अतः 'रूपक' और विभावना' का प्रयोग है। किन्तु चमत्कार रूपक में है, न तो 'अश्रु बरसाते हँसे' विरोधाभास में और न 'विभावना' में। हाँ, 'निश्चय' का यह चमत्कार अवश्य प्रशंसनीय है :

"पारद के मोती से चंचल।
मिटते जो प्रतिपल बन ढुलढुल॥
हैं पलकों में करुणा के अणु।
पाटल पर हिमहास नहीं यह॥
कूलहीन तम के अन्तर में।
दमक गई छिप जो क्षण-भर में॥
हैं विषाद से बिखरी स्मृतियाँ।
घन चपला का लास नहीं यह॥" (184)

इस छन्द के विषय में यह शंका हो सकती है कि इसमें 'अपह्नुति' मानी जाए या 'निश्चय'। यदि प्रकृति का वर्णन प्रस्तुत है तो निश्चय ही 'अपह्नुति' मानी जाएगी, किन्तु यदि इसमें अपने विषाद आदि का वर्णन है तो 'निश्चय' अलंकार मानना चाहिए। शायद इन गीतों को व्यक्तिगत (Subjective) मानने से अधिक चमत्कार 'अपह्नुति' में नहीं, 'निश्चय' में ही है।

प्रस्तुत काव्य में उस अनन्त सौन्दर्य-निधि का वर्णन होने से स्थान-स्थान पर 'व्यतिरेक' तथा 'प्रतीप' के भी दर्शन होते हैं। यदि हम इन स्थलों पर प्रस्तुत की अलौकिकता को ध्यान में रखेंगे तो काव्य की दृष्टि से अधिक सौन्दर्य न दिखाई पड़ेगा, अतः वर्ण्य विषय भले ही कोई अलौकिक हो, हम उसे साधारण मानकर ही उसका वर्णन देखते हैं। नख, अधर तथा चरणों की सुन्दरता देखिए :

"जिन चरणों पर देव लुटाते
थे अपने अमरों के लोक
नखचन्द्रों की कांति लजाती
थी नक्षत्रों के आलोक।" (57)

पूर्वार्द्ध में कोई काव्य-सौन्दर्य नहीं है, किन्तु उत्तरार्द्ध में 'प्रतीप' का चमत्कार

है। अन्यत्र भी :

"जिन चरणों की नखज्योति
ने हीरक जाल लजाए।" (11)

नखज्योति में हीरक-जाल से अधिक सुन्दरता होने के कारण प्रस्तुत से अप्रस्तुत का लज्जित होना 'प्रतीप' ही है। अधरों के वर्णन में भी इसी अलंकार का चमत्कार है :

"जिन अधरों की मंद हँसी थी
नव अरुणोदय का उपमान।"

यहाँ उपमेय को उपमान तथा उपमान को उपमेय बनाकर प्रस्तुत की श्रेष्ठता की प्रतिष्ठा की गई है।

कुछ साधारण उपमाएँ भी देखने योग्य हैं। कुछ उपमान तो दूसरे कवियों से लिये गए हैं। हाँ प्रस्तुत अपना नया रखा गया है। जैसा कि बिहारी के एक दोहे में भी है 'भीगे पट के समान लिपटना' वाक्य महादेवीजी को पसन्द आया है, परंतु आपने अपना 'प्रस्तुत' पीड़ा को बनाया है प्रिय को नहीं :

"पीड़ा मेरे मानस से
भीगे पट सी लिपटी है॥" (26)

एक दूसरे स्थान पर भूत और भविष्य का सुन्दर स्वरूप परम्परा-उपमानों द्वारा दिखाया गया है :

"कुहरे सा धुंधला भविष्य है।
है अतीत तम प्यारे॥" (76)

कुछ आधुनिक काल के अप्रस्तुतों का प्रयोग भी यद्यपि स्वरूपाभिव्यक्ति में अधिक सहायक नहीं होता, फिर भी भावाभिव्यक्ति में सफल है :

"पलक प्यालों सी पी-पी देव !
मधुर आसव सी तेरी याद॥" (52)

तथा

"इन हीरक के तारों को
कर चूर बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसव ढाला॥" (23)

'आसव सी याद' तथा 'प्राणों का आसव' आधुनिक काल की देन है। निम्न-लिखित मालोपमा भी इसी प्रकार की है :

"मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से
स्वप्नलोक के से आह्वान।
वे आए चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान॥"(2)

श्रीमती वर्मा ने इन अप्रस्तुतों को तो आजकल के कवियों के समान दूसरों से ही लिया है, किन्तु उनके मौलिक अप्रस्तुत एकदम अद्भुत तथा मनोहर हैं :

"अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता।" (77)

या :

"विधु की चाँदी की प्याली
मादक मकरंद भरी-सी
जिसमें उजियाली रातें
लुटती घुलती मिसरी-सी।" (37)

ऊपर वाले उदाहरण में 'जलधि' को 'मोती' तथा 'अवनि-अम्बर' को 'सीप' मानना तो रूपाकार की दृष्टि से, सूक्ष्म निरीक्षण होते हुए भी, असम्भव नहीं लगता। किंतु दूसरे उदाहरण में 'उजियाली रातों का उसी भाँति लुट जाना जैसे मिसरी घुल जाती है' यह विचार इतना सूक्ष्म है कि इसमें न वस्तु-साम्य है, न गुण-साम्य, न क्रिया-साम्य, केवल भाव-साम्य ही दिखाई पड़ता है।

प्रस्तुत और अप्रस्तुतों की इस मौलिकता का एक और उदाहरण देखिए :

"तुम हो प्रभात की चितवन
मैं विधुर निशा बन जाऊँ
काटूँ वियोग-पल रोते
संयोग-समय छिप जाऊँ।" (75)

यहाँ पर महादेवीजी को इतना ही कहना अभीष्ट है कि प्रिय के वियोग में रोते रहने पर भी उनका मिलन नहीं होता, क्योंकि जब संयोग का समय आता है तब उनका अस्तित्व ही नहीं रहता—संयोग उसी समय होता है जब भक्त का भगवान् से पृथक् अस्तित्व नहीं रहता—'प्रभात की चितवन' और 'विधुर-निशा' इन दो अप्रस्तुतों के द्वारा उन्होंने इस अद्भुत समस्या को बड़े ही आकर्षक रूप से समझाया है।[1] स्वर्गीय प्रसादजी ने भी एक कहानी 'दासी' में यही भाव इन्हीं शब्दों में प्रकट किया है—

"मैं जलती हुई दीपशिखा हूँ और तुम हृदय-रञ्जन प्रभात हो। जब तक देखती नहीं जला करती हूँ और तुम्हें जब देख लेती हूँ तभी मेरे अस्तित्व का अंत हो जाता है।" (आँधी 81)

कहने की आवश्यकता नहीं कि यद्यपि प्रसादजी ने इस कहानी को पहले लिखा था; फिर भी श्रीमती वर्माजी के छंद में अधिक चमत्कार हैं, 'दीपशिखा'

---

1. महात्मा कबीर ने भी इसी भाव को अपने एक दोहे में प्रकट किया है किन्तु उसमें वह चमत्कार नहीं है :

मूए पीछे मति मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम॥

ग्रौर 'प्रभात' का सम्बन्ध न तो इतना स्वाभाविक है ग्रौर न इतना ग्रसम्भव है जितना 'प्रभात' ग्रौर 'निशा' का—यद्यपि प्रभात ग्रौर निशा सदा साथ रहते हैं फिर भी उनका संयोग हो ही नहीं सकता; किन्तु दीपशिखा का प्रभात से संयोग हो भी सकता है (वस्तुतः ग्रद्वैत का ज्ञान होने पर ग्रात्मा का स्वरूप उसी प्रकार मलिन हो जाता है जिस प्रकार सूर्य प्रकाश में दीपज्योति; किन्तु दीपशिखा का ग्रस्तित्व नहीं मिटता)।

ग्रन्त में श्रीमती वर्मा के उस प्रिय ग्रलंकार समासोक्ति का एक उदाहरण देकर हम भारतीय नारी की उस ग्रसहाय ग्रवस्था पर ग्रवश्य ग्राँसू बहाना चाहते हैं। कितना भावपूर्ण चित्रण है :

"जन्म से मृदु कंज-उर में
नित्य पाकर प्यार लालन
ग्रनिल से चल पंख पर फिर
उड़ गया जब गंध उन्मन
बन गया तब सर ग्रपरिचित
हो गई कलिका विरानी।
निठुर वह मेरी कहानी॥" (163)

जिस घर में उसका लालन-पालन हुग्रा उसको छोड़कर चले जाने पर वह किस प्रकार 'विरानी' हो जाती है, यह वस्तुतः बड़ी 'निठुर कहाना' है।

22

'दीपशिखा'

डाक्टर नगेन्द्र

['महादेवीजी के गीतों में कला का मूल्य अक्षुण्ण है। भाषा के रंगों को हल्के-हल्के स्पर्श से मिलाते हुए मृदुल-तरल चित्र आँक देना उनकी कला की विशेषता है। पंत की कला में जड़ाव और कढ़ाई है, फलतः उनके चित्रों की रेखाएँ पैनी हैं। महादेवी की कला में रंग-धुली तरलता है जैसी कि पंखड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।']

इस युग में 'दीपशिखा' का प्रकाशन एक घटना है। महादेवीजी के ही शब्द उधार लेकर हम कहेंगे कि 'जीवन और मरण के इन तूफानी दिनों में रची हुई यह कविता ठीक ऐसी है जैसे झंझा और प्रलय के बीच में स्थित मंदिर में जलने वाली निष्कम्प दीपशिखा।'

इस पुस्तक का महत्त्व एक और दृष्टि से भी है। आज छः-सात वर्षों के बाद महादेवीजी के साधना-मंदिर का द्वार खुला है और करुणा के स्नेह में जलती हुई इस दीपक की लौ को अब भी अपने एकाकीपन में तन्मय और विश्वास में मुस्कराती हुई देखकर हिन्दी के विद्यार्थी का सशंक मन प्रफुल्ल हो उठा है।

दीपशिखा में 51 गीत हैं, और प्रत्येक गीत का अर्थवाही एक चित्र है। इन चित्रों का कला की दृष्टि से क्या मूल्य है, यह कहने का तो मैं अधिकारी नहीं हूँ; परन्तु इस प्रकार का चित्रित गीत-प्रकाशन हिन्दी के लिए एकदम नई चीज़ है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक गीत कवयित्री की अपनी ही हस्तलिपि में मुद्रित है। इस मुद्रण से जहाँ नवीनता तो सचमुच और भी बढ़ गई है, वहाँ लिपि के सुन्दर न होने से पुस्तक की स्वच्छन्दता में क्षति भी अवश्य हो गई है।

हिन्दी में—विश्व के लगभग सभी साहित्यों में—गीत-परम्परा आदि-काल से ही चली आती है। या यों कहिए कि कविता का मूल रूप ही गीत है। गीत के इतिहास पर दृष्टि डालने से उनके दो प्रयोजन मिलते हैं।

(1) आत्म-निवेदन और (2) मनोरंजन।

इनमें आत्म-निवेदन अधिक मौलिक है। उसको प्रयोजन के अतिरिक्त प्रेरणा भी कहना उचित है। परन्तु मनोरंजन भी कम प्राचीन नहीं है। आखेट-प्रिय

ग्रादिम पुरुष के वियोग में उसकी गृहिणी ग्रादिम नारी ने ग्राज से न जाने कितने युग पूर्व ग्रपने एकाकी मन ग्रौर गृह-कर्म से भारी शरीर को हल्का करने के लिए गीत का ग्राविष्कार किया था। 'कामायनी' के पाठकों को याद होगा कि मनु के मृगयार्थ वन में चले जाने पर श्रद्धा का हाथ तकली से ग्रौर मन ग्रनायास गीत की कड़ी से उलझ जाता था।

इस ग्रवस्था में ग्राकर गीत के दोनों प्रयोजनों का समन्वय हो जाता है। धीरे धीरे ये ही दो प्रयोजन ग्रनेक रूपों में बिखरते गए। ग्रात्म-निवेदन पार्थिव ग्रौर ग्रपार्थिव ग्रवलम्वनों के ग्रनुसार लौकिक ग्रौर ग्रलौकिक विरहमिलन की कविता में फूट उठा; मनोरंजन उत्सव ग्रौर पर्वों के गीतों में; ग्रौर कहीं-कहीं ये दोनों ही मिलकर एक हो गए।

इस प्रकार गीत मानव-मन के हर्ष-विषाद का सहज वाहक है, जो ग्रब तक ग्रपनी परिभाषा को ग्रक्षुण्ण बनाये हुए है। महादेवीजी ने भी इसीसे मिलती-जुलती गीत की परिभाषा की है :

"गीत का चिरंतन विषय रागात्मिका वृत्ति से सम्बन्ध रखनेवाली सुख-दुःखात्मक ग्रनुभूति ही रहेगा।...साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक ग्रनुभूति का वह शब्द-रूप है जो ग्रपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"

दीपशिखा के गीतों में ग्रात्म-निवेदन की प्रेरणा है, मनोरंजन स्पष्टतः ही उनका प्रयोजन नहीं है। परन्तु वह ग्रात्म-निवेदन किस प्रकार का है, यह प्रश्न सरल नहीं है। साधारण रूप से यह कह देना कि इनमें ग्रज्ञात के प्रति विरह-निवेदन है या रहस्योन्मुख प्रेम की ग्रभिव्यक्ति है ग्रथवा लौकिक धरातल पर कवि की ग्रपनी ग्रतृप्त वासना की प्रेरणा है—प्रश्न को ग्रौर भी जटिल बना देना है। इस ग्रात्म-निवेदन की प्रकृति को समझने के लिए तो कवि के व्यक्तित्व के विश्लेषण का सहारा लेना पड़ेगा।

दीपशिखा के गीतों का ग्रध्ययन करने पर हमारे मन में तीन प्राथमिक धारणाएँ बनती हैं :

(1) दीपशिखा कवि के ग्रपने मन का प्रतीक है।

(2) दीपशिखा में फारसी की शमग्र की तरह ऐंद्रिय वासना की दाहक ज्वाला नहीं है, वरन् करुणा की स्निग्ध लौ है जो मधुर-मधुर जलती हुई पृथ्वी के कण-कण के लिए ग्रालोक वितरित करती है।

(3) ग्रौर इस जलने के पीछे किसी ग्रज्ञात प्रिय का संकेत है जो उसे ग्रसीम बल ग्रौर ग्रकम्प विश्वास प्रदान करता है।

महादेवी के काव्य में इसी प्रकार के संकेत मिलते हैं ग्रौर इन संकेतों की व्याख्या में हिन्दी-ग्रालोचकों ने सारा ग्राध्यात्म एवं वेदान्त समाप्त कर दिया है। उनकी यह व्याख्या महादेवी को परमार्थी योगी की पदवी पर भले ही प्रतिष्ठित कर दे, परन्तु उनके काव्य की ग्रात्मा ग्रर्थात् उनकी ग्रनुभूति के स्वरूप को समझने

में अणुमात्र भी सहायक नहीं होती।

इस विषय में मैं पहले ही निवेदन कर दूँ कि मुझे आधुनिक काव्य की आध्यात्मिकता में एकदम विश्वास नहीं है। काव्य का सम्बन्ध मानव-मन से है, और मन में किसी प्रकार की अपार्थिवता नहीं है। भारतीय दर्शन ने भी उसे सूक्ष्मेन्द्रिय ही माना है। हमारे साहित्य-शास्त्र में भी जहाँ काव्य की अनुभूति-अभिव्यक्ति का विवेचन है, पार्थिव जीवन के ही स्थायी-संचारियों का वर्णन है और रस की अलौकिकता भी अन्त में लौकिक ही ठहरती है। यह बात नहीं कि मुझे आध्यात्मिक की सत्ता मान्य नहीं। मैं मानता हूँ कि एक ओर चित्तवृत्ति के संयम और निरोध से और दूसरी ओर उसकी एकाग्रता के अभ्यास से आत्म-चिंतन और रहस्यानुभूति सम्भव है—और कम-से-कम कबीर की रहस्यानुभूति कल्पना की क्रीड़ा अथवा धार्मिक दम्भ कभी नहीं थी। परन्तु बुद्धि के इस युग में, जैसा कि महादेवीजी ने स्वयं अपनी भूमिका में स्वीकार किया है, इस प्रकार की रहस्यानुभूति कम-से-कम एक नवीन शिक्षा-दीक्षा में पोषित बुद्धि-जीवी के लिए सम्भव नहीं। एक बार व्यक्तिगत चर्चा करते समय भी जब मैंने अपना यह मन्तव्य उनके सम्मुख रखा तो उन्होंने स्पष्ट रूप में इसकी सत्यता स्वीकार की थी। अतएव दीपशिखा के गीतों की अनुभूति पार्थिव माने बिना काम नहीं चल सकता। उसका विश्लेषण करने पर तीन तत्त्व हमको मिलते हैं :

(1) जलने की भावना, (2) विश्व के प्रति गीला-करुणा-भाव, और (3) अज्ञात प्रिय का संकेत।

इनमें से तीसरे भाव के मूल में तो स्पष्टतः काम का स्पंदन है ही; जलने की भावना में असन्तोष और अतृप्ति-भावना भी अनिवार्य है। इन दोनों को अगर संयुक्त कर दें तो पहला कारण और दूसरा कार्य हो जाता है। और वास्तव में सभी ललित-कलाओं के—विशेषतः काव्य के और उससे भी अधिक प्रणय-काव्य के—मूल में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने में आपत्ति के लिए स्थान नहीं है।

महादेवीजी का एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को एकाकिनी बरसात बना दिया है, सुख और दुलार के आधिक्य ने नहीं। अतिशय सुख और दुलार की प्रतिक्रिया से उत्पन्न दुःख का आकर्षण 'यामा' और 'दीपशिखा' की सृष्टि नहीं कर सकता। परन्तु इस अतृप्ति को स्थूल शारीरिक अर्थ में ग्रहण करना महादेवीजी के संस्कृत एवं संयत व्यक्तित्व के प्रति अपराध होगा क्योंकि और नहीं तो स्वभाव से ही पुरुष और स्त्री-कवियों के लिखे हुए प्रणय-गीतों में उनकी प्रकृति के अनुसार अन्तर मिलना अनिवार्य है। पुरुषकवि का प्रणयनिवेदन अधिक व्यक्त, अतएव ऐन्द्रिय एवं रोमानी होगा। स्त्री का प्रणयनिवेदन संयत, अतएव गार्हस्थिक होगा। पुरुष में रोमांस की उन्मुक्तता होगी, नारी में स्थायित्व का बंधन। अतएव स्वीकृत रूप से लौकिक तल पर स्त्री-कवि का प्रणय एकमात्र स्वकीया का घरेलू प्रणय ही हो सकता है।

स्त्री अपनी प्रकृति के कारण और बहुत-कुछ अंशों में सामाजिक रीति-नीति के कारण न तो असंयत उद्‌गारों को ही व्यक्त कर सकती है और न स्वकीया की सौमित्रि-रेखा से बाहर ही जा सकती है। प्राचीन लोक-गीतों की गायिकाओं से लेकर सर्वश्री होमवती, 'उषा', 'चकोरी' आदि आधुनिक हिंदी-कवयित्रियों तक यह बात अनिवार्य रूप से मिलेगी। जहाँ-कहीं भी लौकिक प्रणय की स्वीकृति है, वहाँ स्वकीया भाव ही है। मीरा के तो अपार्थिव प्रेम में भी स्वकीया-भाव का आग्रह मिलता है।

स्वकीया की भावना को छोड़कर तो स्त्री के पास सिर्फ एक ही उपाय रह जाता है—अपार्थिव प्रणय अथवा अज्ञात के प्रति प्रणय-निवेदन। यह प्रणय-निवेद मूलतः पार्थिव प्रेम पर आश्रित होते हुए भी तत्त्वतः उससे भिन्न होता है। अर्थात् इसमें ऐन्द्रियता सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होती हुई अतीन्द्रियता-सी प्रतीत होने लगती है, यानी उसका संस्कार हो जाता है। परंतु यह निश्चित है कि इस प्रणय-निवेदन में जो स्पन्दन होगा, वह प्रच्छन्न रूप से उसी आरम्भिक प्रेम का ही होगा।

संत कवियों तथा सगुण भक्तों ने अपनी अभुक्त वासनाओं को एक ओर तो भगवान् के चरणों पर उँडेलकर और दूसरी ओर सचराचर में वितरित कर उनका संस्कार किया था। वह विश्वास और साधना का युग था। भगवान् की प्रतीति तब आज की अपेक्षा अधिक सरल थी। आज का कवि भगवान् से नाता जोड़ने में अपने को असमर्थ पाता है। उसके लिए मानव-जाति से प्रीति बढ़ाना अपेक्षाकृत सरल है। इसलिए आज वासना के संस्कार की यही पद्धति व्यवहार्य है। महादेवीजी के जीवन में संतों की आत्मसाधना देखना तो उपहास्य होगा; परन्तु अपनी वासना का परिष्कार करने के लिए उन्होंने साधना की है और अब भी कर रही है, इसको अस्वीकार करना अनुचित होगा। उन्होंने बड़ी लगन से आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन किया है। अपने आस-पास के प्राणियों के साथ परिवार-सम्बन्ध जोड़ा है। पीड़ित वर्ग की सक्रिय सेवा में आनन्द लिया है। मैं समझता हूँ कि उनका काफी समय आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन और मनन में बीतता है अतएव उनके गीतों में जो रहस्य-संकेत मिलते हैं वे पूर्णतः स्वानुभूत सत्य न होते हुए भी एकदम छायावाद-युग के कवि-समय मात्र भी नहीं हैं। प्रत्यक्ष रूप से नहीं, तो अध्ययन के सहारे ही कवि को उनसे थोड़ा-बहुत परिचय अवश्य है।

यही बात कण-कण के प्रति बिखरी हुई उनकी स्नेह विगलित करुणा के लिए भी कही जा सकती है। बुद्ध के प्रति ममत्व और दर्शन के अध्ययन का प्रभाव उस पर स्पष्ट रूप से पड़ा है—"इन गीतों ने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अध्ययन की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को अवलम्ब दे सका, उसे प्रार्थिव-प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।"

इस प्रकार दीपशिखा के गीतों में जिन तत्त्वों की ओर निर्देश किया गया है, वे तीनों एक-दूसरे से कार्य-कारण-सम्बन्ध में बँधे हुए हैं और कवि के अपने जीवन के सम्बन्ध से भी उनका पूरी तरह व्याख्यान हो जाता है।

यहाँ तक तो हुआ दीपशिखा की प्रेरक अनुभूति का विश्लेषण, जो उसके गीतों को समझने में सहायक हो सकता है। परन्तु उसका मूल्यांकन करने के लिए अनुभूति की प्रकृति नहीं, उसकी शक्ति का विवेचन करना होगा। यानी अब हमें यह देखना है कि दीपशिखा को जिस अनुभूति से प्रेरणा मिली है, उसमें कितनी तीव्रता है।

इस दृष्टि से हमें निराश होना पड़ेगा। कारण स्पष्ट है। इस अनुभूति के मूल में जो काम का स्पंदन है, उसके ऊपर कवि ने चिन्तन और कल्पना के इतने आवरण चढ़ा रखे हैं कि स्वभावतः उसकी तीव्रता दब गई और उसको टटोलने पर बहुत नीचे गहरे में एक हल्की-सी धड़कन मिलती है। साथ ही अनुभूति को पुँजीभूत होने का भी अवसर नहीं मिला। उसका वितरण प्रयत्न-पूर्वक किया गया है, इसलिए वह तीव्र न रहकर हल्की-हल्की बिखर गई है। स्पष्ट शब्दों में, इन गीतों में लोक-गीतों की जैसी मांस की उष्ण गंध प्रायः निःशेष हो गई है। दूसरी ओर बुद्धिजीवी महादेवीजी में सन्त व भक्त कवियों का-सा विश्वास और समर्पण भी सम्भव नहीं हो सका। इसलिए उनके हृदय में अज्ञात के प्रति भी जिज्ञासा ही उत्पन्न हो सकी है, पीड़ा नहीं। कुल मिलाकर यह कहना होगा कि दीपशिखा की प्रेरक अनुभूति छाँह-सी सूक्ष्म और मोम-सी मृदुल तो है; परन्तु हूक-सी तीव्र नहीं। एक स्थान पर स्वयं कवयित्री ने ही अपने गीत की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है :

"खोजता तुमको कहाँ से आ गया अलोक सपना
चौंक खोले पंख तुमने याद आया कौन अपना
कुहर में तुम उड़ चले किस छाँह को पहचान।"

स्वभावतः छाँह को पहचानकर कुहर में उड़ने वाले इन गीतों में विस्मय भरे मधुर संकेत तो स्थान-स्थान पर मिलेंगे; परन्तु लपककर हृदय को पकड़ने वाली पंक्तियाँ दुर्लभ ही हैं।

मधुर संकेतों के कुछ उदाहरण लीजिए :

(1) "तम ने वर्ती को जाना है,
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने रज का अंचल पहचाना है
चिर-बंधन में बाँध मुझे घुलने का वर दे जाना"

(2) "सुधि विद्युत् की तूली लेकर
मृदु व्योम फलक-सा उर उन्मन
मैं घोल अश्रु में ज्वाला-कण
चिर-मुक्त तुम्हीं को जीवन के बंधन हित विकल दिखा जाती।"

'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक आते-आते महादेवीजी की अनुभूति ने सूक्ष्मता और स्थिरता में जितनी वृद्धि की है, तीव्रता में उतनी क्षति भी भोगी है। इसका अर्थ यही है कि महादेवीजी का मन क्रमशः व्यक्तिगत पीड़ा को लोकव्यापी बनाता हुआ दुःख-सुख का सामंजस्य स्थापित करता रहा है। यह सामंजस्य सर्वप्रथम हमें नीरजा में मिलता है; परन्तु फिर भी उसमें व्यक्ति की पुकार दुर्बल नहीं पड़ी। 'सांध्य-गीत' में आकर जिस अनुपात से पीड़ा का अव्यक्तिकरण हुआ है, उसी अनुपात से उसमें अनुभूति की तीव्रता भी कम हो गई है। दीपशिखा इसी दिशा में एक अगला कदम है। सांध्य-गीत में जहाँ दुख और सुख का सामंजस्य पूर्ण हुआ था, वहाँ दीपशिखा में दुख अपना दंशन खोकर सुख को समर्पण कर बैठा है। पीड़ा की ज्वाला यहाँ दीपशिखा बन गई है, जो पृथ्वी के कण-कण को आलोक वितरित कर अपना घुल जाना ही वरदान मानती है। इस प्रकार दीपशिखा की अनुभूति में एक तो रज के प्रति ममत्व और दूसरे विश्वासमय अबन्ध गति—ये दो नवीन तत्त्व मिलते हैं जिनके लिए हमारे युग-जीवन की प्रवृत्तियाँ उत्तरदायी हैं।

महादेवीजी के गीतों में कला का मूल्य अक्षुण्ण है। भाषा के रंगों को हल्के-हल्के स्पर्श से मिलाते हुए मृदुल-तरल चित्र आँक देना उनकी कला की विशेषता है। पन्त की कला में जड़ाव और कढ़ाई है, फलतः उनके चित्रों की रेखाएं पैनी होती हैं। महादेवी की कला में रंग-घुली तरलता है, जैसी कि पंखुड़ियों पर पड़ी हुई ओस में होती है।

'सांध्य-गीत' में संध्या की पृष्ठभूमि होने के कारण उसके चित्रों में रंगों का वैभव अधिक था; परन्तु 'दीपशिखा' के गीतों में उसके चित्रों की ही तरह केवल दो रंग हैं—हल्का नीला और सफेद। जहाँ कहीं अधिक रंगों का प्रयोग भी है, वहाँ ये सभी रंग इस प्रकार मिला दिये गए हैं कि किसी की स्वतंत्र सत्ता न रहे—इसीलिए तो इन चित्रों में पारद के मोतियों-जैसी कोमलता आ गई है :

"रात-सी नीरव व्यथा, तम-सी अगम मेरी कहानी
फेरते हैं दृग सुनहले आँसुओं का क्षणिक पानी
श्याम कर देगी इसे छू प्रात की मुस्कान!"

महादेवीजी के गीतों में प्रयुक्त चित्र-सामग्री अत्यन्त परिमित है। इसलिए नीरजा के बाद से ही महादेवीजी के आलोचक को उनसे पुनरावृत्ति की शिकायत है। और यह शिकायत जितनी उचित है उतनी ही सकारण भी। एक कारण तो यही है कि कवि की अनुभूति का क्षेत्र ही सीमित है। दूसरा कारण यह है कि उसने 'सांध्य-गीत' और 'दीपशिखा' के गीतों को एक निश्चित पृष्ठिभूमि दी है—सांध्य-गीत को संध्या की, दीपशिखा को रात्रि की। यह सच है कि दीपशिखा तक पहुँचते-पहुँचते नीरजा और सांध्य-गीत की पुनरावृत्तियों से ऊबा हुआ पाठक एक बार तो सचमुच झुँझला उठता है—वे ही दीपक और बादल के छाया-चित्रों के टुकड़े नाना प्रकार के आकार और वेश धारण कर उनके काव्य के आधार-फलक पर उड़ते-

तैरते दिखाई देते हैं। बादल के चित्रों से तो कवि को बेहद मोह है। परन्तु झुँझलाहट उतर जाने पर यदि वह धैर्य-पूर्वक सूक्ष्म-दृष्टि से देखेगा तो उसे सूक्ष्म अवयवों की तरह-तरह की बारीकियाँ मिलेंगी। जैसे :

"तैर तम-जल में जिन्होंने ज्योति के बुद्बुद जगाए,
वे सजीले स्वर तुम्हारे क्षितिज-सीमा बाँध आये।
हँस उठा कब अरुण शतदल-सा ज्वलित दिनमान।"

गीत की अपनी टेकनीक होती है। वह अपने जन्म से ही वन्य-कण्ठों में पला है। इसलिए उसकी गति और लय में—यहाँ तक कि उसकी शब्दावली में भी—वन्य संस्कार वर्तमान रहते हैं। यह सम्भव है कि एक सफल कलाकार कला-गीतों की रचना करते हुए इन वन्य गीतों की पंक्तियों को अनायास ही न गुनगुना उठे। सचमुच पाठक के संस्कार भी इन स्पर्शों के बिना गीत को गीत मानने के लिए तैयार नहीं होते। महादेवीजी इस ओर प्रारम्भ से ही सचेत रही हैं। 'दीपशिखा' की भूमिका में उन्होंने लोक-गीतों का प्रभाव स्वीकार भी किया है। 'नीरजा' के कुछ गीतों की लय और शब्दावली में इस प्रकार के मधुर और मुखर संस्कार मिलते हैं : 'पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं' या 'मुखर पिक हौले-हौले बोल, हठीले हौले-हौले बोल'—जैसी पंक्तियों को गुनगुनाते हुए पाठक के मन में लोक-गीतों की समानान्तर पंक्तियाँ आप-से-आप दौड़ जाती हैं। दीपशिखा में भी 'मैं न यह पथ जानती री' या 'कहाँ से आए बादल काले'—जैसी पंक्तियों में कुछ ऐसा ही सौन्दर्य है, यद्यपि उतना नहीं जितना 'नीरजा' के गीतों में है। इस प्रकार प्रचलित लोक-गीतों की वन्य गति-लय में अमूल्य काव्य सामग्री भर कर महादेवीजी ने खड़ीबोली की कविता में गीत के माध्यम को अमर कर दिया है।

गीत के आंतरिक रूप का विश्लेषण यदि किया जाए तो वह कुछ इस प्रकार होगा :

कभी अनायास ही कवि के मन में कोई बात चमक जाती है। और चिंतन की हल्की-हल्की आँच से गल-गलकर वह एक पंक्ति के रूप में ढल जाती है। यही गीत की पहली पंक्ति है जो प्राय: चिन्तन का परिणाम होती है। इसके उपरान्त कवि उससे सम्बद्ध अन्य धूमिल भावनाओं को रूप देने का प्रयत्न करता है और गीत के अगले पदों की सृष्टि होती है। बस, इसी सृजन प्रक्रिया में एक साथ कवि की मूल अनुभूति व्यक्त होकर शब्दों की पकड़ में आ जाती है और सारा गीत चमक उठता है। अनुभूति-प्राण गीतों के सृजन का यही इतिहास है। बच्चन के कुछ भाव-दीप्त गीत इसके साक्षी हैं। परन्तु दीपशिखा के अधिकांश गीतों में अनुभूति की तीव्रता के अभाव में ऐसा नहीं हो पाया। उनमें चिन्तन के कारण पहली पंक्ति के संकेत ही अधिक मधुर होते हैं।

दीपशिखा की भूमिका का महत्त्व उसके गीतों से कम नहीं है। उसके विषय

में सविस्तार चर्चा फिर कभी की जाएगी। इस समय तो यही कहना पर्याप्त होगा कि आधुनिक तथाकथित प्रगतिशील या समाजवादी आलोचना की हलचल में काव्य के शाश्वत सत्यों के सहारे इस भूमिका में छायावाद की भव्य व्याख्या की गई है, जिसका स्थान हिन्दी-आलोचना के इतिहास में अमर रहेगा।

23

मीरा और महादेवी

रघुवीरप्रसाद सिंह

मीरा	महादेवी
'सखी मेरी नींद नसानी हो । पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैण विहानी हो'	'पथ देख बिता दी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं ।'
× × ×	× × ×
'पपइया रे पिय की वाणी न बोल'	'मुखर-पिक हौले-हौले बोल ।'
× × ×	× × ×
'पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय । कलम धरत मेरो कर काँपत है, नैनन है झर लाय ।।'	'कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती । दृग-जल की सित मसि है अक्षय मसि प्याली झरते तारक द्वय पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर सुधि से लिख साँसों के अक्षर मैं अपने ही बेसुधपन में लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती ।'
× × ×	× × ×
सूली ऊपर सेज पिया की किस विधि मिलना होय ।	'क्या हार बनेगा वह जिसने' सीखा न हृदय को बिंधवाना ।'

मीरा और महादेवी हिन्दी साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान् कवयित्रियाँ हैं जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं लेकिन दो भिन्न युगों की विभिन्न परिस्थितियों में रहने के कारण दोनों का कवि व्यक्तित्व अलग-अलग है । मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान् के भावमय भजन का पूरा प्रभाव पड़ा है । महादेवी का कथन है, "एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है । परन्तु एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की

साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरम्भ की थी।" मीरा के विषय में तो यह जनश्रुति प्रसिद्ध ही है कि वह बचपन में ठाकुर जी के विग्रह पर अपना तन-मन वार चुकी थी और साधुओं के समाज में सम्मिलित होकर भगवान् के भजन में उसने तल्लीनता का अनुभव किया था। स्वयं मीरा के पद इस बात की साक्षी देते हैं।

मीरा अपने उपास्य गिरधर-गोपाल की प्रेमिका थी। मीराबाई नाम का अर्थ भी विद्वानों ने परमात्मा की पत्नी लगाया है। कृष्णोपासक भक्तों की परम्परा में लोक और वेद के ऊपर प्रेम की प्रतिष्ठा ही 'प्रेम-लक्षण भक्ति' का सिद्धान्त हुआ। गोपियों का एकान्त प्रेम इसी रूप में देखा गया है। श्रीकृष्ण के मधुर स्वरूप का आकर्षण ही उसका एकमात्र कारण और उस स्वरूप के अधिक-से-अधिक सान्निध्य की अभिलाष उसका लक्षण है। गोपियों का प्रेम दाम्पत्य प्रेम के रूप में होने के कारण अभिलषित सान्निध्य भी पुरुष समागम के रूप में ही वर्णन किया गया है। मीरा की भक्ति-भावना भी इसी माधुर्य भाव की थी। मीरा अपने को कहती भी है परमात्मा की पत्नी।

"भाई म्हाँने सुपने में बरी गोपाल।
राती पीती चुनरी ओढ़ी मेंहदी हाथ रसाल॥"

जनश्रुति है कि मीरा पूर्व जन्म की गोपी थी और वह गोपी थी ललिता। मीरा कहती है :

"भाई मैं तो लिया रमैयो मोल।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर
पुरुब जनम को कौल।"

महादेवी रूप की आराधिका नहीं अरूप की साधिका हैं। इसका कारण देश-कालगत प्रभाव ही हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहस के कारण देश की चिन्ताधारा पर अद्वैतवाद का प्रभाव पड़ा और इससे छायावाद युग भी अनुप्राणित हुआ। महादेवी की कविताओं में भी उसी दार्शनिक चिन्तन का ब्रह्म उनके भावों का आलम्बन बना जिससे उन्होंने युग-युग का सम्बन्ध स्थापित कर अपना करुण-मधुर भाव काव्य के माध्यम से अर्पित किया :

"बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर

गई वह अधरों की मुसकान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।"
× × ×
"गये तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मन मोहन गान।"

महादेवी अपना प्रेम दार्शनिक शब्दावली में व्यक्त करती हैं। असीम और ससीम जैसे शब्दों से वह अपना और उस मधुरतम व्यक्तित्व का सम्बन्ध जोड़ती हैं। लेकिन उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में उनका प्रेम-भाव बड़े ही सुस्पष्ट रूप से व्यंजित हुआ है :

"मूक प्रणय से, मधुर कथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तव मधुमय मुरली की तान।
चल चितवन के दूत सुना
उनके पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या-क्या उत्पात!
जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले!"

महादेवी को भी यह प्रणय-संकेत स्वर में ही मिलता है :

"कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।"

आध्यात्मिक प्रेम अथवा भक्ति-भावना (विशेषकर मधुरा भक्ति अथवा कांतासक्ति) की मूलचेतना मनोवैज्ञानिकों के अनुसार रति ही है। यह रतिभावना ही चारों ओर से सिमटकर भगवान् में केन्द्रित हो जाने से उदात्त बनकर भक्ति में परिणत हो जाती है। कबीर ने भी कहा है :

"काम मिलावै राम को जो कोई जानो भेव।
कबीर बिचारा क्या करे यों कहि गया सुकदेव।"

मीरा की रति-भावना में कोई दुराव नहीं है। उनकी भगवद्भक्ति स्पष्ट ही

कान्तासक्ति है। मीरा खुले हृदय से अपना प्रेम गिरधर-गोपाल के प्रति प्रकट करती है। वह उनके प्रेम में बावली होकर वन-वन, नगर-नगर उनको ढूँढ़ती फिरती है। उसे अपने प्रेम के सामने लोक-लाज, कुल-समाज की ज़रा भी परवा नहीं है।

"मैं तो साँवरे के रँग राँची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू
लोक-लाज तजि नाची।"

उसका एकान्त प्रेम उसे अपने पात्र से किसी भी तरह से अलग नहीं होने देता।

"हेली, मो सों हरि बिन रह्यौ न जाय।
सासू लड़ौ री, सजनी नणद खिजौरी,
पीव किन रहौ री रिसाय।
चौकी भी मेलौ, सजनी पहरा भी मेलौ,
ताला क्यूँ न जड़ाय।
पूरब जनम की प्रीति हमारी सजनी,
सो क्यूँ रहै री लुकाय।
मीराँ के तौ, सजनी, राम सनेही,
और न आवै म्हारी दाय।"

मीरा की प्रेम-भावना उबलते हुए दूध की तरह बाहर छलक-छलक पड़ती है। मीरा की इस आकुल तन्मयता पर महाप्रभु चैतन्य की कीर्तन प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा है। चन्द्रबली पाण्डेय का कथन है "मीराँ की पूजा-पद्धति कुछ वल्लभ कुल से भले ही प्रभावित हुई हो, किन्तु उनकी कीर्तन-प्रणाली तो सर्वथा गौराङ्ग महाप्रभु के ही अनुकूल थी और इनकी इहलीला की समाप्ति भी बहुत कुछ उन्हीं के ढङ्ग पर हुई।"

मीरा की तन्मयता, बेसुधी और निरावरण प्रेम महादेवी में देखने को नहीं मिल सकता है कारण कि युग उसके अनुकूल नहीं था। मीरा के युग में दक्षिण भारत से फूटा हुआ प्रेम-भक्ति का स्रोत समूचे उत्तर भारत को परिप्लावित कर चुका था। बंगाल में चण्डीदास और चैतन्य, मिथिला में विद्यापति, ब्रजमण्डल में अष्टछाप मंडली और गुजरात में नरसी मेहता अपनी रचनाओं से उसे सरस, स्निग्ध तथा उज्ज्वल बना चुके थे। महादेवी के पूर्व का द्विवेदी-युग शृङ्गार भावना की अभिव्यक्ति से सहमा हुआ नैतिकता का बंधन अपनी वाणी पर लग चुका था। रति की मूलभावना जो द्विवेदी-युग में दबी हुई थी, छायावाद-युग में अन्तर्मुखी होकर अपना पथ ढूँढ़ रही थी और प्रतीकों के रूप में अपनी अभिव्यक्ति भी कर रही थी। महादेवी ने भी जहाँ-तहाँ अपनी प्रेम-भावना को दूसरी वस्तुओं पर आरोपित करके

अभिव्यक्त किया है। वह अपनी एक कविता में फूल को वर्ण्य वस्तु बनाकर कहती हैं :

"चाँदनी का शृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर
लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर?
जानते हो यह अभिनय प्यार
किसी दिन होगा कारागार?"

इसके साथ-साथ आवेग, उत्कंठा, प्रतीक्षा आदि प्रणय भावनाओं के संकेत भी महादेवी की रचनाओं में बराबर मिलते हैं :

"क्यों वह प्रिय आता पार नहीं।
शशि के दर्पण में देख देख
मैंने सुलझाये तिमिर-केश
गूँथे चुन तारक पारिजात
अवगुण्ठन कर किरणें अशेष
क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृंगार नहीं?"

और :

"रंजित कर दे यह शिथिल चरण
ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर
ला रजनीगंधा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कवरी सँवार।"

मीरा में मिलन का आवेग और विरह की छटपटाहट दोनों समान रूप से वर्तमान हैं। लेकिन महादेवी को विरह की वेदना ही इष्ट है मिलन नहीं। यह भावना दिनोंदिन इनके काव्य में तीव्रतर ही होती गई है। इसे दुःखवाद का प्रभाव कहें चाहे नैतिक संकोच, लेकिन विरह की भावना मिलन के बाद ही तीव्र बनती है। महादेवी की रचनाओं में भी उस मादक मिलन की स्मृति कभी-कभी उभर आती है :

"अलि अब सपने की बात
हो गया है वह मधु का प्रात!
जब मुरली का मृदु पञ्चम स्वर,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर,
कम्पित हो उठता सुख से भर,

नव लतिका सा गात !
जब उनकी चितवन का निर्झर,
भर देता मधु से मानव-सर,
स्मित से झरती किरणें झर-झर,
पीते दृग—जल जात !"

लेकिन आगे चलकर महादेवी के काव्य में विरह को ही प्रधानता मिलती चली गई है। अन्त में उन्होंने विरह को ही अपना आराध्य और दुःख को ही जीवन का सम्बल मान लिया। महादेवी का यही दुःखवाद उन्हें वैयक्तिक सुख-दुःख से आगे बढ़ाकर लोक की ओर उन्मुख करता है। लेकिन भोली-भाली मीरा अपनी प्रणय-भावना को महादेवी की तरह बौद्धिक संयम से नहीं बाँध सकती थी। वह तो केवल एक गिरधर-गोपाल के लिए ही मरती थी और उसीके लिए जीती थी। आँखों में बसा हुआ उसका प्रियतम धीरे-धीरे उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गया था :

"साध हमारी आतमा में साधन की देह।
रोम-रोम में रम रह्यो ज्यों बादर में मेह।।"

प्रवृत्ति में प्रणय-भावनाओं का आरोप दोनों ने किया है, और यह आरोपित भावना दोनों के प्रेम के उद्दीपन की सामग्री बन गई है। लेकिन मीरा में वह उल्लास और वेदना दोनों को जगाती है और महादेवी में अधिकतर वेदना को ही। प्रकृति के समग्र व्यापारों में वर्षाऋतु दोनों को विशेष प्रिय है। कुछ उदाहरण लीजिए :

"बरसै बदरिया सावन की,
सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की।।"

—मीरा

"मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं ?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन
रोम-रोम में होता री सखि
एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से वन फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं।"

—महादेवी

"सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हेल चढ़ि-चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी
कब आवैं महाराज।
मोर पपइया बोले
कोयल मधुरे साज।
उमग्यौ इन्द्र चहूँ दिसि बरसै
दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा-नवा धरिया
इन्द्र मिलन के काज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर
बेगि मिलो महाराज।"

—मीरा

"लाये कौन सन्देश नये घन
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पदन हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन !
चौंकी निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत् के कंकण।"

× × ×

"सुख दुख से भर
आया लघु उर
मोती से उगले जल कण से
छाये मेरे विस्मित लोचन।"

—महादेवी

अथवा :

"पिक की मधुमय वंशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनी भोली,
अरुण सजल पाटल बरसाती
तम पर मृदु पराग की रोली
मृदुल अंक धर दर्पण सा सर
आँज रही निशि दृग इन्दीवर।

जीवन जलकण से निर्मित सा
चाह इन्द्र धनु से चित्रित सा
सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित-सा
तुम विद्युत बन जाओ पाहुन
मेरी पलकों पर पग धर-धर।

—**महादेवी**

महादेवी की भावाभिव्यक्ति पर भी मीरा का प्रतिबिम्ब स्पष्ट देख पड़ता है। उदाहरणार्थ :

"सखी मेरी नींद नसानी हो।
प्रिय को पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।" —**मीरा**

"पथ देख बिता दी रैन मैं प्रिय पहचानी नहीं।" —**महादेवी**

"पपइया रे पिय की वाणी न बोला।" —**मीरा**

"मुखर-पिक हौले-हौले बोल।" —**महादेवी**

"पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय।
कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन ह्वै झरलाय॥"

—**मीरा**

"कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती।"

—**महादेवी**

मीरा अपनी भावाकुलता में पूछती है :

"शूली ऊपर सेज पिया की
किस विधि मिलना होय।"

महादेवी चिंतन के द्वारा निष्कर्ष पर पहुँच जाती है :

"क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय बिंधवाना।"

24

पंत और महादेवी

शांतिप्रिय द्विवेदी

['पंत की कविता ने सौन्दर्य का अबोध कैशोर्य लिया है, महादेवी की कविता ने वेदना का दग्ध यौवन। पंत के सौन्दर्य में अनजान मधुरता है, महादेवी की वेदना में सजग दार्शनिकता। शरीर की परिधि में बँधकर भी ये निःशरीर अनुभूतियों के कवि हैं—अलौकिक आनन्द और अलौकिक वेदना के।

महादेवी जिस समष्टि तक दुःख के माध्यम से पहुँचना चाहती हैं, पंत उस समष्टि तक सुख के माध्यम से। इसीलिए महादेवी में एक उत्फुल्ल विषाद है, पंत में एक प्रसन्न आह्लाद।']

पंत और महादेवी, अब तक की खड़ी बोली की कविता के सार अंश हैं—सौन्दर्य और वेदना।

कला के भीतर से इतिहास ने जीवन की एक परिणति ली है पंत में, एक परिणति महादेवी में। 'युगांत' से पूर्व पंत मध्ययुग के सम्पन्न वर्ग की भावुकता के कवि हैं, जिसकी रीतिकालीन रसिकता आज प्रकृति के गवाक्षों में भी झाँकने लगी है—अलमोड़ा, नैनीताल, मसूरी, शिमला। पंत ने उस भावुक समाज को कवि-दृष्टि की उज्ज्वलता दी है। रीतिकाल में प्रकृति के ऊपर कुहरे की तरह पड़े हुए तामसिक आवरण को हटाकर पंत ने प्रकृति की स्वच्छ आत्मा दिखला दी है। महादेवी ने उस आत्मा में परमात्मा का आभास दिया है, भक्तिकाल के अन्तःस्पर्श से। पंत ने व्यक्त प्रकृति का उज्ज्वल मुख दिखला दिया है, महादेवी ने उस मुख को उसके अव्यक्त हृदय की विकलता से मुखर कर दिया है।

पंत की आत्मा (प्रकृति) अपनी व्यथा में मूक है, उसका बाह्य क्रीड़ा कलरव 'मूक व्यथा का मुखर भुलाव' है, किन्तु महादेवी ने उस 'मूक व्यथा' को ही वेदना की कल्याणी वाणी दे दी है।

शृंगारिकता दोनों की ही कविता में नहीं है, बाह्य शृंगार उनके चित्र के फ्रेम मात्र हैं,जैसे कबीर या मीरा के पदों में शृंगारिक रूपक। पंत की कविता ने सौन्दर्य का अबोध कैशोर्य लिया है, महादेवी की कविता ने वेदना का दग्ध यौवन। पंत के

सौन्दर्य में अनजान मधुरता है, महादेवी की वेदना में सजग दार्शनिकता। शरीर की परिधि में बँधकर भी ये निःशरीर अनुभूतियों के कवि हैं—अलौकिक आनन्द और अलौकिक वेदना के।

महादेवी के शब्द : "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद भी जीवन को अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है। परन्तु दुःख सबको बाँटकर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"—महादेवी इस मोक्ष को लेकर चली हैं। इसी प्रसंग में वे पुनः कहती हैं : "मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनाशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रंदन है।" महादेवी की कविता में इस दुःख का दूसरा रूप साकार है, इसीलिए उनकी वेदना अलौकिक है। दुःख का पहला रूप अब उनके संस्मरणों में आ रहा है। ठीक इसके विपरीत पंत आह्लाद (सौन्दर्य-प्रेम) के कवि हैं।

पंत का सौन्दर्य जितना अबोध है, उस सौंदर्य का प्रेम भी उतना ही अबोध है। पंतजी ने एक बार प्रसंग-वश अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में लिखा था : "मैं किशोर-प्रेम का ही प्रायः चित्रण करता हूँ। 'लाई हूँ फूलों का हास, लोगी मोल लोगी मोल ?' में क्या लाया या लोगी नहीं लिखा जा सकता था ? 'वीणा' में ऐसी कई कविताएँ हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि प्रेम का प्रारम्भिक उद्रेक पवित्र होने के कारण, उसमें यौन-तत्त्व न रहने या अव्यक्त रहने के कारण, किशोर-किशोरियों में सजातीय प्रेम ही—लड़की का लड़की के प्रति, लड़के का लड़के के प्रति—पहले उन्नत होता है। वह प्रेम यौन-संसर्ग छोड़कर और सभी रूपों में चुम्बन, परिरम्भण, विरह आदि में अभिव्यक्ति पाते देखा जाता है। उसमें न आस्कर वाइल्ड की गंध है न सैफो के 'Lesbianism' की।"

पंत का यह सौन्दर्य-प्रेम विश्व की सीमा में रहकर भी अलौकिक हो गया है, जैसे जीवन की सीमा में शैशव।

पंत का यह दृष्टिकोण 'गुंजन' तक यत्र-तत्र चला आया है, इसके बाद 'गुंजन' से ही परिणत वय की अनुभूतियाँ भी कुछ-कुछ अग्रसर हो गई हैं : 'आज रहने दो यह गृहकाज' कैशोर्य्य के बाद यौवन का उद्बोध सूचित करता है।

पंत में पहले जीवन के प्रति न आसक्ति थी; न विरक्ति थी; केवल सहज अनुरक्ति थी। आज वह जीवन की आसक्ति की ओर चला गया है। पंत ने जीवन का प्रारम्भ आध्यात्मिकता से नहीं, बल्कि भौतिक सरलता से किया था, कालक्रम से उसने यौवन की वक्रता भी स्वीकार कर ली। किंतु उसका शैशव, उसका यौवन

जड़ नहीं, चैतन्य है इसीलिए वह पशु-आकांक्षाओं में आबद्ध नहीं, बल्कि हृदय की सहजवृत्तियों के छंदों में बँधा है। महादेवी जिस समष्टि तक दुःख के माध्यम में पहुँचना चाहती हैं, पंत उस समष्टि तक सुख के माध्यम से। इसीलिए जब कि महादेवी में एक उत्फुल्ल विषाद है, पंत में एक प्रसन्न आह्लाद। पंत में महादेवी की-सी आध्यात्मिक दार्शनिकता तो नहीं है, किंतु एक भौतिक दार्शनिकता अवश्य है। 'परिवर्तन' में एक बार उस दार्शनिकता ने एक रूढ़ आध्यात्मिकता की ओर जाने का प्रयत्न किया था, किंतु उससे संतोष न होने के कारण 'युगांत' और 'ज्योत्स्ना' से उसने भौतिक सतह पर ही एक नवीन संस्कृति की दार्शनिकता का संकेत ग्रहण कर लिया। यह संस्कृति न जड़ है, न चेतन है; दोनों का एकीकरण है। न दैवी है, न आसुरी; यह है मानुषी।

इधर महादेवी को हम 'नीहार' से देखते हैं कि उनका कवि शुरू से ही एक आध्यात्मिक दर्शन लेकर चला है। सूफी कवियों जैसा प्रणय का रूपक बाँधकर (ऐहिक सीमा से परिचय जोड़कर) जीवन को कबीर की अतीन्द्रियता और बुद्ध की करुणा के योग से असीम की ओर उन्मुख कर दिया है, लोक को लोकोत्तर बना दिया है। बुद्ध की करुणा ने उन्हें वेदना की व्यापक अनुभूति दी है, लोक-सृष्टि के साथ एक आत्मीयता स्थापित करा दी है तो कबीर की अतीन्द्रियता ने उन्हें असीम के प्रति जागरूक भी कर दिया है। सूफी पद्धति के रूपक का कारण स्वामी रामतीर्थ का मधुर आध्यात्म है। पंत और महादेवी की दार्शनिक दिशाओं का अंतर हम थोड़े में बड़ी स्पष्टता से ग्रहण कर लेंगे यदि हम स्वामी विवेकानद और स्वामी रामतीर्थ को सामने रखेंगे। विवेकानन्द के लिए आध्यात्मिकता एक उच्च माध्यम है लोक-संग्रह के लिए; रामतीर्थ के लिए लोक-संग्रह एक सीमित माध्यम है आध्यात्मिक जीवन के लिए। लोकसंग्रह का पथ दोनों ने ही अपनाया है किंतु दोनों के लक्ष्य की दिशाएँ भिन्न हैं। इसके लिए हम दोनों कवियों की फिलासफी देख सकते हैं। पंत की फिलासफी 'गुंजन' में है, महादेवी की फिलासफी 'रश्मि' में। दोनों कवियों की ये कृतियाँ ऐसे काव्य-केन्द्र हैं, जहाँ से हम इनके समस्त काव्य की आत्मा में झाँक सकते हैं।

मुख्यतः 'पल्लव', अंशतः उसके बाद की कृतियों में पंत वस्तुजगत् की सूक्ष्मता (भाव-जगत्) की ओर उन्मुख थे, जब कि महादेवी शुरू से ही भावजगत् से भी आगे की सूक्ष्मता (अन्तर्जगत्) की ओर उन्मुख हैं। पंत पहले जड़ के चैतन्य-स्वरूप की ओर थे, महादेवी चैतन्य के अन्तःस्वरूप की ओर।

कविता में महादेवी आज भी वहीं हैं, जहाँ कल थीं; किंतु पंत जहाँ कल थे वहाँ से आज की ओर बढ़ गए हैं। आज उन्होंने 'युगवाणी' दी है, समाजवाद की बाइबिल; महादेवी ने छायावाद की गीता दी है—'यामा'।

पंत की जो अनुभूतियाँ पहले निःशरीर थीं वे अब शरीरस्थ हो गई हैं। पंत ने पहले अपने जिस चेतन (भाव-जगत्) के जड़रूप (वस्तुजगत्) को छोड़ दिया

था, आज उन्होंने उसी को चेतन का आधार बना लिया है। आवश्यकता की दिशा में वे प्रगतिशील हैं, किंतु आधार की दिशा में वे अपनी ही पूर्व-सीमा से पीछे गए हैं, यथा काव्य (भाव) से गद्य (यथार्थ) की ओर। यद्यपि जड़-चेतन के संयुक्तीकरण की तरह वे गीत और गद्य के समन्वय से गीत-गद्य लिख रहे हैं; किंतु आज वे मुख्यतः गद्योन्मुख हैं। अपने द्वारा सम्पादित 'रूपाभ' के प्रथम अंक में इस दिक्परिवर्तन का थोड़े ही शब्दों में पंत ने बड़ा ही मार्मिक कारण दिया था :

"कविता के स्वप्न-भवन को छोड़कर हम इस खुरदुरे पथ पर क्यों उतर आए···! इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा-अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्नजड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ा है। और युग-जीवन ने उसके चिरसंचित सुखस्वप्नों को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड़ रहा है।"

आज पंत ने युग की वास्तविकता का आमंत्रण अवश्य स्वीकार कर लिया है, किंतु वस्तुजगत् का प्रतिनिधि न होकर अपने ही भाव-जगत् का प्रतिनिधि रहकर।

शुरू से ही पंत की एक ही टेक है—सौन्दर्योल्लास। 'पल्लव' के जिस कवि ने कहा था :

"अकेली सुन्दरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्य्यों की संधान !"

'युगांत' में उसी कवि ने यह छवि-चित्र भी दिया है :

"आह्लाद, प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्ग सद्य सौन्दर्य्य-सृष्टि,
मंजरित प्रकृति, मुकुलित दिगंत,
कूजन-गुञ्जन की व्योम-वृष्टि !"

वस्तुजगत् के आधार-पट पर पंत इसी भाव-जगत् को प्रतिफलित देखना चाहते हैं। पहले वे जिस जीवन-सौन्दर्य के कवि थे, आज वे उसी सौन्दर्य के वैरूप्य (कुरूपता) के संशोधक हैं।

पंत ने पहले छायावाद की ललित कला दी थी, आज वे समाजवाद की वस्तुकला दे रहे हैं। पहले उन्होंने 'भू-पलकों पर स्वप्नजाल-सी' छाया का रेशमी संसार बुन दिया था, आज वे भू-पृष्ठों पर जीवन के स्थापत्य के कठिन उपकरण चुन रहे हैं। आज वे सौन्दर्य के नए आकार और जीवन के नए नीड़ की रचना कर रहे हैं।

हाँ, युग के द्वार पर उन्होंने जीवन-व्यस्त वैज्ञानिक होकर नहीं, बल्कि जीवन-मुग्ध कवि होकर अपनी उपस्थिति दी है। आज उनकी भाषा बदल गई है, अभिव्यक्ति बदल गई है, दिशा बदल गई है, किंतु 'अभिव्यक्त' वही है जिसे कल तक वे अपने भाव-काव्यों में देते आए हैं। पहले जिस भाव-जगत् में वे काव्य के माध्यम से गए थे, आज उसी भाव-जगत् में भूगोल, इतिहास और विज्ञान के माध्यम से जाना चाहते हैं। कुछ अंशों में वे दर्शन को भी अपनाते हैं, गांधीवाद के रूप में। पंत पहले केवल सौन्दर्य को लेकर चले थे, आज वे सौंदर्य और संस्कृति दोनों को लेकर चल रहे हैं। उनके सौन्दर्य का आधार समाजवाद (भौतिक दर्शन) है, उनकी संस्कृति का आधार गांधीवाद (आध्यात्मिक दर्शन)। विज्ञान और ज्ञान के योग से वे जीवन का एक संतुलित सौन्दर्य देना चाहते हैं। किंतु सम्प्रति पंत समाजवाद की ओर ही विशेष उन्मुख हैं, कारण, जो भाव-जगत आज संकटग्रस्त हो गया है, अभावों में जिसकी इतिश्री हो रही है, पहले उसका उद्धार चाहते हैं, सूक्ष्म को स्थूल का आधार देकर। आज वे भावों को शब्दों में नहीं, जीवन में साकार देखना चाहते हैं; वस्तुजगत् को ही भाव-जगत् बना देना चाहते हैं। इसीलिए पंत ने जीवन की कलात्मक व्यंजना के लिए वस्तुजगत् का आधार-पट ले लिया है। आज पंत को वह सब कुछ चाहिए जिससे मनुष्य जी जाए, वस्तुजगत् खिल जाए। मनुष्य के जीने और वस्तुजगत् के खिलने में ही जीवन और सौन्दर्य का अस्तित्व है। अन्यथा, आज मनुष्य मृत होता जा रहा है, वस्तुजगत् लुप्त होता जा रहा है।

"कहाँ मनुज को अवसर
देखे मधुर प्रकृति-मुख ?
भव अभाव से जर्जर
प्रकृति उसे देगी सुख ?"

—'**युगवाणी**'

यह उसी कवि का प्रश्न है जिसने स्वयं एक दिन हमारे काव्य-साहित्य में प्रकृति-सुषमा की चारु चित्रशाला सजा दी थी। आज वह अपनी ही सृष्टि को निराधार पा रहा है। 'पल्लव' के सुकुमारतम कवि का 'युगवाणी' की ओर आना ही युग की करालता का सबसे बड़ा प्रमाण है। कहाँ वह कोमल कलकंठ, कहाँ यह विकल युग ! ओस के मृदु स्पर्श से ही सिहर जाने वाले फूल को भी आज पत्थर का भार उठाना पड़ा है।

छायावाद के कवि जब कि वस्तुजगत् की विषमता में ही अपना भाव-जगत् स्थापित करना चाहते हैं, पंत उस विषमता से जर्जरित वस्तुजगत् में एक स्वस्थ युग देखना चाहते हैं। इसीलिए वे 'आम्र विहग' (युगवाणी) शीर्षक कविता में मानो छायावादी कवियों को संबोधन कर कहते हैं :

"हे आम्र विहग !—
तुम ताम्र सुभग
नव पर्णों में
छिप कर उँडेलते कर्णों में
मंजरित मधुर
स्वर-ग्राम प्रचुर
उन्मुक्त नील...
तुम पंख ढील
उड़ उड़ सलील
हो जाते लय
निःसीम शान्ति में चिर सुखमय;—
जब नील-निलय में रुद्ध हृदय
हो उठता पीड़ातुर अतिशय।

× × ×

हे आम्र विहग !
तुम सुनो सजग,—
जग का उपवन
मानव जीवन
है शिशिर-ग्रस्त
वह व्याधि त्रस्त
ये जीर्ण शीर्ण, चिर दीर्ण पर्ण
जो स्रस्त, ध्वस्त, श्रीहत, विवर्ण,
क्षय हों समस्त
युग सूर्य अस्त।"

[2]

पंत और महादेवी छायावाद की कविता के दो विशेष कलाधर हैं। मध्यकाल की काव्यचेतनाओं को इन्होंने नूतन रूप-रंग और वाणी दी है। प्रकृति के मनोहर व्यक्तित्व का परिचय पंत ने दिया, प्रकृति को पुरुष पुरातन का दिव्य परिधय महादेवी ने। प्रकृति का उल्लास पंत में है; प्रकृति का उच्छ्वास महादेवी में। पंत की कविता में प्रकृति एक बालिका की तरह खेलती है, महादेवी की कविता में प्रकृति विरहिणी की तरह अपने को निवेदित करती है। एक में क्रीड़ा है, दूसरे में पीड़ा। फलतः दोनों की अभिव्यक्तियों का रुख-मुख एक-दूसरे से भिन्न है। अभिव्यक्तियों में अन्तर होते हुए भी दोनों ललितकला के ही कवि हैं—चित्रकला और संगीतकला के संयोग से इन्होंने काव्य (भाव) कला की कमनीय रचना की है। यद्यपि कला का विश्वविद्यालय दोनों का एक है, किन्तु उनके जीवन की 'थीसिस'

अलग-अलग है।

खड़ी बोली को काव्योचित भाषा देने का एकच्छत्र श्रेय पंत को है। यदि पंत का कवि नहीं आया होता तो आज छायावाद की कविता अपनी कोमल अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा को अपना लेती। ब्रजभाषा ने मध्य-युग से लेकर अभी कल तक जो कल-कोमल प्रांजलता, मनोहर चित्र चारुता प्राप्त की थी उसे पंत ने अपने कुल बीस-पच्चीस वर्षों के काव्य-जीवन में ही खड़ी बोली को दे दिया। भाषा के परिमार्जन में पंत का महत्त्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि ब्रजभाषा को मधुर बनाने के लिए अढ़ाई-तीन सौ वर्षों के बीच में एक के बाद एक सैकड़ों कवियों का सहयोग मिलता गया किन्तु पंत को अकेले ही खड़ी बोली का सौन्दर्य-विन्यास करना पड़ा है। उन्होंने खड़ी बोली को जो व्यक्तित्व दे दिया है उसका अतिक्रम कर आज भी कोई आगे नहीं जा सका है।

पंत ने जिस खड़ी बोली को रमणीयता दी, महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर प्राणप्रतिष्ठा कर दी। ताजमहल के भीतर उन्होंने दीपक जला दिया। भाषा के सौन्दर्य में पंत बेजोड़ हैं, अभिव्यक्ति की मार्मिकता में महादेवी। उधर प्रसाद और निराला ने छायावाद को प्रबन्धात्मक व्यक्तित्व दे दिया है, द्विवेदीयुग के 'पद्य-प्रबन्ध' को चरम उत्कर्ष। इधर पंत और महादेवी ने छायावाद के मुक्तक को एक निश्चित व्यक्तित्व दे दिया है। द्विवेदीयुग की 'झंकार' को इनके द्वारा सार्थकता प्राप्त हो गई है। ब्रजभाषा में जैसे मुक्तक का एक टकसाली रूप बन गया, वैसे ही पंत और महादेवी की कविताओं से छायावाद के मुक्तक का भी। नये-नये कवि उन्हीं के मॉडल पर अपनी रचना करने लगे। द्विवेदीयुग की खड़ी बोली में यह श्रेय गुप्तजी की कविताओं को प्राप्त था। कुछ अंशों में माखनलाल, प्रसाद और निराला को भी यह श्रेय दिया जा सकता है, किन्तु इनकी कला को सम्मान देकर भी नवयुवकों ने पंत और महादेवी की कला को ही अधिक मनोयोग से अपनाया। गुप्तजी के बाद माखनलाल, माखनलाल के बाद प्रसाद, प्रसाद के बाद पंत, पंत के बाद महादेवी की लोकप्रियता अधिक बढ़ी। नवयुवक भावोच्छल होते हैं, वे तरलता अधिक चाहते हैं। तरलता के लोभ में वे सुरुचि को भी छोड़ बैठते हैं, इसी कारण उर्दू शायरी को भी अपना बैठते हैं। महादेवी की तरलता में एक आर्य कवित्व है, उसने नवयुवकों को रोमांस का मनोहर संयम दिया है। महादेवी की कविता उन्हें मानो अपने ही जी की गहरी बात-सी लगती है, वे उसे अपना अन्तःकरण दे देते हैं। सच तो यह है कि महादेवी की कविताओं के कारण ही हिन्दी में उर्दू भावुकता की लोकप्रियता घट गई है।

मुक्तक के क्षेत्र में पंत और महादेवी में उतना ही अन्तर है जितना सूर और मीरा में। पंत मुख्यतः वर्णनात्मक है, महादेवी मुख्यतः उद्गारात्मक। साथ ही एक में सूर जैसा सख्य-भाव है, दूसरे में मीरा जैसा माधुर्य-भाव। साथ ही बड़ी कहानियों और छोटी कहानियों की तरह इनकी कविताओं को हम दीर्घ मुक्तक

और संक्षिप्त मुक्तक भी कह सकते हैं। पंत में भावों का विशद प्रसार है, महादेवी में हृदय का संक्षिप्त संकलन। पंत ने उद्यान दिया है, महादेवी ने पुष्पस्तवक। पंन की यह बहुत बड़ी खूबी है कि भावों का विशद क्षेत्र लेकर भी अपनी कविता के 'पल्लव' और 'गुंजन' में सौन्दर्य (भाषा) और माधुर्य (रस) का ताल और स्वर की तरह संतुलन बनाए रखा है। यह बड़े सधे हुए हाथों का काम है। काव्यकला की यह साधना अन्यत्र दुर्लभ है, इसी साधना में पंत की लोकप्रियता छिपी है।

छायावाद के मुक्तकों में एक नई विशेषता रिपीटीशन की आई है। इस दिशा में अधिकांश कवियों ने पुराने कवियों की-सी टेक ही अपनाई है, किन्तु पंत ने कविता में रिपीटीशन का उपयोग विशेष कलात्मक रूप से किया है और बहुत अच्छा किया है। पंत का रिपीटीशन उस संगीत की तरह है, जो सब कुछ बजाकर अपनी अन्तिम ताल में प्रथम ताल को छू देता है। उनके रिपीटीशन से कविता में मर्मव्यंजकता आ जाती है। फिर भी संगीत पंत का लक्ष्य नहीं है। पंत में चित्र-कला प्रधान है, महादेवी में संगीत-कला। संगीत पंत का माध्यम है, चित्र महादेवी का। पंत की कविता चित्र की रेखाओं जैसी पुष्ट है, महादेवी की कविता-संगीत के प्रवाह जैसी तरल। पंत की कविता आकुंचित है, महादेवी की कविता आस्फालित। निराला की कविता के पदविन्यास में तो अकुंचन है किंतु भावों में आस्फालन है। प्रसाद की कविता में केवल एक श्लथ-स्फालन।

आज तो पंत संगीत को छोड़ चले हैं, किंतु महादेवी उसकी टेक बनाए हुई हैं। गीति-काव्य को महादेवी से विशेष गौरव मिला है। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में : "गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवीजी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव-भंगी। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"

पंत और महादेवी की कला और जीवन में बड़ा भारी अन्तर यह है कि शुरू से ही पंत साकारता की ओर उन्मुख रहे, महादेवी निराकारता की ओर। पंत कहते हैं :

"राशि राशि सौन्दर्य, प्रेम,
आनन्द, गुणों का द्वार,
मुझे लुभाता रूप, रंग,
रेखा का यह संसार।" —'युगवाणी'

महादेवी कहती हैं :

"विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द;

यहाँ किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन !"

पंत कहते हैं :

"सच है, जीवन के वसंत में
रहता है पतझार,
वर्ण-गंधमय कलि-कुसुमों का
पर ऐश्वर्य अपार।"

'पल्लव' में भी पंत ने कहा था :

"म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान
फलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है, अरे, आत्मबलिदान,
जगत केवल आदान-प्रदान।"

महादेवी ने जिस सत्य को 'एक मिटने में सौ वरदान' कहकर जीवन का आध्यात्मिक दर्शन दिया था, पंत ने उसी सत्य को जीवन का भौतिक दर्शन दे दिया है। आज पंत के कलात्मक टेकनीक भले ही बदल गए हों, किन्तु मूलतः आज पंत का दृष्टिकोण वही है जो उनके पूर्वकाव्यों में। हाँ, उनका दृष्टिकोण पहले भावात्मक था, अब व्यावहारिक हो गया है।

महादेवी स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर हैं—शरीर से मूर्त्ति, मूर्त्ति से चित्र, चित्र से संगीत (आत्मा)। पंत सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर—संगीत से चित्र, चित्र से मूर्त्ति, मूर्त्ति से शरीर (मांसलता)।

पंत पहले जीवन का स्थूल पार्थिव दृष्टिकोण रखते हुए भी कला की सूक्ष्मता की ओर थे, आज वे पार्थिव दृष्टिकोण के साथ ही पार्थिव कला की ओर भी आ गए हैं। आज तूलिका और लेखनी का स्थान छेनी और कुदाली ने ले लिया है, रूप-रंग का स्थान रक्त-मांस ने।

'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' उनकी इस नई दिशा की काव्य-कृतियाँ हैं। इन कृतियों से पंत की रचनाओं का उत्तरार्द्ध बनता है। इनके पूर्व की कृतियाँ ('वीणा', 'ग्रंथि', 'पल्लव', 'गुँजन') उनके पूर्वार्द्ध में हैं।

पहले उन्होंने चित्रकला दी थी, आज वे भास्कर-शिल्प भी दे रहे हैं। युग जिस मांसल मनुष्य को जन्म देने जा रहा है, वे उसी की मूर्ति गढ़ रहे हैं, जीवन के रूक्ष किन्तु अनिवार्य उपकरणों को लेकर। उनका यह शिल्प अभी प्राथमिक अवस्था में है, अभी वे नई कला की संगतराशी कर रहे हैं। जब यह कला भी मूर्तिमंत होगी तब उसी तरह भली लगने लगेगी जैसे द्विवेदीयुग के बजाय छायावाद की कविता। इसके लिए भी कुछ समय अपेक्षित है। आज पंत की कविता में जो रूक्षता है वह पंत के कवि की नहीं, बल्कि काव्य के नये उपकरणों की रूक्षता है। 'घननाद' में ठङ् ठङ् ठङ् ही तो सुना जा सकता है।

जीवन के प्रहर्ष (भाव-जगत् के अबोध उल्लास) में पंत का जो कवि सुकुमार था, आज वह जीवन के संघर्ष (युग के जागरण) में परुष हो गया है। इसीलिए जीवन के शैशव में सौन्दर्य-जगत् को देखने का दृष्टिकोण था, वह जीवन के तारुण्य में बदल गया है। आज उनकी कला बदली है, दृष्टिकोण बदला है, किंतु लक्ष्य उनका भी एक नवीन भाव-जगत् है जो आज के अभावों का भावी स्वप्न है।

आज पंत ने जीवन के कठोर सत्यों की कला ली है; आज वे लहरों पर नहीं पत्थरों पर कला को गढ़ रहे हैं। जीवन को पंत फिर उसके अथ से उठा रहे हैं, अब तक के इतिहासों को छोड़कर मानो एक प्रस्तर-युग से जीवन का प्रारम्भ कर रहे हैं, उसे अर्थ, धर्म, कला और संस्कृति का नया परिचय देने के लिए। उनकी फिलासफी, उनकी आकांक्षा, उनकी निर्माणकला 'युगवाणी' में पुंजीभूत है।

[3]

'युगांत' से पंत हिंदी-कविता का एक युग पीछे छोड़ते हैं, एक युग आगे शुरू करते हैं। फलतः इसमें पिछले युग के प्रतीक-स्वरूप पंत की ललित-कला की भी एकाध कविताएँ हैं और अधिकांशतः नये युग की वस्तु-कला की। 'गुंजन' से ही पंत ने वस्तुकला की साधना शुरू कर दी थी और आश्चर्य कि उसमें उन्हें प्रारम्भ से ही बड़ी परिष्कृत सफलता मिली। 'युगांत' में 'गुंजन' की ललित और वस्तु-कला का संक्षिप्त है। 'गुंजन' में ये दोनों कलाएँ अलग-अलग कविताओं में अलग-अलग हैं, किंतु 'युगांत' में पंत ने प्रायः इनका एकीकरण करने का यत्न किया है। सब मिलाकर 'युगांत' में ललितकला के साथ वस्तुकला गौणरूप में सम्मिलित है। किंतु 'युगवाणी' में इसका वैपरीत्य है, उसमें वस्तुकला की प्रधानता है, ललितकला गौणरूप में सम्बद्ध है। 'ग्राम्या' में उनकी वस्तुकला निखर गई है, उसमें भास्कर-शिल्प ने कलात्मक मूर्तिमत्ता पा ली है। उसमें समाजवाद की मुक्तक-कला एक अवस्थान पा गई है। 'ग्राम्या' पंत के गंतव्य का प्रारम्भ है, जैसे छायावाद की कला में 'वीणा'।

मूर्तिकला के निर्माण में पंत का आदर्श चित्रकला है। उसी के 'मॉडल' पर वे अपनी मूर्त्तियों की रचना करते हैं। यों कहें कि छायावाद की ललित-कला गाद्यिक उपकरणों को लेकर पंत द्वारा ठोस बन रही है। कविता के बाद जिस प्रकार रविबाबू ने चित्रकला की रचना की उसी प्रकार पंत ने छायावाद की चित्रकला के बाद समाजवाद की मूर्तिकला। चित्रकला में जिस प्रकार रविबाबू अपनी काव्यकला को नहीं भूल सके, उसी प्रकार पंत अपनी चित्रकला को। मूर्तिकला का आधार पाकर उनकी चित्रकला सुदृढ़ हो गई है। जिस प्रकार चित्रकला में भाव गतिशील रहते हैं, उसी प्रकार पंत की मूर्तिकला में चित्र गतिशील हो गए हैं, निश्चल मूर्ति ही नहीं। 'युगवाणी' में 'गंगा की साँझ', 'जलद', 'प्रलय-नृत्य' इसके उदाहरण हैं। भविष्य के स्वप्नों में बैठकर 'युगवाणी' में यत्र-तत्र पंत ने ललित-कला का नवीन दृढ़ रूप भी दिया है, यथा, 'मधु के स्वप्न', 'पलाश', तथा अन्य

प्राकृतिक चित्रों में।

'गुंजन' से 'युगांत' तक हम मुख्यतः कलाकार पंत से ही परिचित रहे हैं। उनमें उनका विवेचक प्रच्छन्न रहा है। 'ज्योत्स्ना' में भी उनका कलाकार ही प्रमुख रहा है, विवेचक माध्यम। किंतु 'युगवाणी' में विवेचक ही प्रमुख है, कलाकार माध्यम। इस भिन्नता के होते हुए भी 'युगवाणी' में वे ही भाव, विषय, आलम्बन और विचार हैं जो 'ज्योत्स्ना' में; दोनों के शरीरों में अंतर है, शिराओं में नहीं— वह रूप-नाट्य है, यह मुक्तक काव्य। उसमें गीत और गद्य हैं, इसमें गीत-गद्य। इस गीत-गद्य (युगवाणी) द्वारा पंत की काव्यकला के कुछ नये टेकनीक सामने आते हैं। पंत की पिछली ललितकला में जो आकुंचन है, वही इस नई वस्तुकला में भी। पिछली कला में यदि पंत नवनीत की तरह जम गए हैं तो इस कला में बर्फ की तरह। पंत में स्वभावतः आस्फालन नहीं है, यदि उनमें कहीं कुछ आस्फालन है तो वह उनकी जमी हुई तरलता का उन्मेष है। आस्फालन की कला के कवि निराला हैं। पंत की आकुंचित कला छोटे से छोटे छंदों में चली गई है; निराला की स्फीत कला मुक्त छंद की ओर। पंत की रुचि कला के 'शार्टकट' की ओर है, निराला की रुचि 'लांग डिजाइन' की ओर। पंत एक सुस्त कलाकार हैं, निराला उद्बुद्ध।

'युगवाणी' में पंत पहली बार टेकनीशियन होकर आए हैं। अपनी ललितकला की रचनाओं में भी पंत टेकनीशियन हैं, किंतु उनमें काव्यात्मकता (रसात्मकता) इतनी प्रधान है कि उनकी कलाकारिता को विरल करके हम नहीं देख पाते। 'युगवाणी' में काव्यात्मकता इतनी कम है कि उसमें उनका कला-प्रयोग छिप नहीं पाता।

'युगांत' में पंत निर्देशक कलाकार थे, 'युगवाणी' में व्याख्याता कलाकार, 'ग्राम्या' में दर्शक कलाकार। 'युगांत' में पंत ने अपने कवि को जगाया है, 'युगवाणी' में समुदाय को उद्बोधित किया है, 'ग्राम्या' में समुदाय के एक विशेष अंग को उपस्थित किया है। आगे?

'युगांत' में पंत ने आगे छायावाद की कला को अंतिम श्री दी, 'युगवाणी' में उसकी अवशेष-श्री (पतझर) दी, 'ग्राम्या' में युगवाणी' को चित्रवाणी दी। 'युगवाणी' में चित्रकला, मूर्तिकला का मॉडल रही है; 'ग्राम्या' में मूर्तिकला चित्रकला में ढल गई है।

हिमालय की शोभा-श्री ने पंत को कलाकार बनाया, कालाकाँकर के ग्राम्य-जीवन ने उन्हें मानव-समाज के निकट पहुँचाया। अंशतः 'गुंजन' तक पंत का एक काव्य-संस्कार पूर्ण हो जाता है। 'युगांत' और 'युगवाणी' से नये काव्य-संस्कार फलतः नये जीवन-संस्कार की पंत द्वारा लोकसाधना शुरू होती है। 'ग्राम्या' में आकर उस साधना ने अपनी पहली सिद्धि प्राप्त कर ली है।

एक युग में 'पल्लव' के जिस भावप्रवण कवि को हम देख चुके हैं वही कवि इतने स्वाभाविक ग्राम्यचित्र भी दे सकता है, इस पर आश्चर्य इसलिए नहीं होता कि पंत में सभी तरह की कला की क्षमता है।

कला की दृष्टि से 'कर्मवीर' ने 'ग्राम्या' पर एक प्रकाश डाला था। उसी के शब्दों में—' ''ग्राम्या' पके हुए धान से लहलहे खेत के समान है। उसमें ग्रामीण जीवन की आर्द्रता है। 'एस्थीट' कवि ने कई सुन्दर चित्र-राग आलेखित किए हैं। भाषा और भी सरल, ओजवती और सजीव हो उठी है। कई जगह ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग है जो 'लोकल कलर' उत्पन्न करता है।······'धोबियों का नाच', 'चमारों का नाच', 'कहारों का रुद्र-नर्तन', इफेक्ट की दृष्टि से अत्यन्त ललित चीज़ें हैं।······'भारतमाता ग्रामवासिनी', 'अहिंसा', 'चरखा-गीत' सुन्दर संघगीत (कोरस) हैं।''

यद्यपि पंत 'ग्राम्या' में एक दर्शक कलाकार हैं, किन्तु 'युगवाणी' के उनके व्याख्याता व्यक्तित्व ने इसमें भी अपना कण्ठ मिला दिया है। एक चित्र देकर मानो चित्र-परिचय के रूप में कवि वक्तव्यकार हो गया है। कहीं-कहीं वह सुसंगत लगता है, किन्तु कहीं-कहीं 'ग्राम्या' के चित्र-नियोजन 'मैजिक लैंटर्न लेक्चर' की सीमा में चले गए हैं। इसकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि चित्र अपनी सजीवता में स्वयं बोलते हैं।

पंत में जो आकार-प्रियता है वह चित्ररूप में 'ग्राम्या' में प्रकट हुई है। सार्वजनिक रूप में उनका वैयक्तिक असन्तोष भी व्यक्त हुआ है।

'ग्राम्या' के नृत्य-चित्र उदयशंकर की याद दिलाते हैं। उदयशंकर के नृत्य, कला के क्षेत्र में एक पुरानी संस्कृति का प्रतिपादन करना चाहते हैं, किसी नवीन जीवन का नहीं। किन्तु पंत के नृत्य-चित्र युग सत्य का निर्देश करना चाहते हैं, एक नवीन जीवन के लिए। पुराने क्षेत्र को लेकर पंत ने उसे देखने का अपना दृष्टिकोण स्वतन्त्र रखा है, इसीलिए उन्हें वक्तव्य द्वारा अपने दृष्टिकोण को अवगत करना पड़ा है।

'ग्राम्या' की काव्यकला को हम 'युगांत' और 'युगवाणी' का संयोग कह सकते हैं, चित्र और वाणी का सहयोग। 'युगांत' में पंत ने नई कला के लिए चित्र-साधना की थी; 'युगवाणी' में उस कला के लिए शब्द-साधना। इन दोनों साधनाओं ने 'ग्राम्या' में संयुक्त होकर अपनी एक गति-विधि निश्चित कर ली है। सब मिलाकर 'युगवाणी' का वक्तव्य-प्राधान्य 'ग्राम्या' में कम हो गया। पंत कविता की ओर आ गए हैं, आगे पंत की कला इस नई कविता का क्या रूप धारण करेगी, यह अनुमेय है। ('ग्राम्या' के बाद उनकी ये पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—'स्वर्णकिरण' 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा', 'युगपथ')।

[4]

'युगांत' में पंत मुख्यतः गांधीवाद की ओर थे, जीवन के चिन्तन में अन्तर्मुख थे। उस समय पंत सृष्टि की सुन्दरता को आत्मा के भीतर से झाँक रहे थे, यथा :

''चित्रिणि! इस सुख का स्रोत कहाँ
जो करता नित सौन्दर्य-सजन ?

'वह स्रोत छिपा उर के भीतर'
क्या कहती यही सुमन-चेतन ?"

—'युगांत' में 'तितली'

किन्तु 'युगवाणी' से वह आत्मचिंतन आत्मा में ही केन्द्रित न रहकर शरीरधारी भी हो गया। फलतः आत्मा की कला शरीर की कला भी पा गई। किन्तु 'युगवाणी' में भी पंत गांधीवाद को भूले नहीं हैं, उस पर उनकी एकान्त श्रद्धा है, 'बापू' शीर्षक पहली कविता कवि का आत्मोद्घाटन कर देती है, यद्यपि उसे 'युगवाणी' के प्रारम्भ का पूर्व-पृष्ठ देकर वे आज के द्वन्द्वों को उसके आगे उपस्थित कर देते हैं, उसे मन्दिर में छोड़कर जीवन के गृह-प्रांगण में आ जाते हैं। आज पंत सूक्ष्म चेतन (आत्मा) को सुन्दर आकार (समाजवाद) देने को अधिक उत्सुक हैं। विज्ञान ने जिस आत्मा को खण्डित कर दिया है, पंत ने उसी आत्मा को पुनर्जन्म देने के लिए नवीन मानवी मूर्तियाँ गढ़ दी हैं। आज भी वह सगुण-जगत् का ही कवि है, किन्तु अब वह समाजवादी है, इसीलिए उसकी गठन बदल गई है।

आज के समाधानों को पाने के लिए कवि के 'पल्लव' में ही एक तड़फड़ाहट आ गई थी :

"दैव ! जीवन-भर का विश्लेष, मृत्यु ही है निःशेष !!"

यह कवि का पिछले आस्तिक समाज के भीतर निराश निश्वास था। 'युगांत' से उसके भीतर एक नवीन आशा का संचार हुआ, वह समाजवाद की ओर उन्मुख हुआ। 'युगांत' के बाद 'युगवाणी' में कवि ने उसी नवीन आशा को शक्ति देने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार युग का व्यक्तित्व ग्रहण कर लेने के बाद 'ग्राम्या' में कवि ने जीवन को समाजवादी निरीक्षण और गांधीवाद संरक्षण दिया। असल में पंत न तो समाजवाद से विमुख हैं और न गांधीवाद से ; वे दोनों के सम्मुख हैं। दोनों के भीतर जो सत्य हैं उन्हें स्वीकार करके दोनों की अपूर्णताओं की एक-दूसरे से पूर्ति चाहते हैं। यों कहें, वे आत्मा की भूख भी मिटाना चाहते हैं और शरीर की भूख भी। मुख्यतः पंत में आत्मा की भूख के लिए अधिक आस्था है इसीलिए वे उसके प्रति प्रश्नोमुख होकर भी नतमस्तक हैं, ('ग्राम्या' की 'महात्माजी के प्रति' और 'बापू' शीर्षक कविताएँ इसकी सूचक हैं, साथ ही हम यह भी देखते हैं कि पंत ने समाजवादी युग के किसी यन्त्र का स्वर न सुनाकर 'चरखा' का स्वर ही सुनाया है)। 'युगवाणी' देकर भी पंत 'संकीर्ण भौतिकतावादियों के प्रति' प्रश्न-सजग हैं:

"आत्मवाद पर हँसते हो रट भौतिकता का नाम ?
मानवता की मूर्त्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?"

पंत शारीरिक आवश्यकताओं को स्वीकार करके भी उसी को प्रधान नहीं मान लेते, बल्कि आत्मवाद और भूतवाद के संयोजन से एक नवीन संस्कृति का

उद्भव चाहते हैं, साथ ही मनुष्य की अनिवार्य शारीरिक भूख-प्यास के प्रति क्षमाशील दृष्टिकोण चाहते हैं :

"मानव के पशु के प्रति
हो उदार नवसंस्कृति।"—'युगवाणी'

पन्त जिस तरह संकीर्ण भौतिकवादियों को नहीं चाहते, उसी तरह संकीर्ण आध्यात्मवादियों को भी। ये दोनों अपने-अपने जिन सत्यों की लकीर पकड़कर चल रहे हैं, पंत उन्हीं के ठीक अभिप्रायों का परस्पर समन्वय चाहते हैं। अभी तो ये दोनों 'अनमिल आखर' हो रहे हैं।

'ज्योत्स्ना' में पत ने उसी समन्वय को भविष्य के पलकों में इस प्रकार प्रत्यक्ष किया है। "पाश्चात्य जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भर एवं अध्यात्मवाद के अस्थिपिंजर में भूत या जड़ विज्ञान के रूप-रंग भर हमने नवीन युग की सापेक्षतः परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया।" और "इसीलिए इस युग ('ज्योत्स्ना' में निर्दिष्ट भावी युग) का मनुष्य न पूर्व का रह गया है, न पश्चिम का रह गया है; पूर्व और पश्चिम दोनों मनुष्य के बन गए हैं।"

यह पंत का सापेक्षिक दृष्टिकोण है। किन्तु पंत का एक निरपेक्ष दृष्टिकोण भी है। वे अपनी दार्शनिक सूक्ष्मता में बहुत ऊपर उठ जाते हैं। एक ओर तो सापेक्षिक दृष्टिकोण से वे यह कहते हैं :

"सुख दुःख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन।"

दूसरी ओर उनका यह निरपेक्ष दृष्टिकोण भी है :

"सुख-दुःख के पुलिन डुबाकर
लहराता जीवन-सागर
सुख-दुःख से ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलम्बन।"

—**'गुंजन'**

"मानव ! कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा, सत्य केवल उसके दो कूल ?
आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
बहिरन्तर आत्मा-भूतों से है अतीत वह तत्त्व।
भौतिकता आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।"

—**'युगवाणी'**

पंत का यही निरपेक्ष दृष्टिकोण सापेक्षिक दृष्टिकोण को सन्तुलन देता है। सुख-दुःख तथा आत्मा और भूत को पंत का कवि निमित्त-मात्र मानता है, इसीलिए उनके प्रति अनावश्यक लोभ न रखकर उनका समुचित संकलन कर लेता है। यों

कहें कि उभय द्वन्द्वात्मक तत्वों के परे एक परम सत्य को पा लेने के लिए कवि अपने निरपेक्ष दृष्टिकोण में एक तटस्थ द्रष्टा है, हाँ, उसकी तटस्थता मनुष्य की आत्म-साधना की ओर अधिक ममतालु है, इसीलिए 'ग्राम्या' में 'आधुनिका' की अपेक्षा 'ग्रामनारी' को कवि ने अपनी ममता से सँवार दिया है।

[5]

अब हम फिर महादेवी की ओर मुड़ें।

आज विश्व के रंगमंच पर जो समस्याएँ चल रही हैं, उनसे महादेवी अनभिज्ञ नहीं हैं। कहती हैं: "इस भौतिकता के कठोर धरातल पर, तर्क से निष्करुण जीवन की हिंसा-जर्जरित समष्टि में आये हुए युग को देखकर स्वयं कभी-कभी मेरा व्यथित मन भी अपनी करुण-भावना से पूछना चाहता है, 'अश्रुमय कोमल कहाँ तू आ गई परदेशिनी रे!'"

वे आज की समस्याओं के बीच एक सूचना देती हैं—जीवन की वैयक्तिक साधना की। जीवन के नेपथ्य में उनकी कविता आकाशवाणी है। पंत ने 'पल्लव' में जिस नेपथ्य की ओर संकेत किया है:

"न जाने नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन!"

महादेवी ने उसी नेपथ्य के संकेतों (रहस्यों) को गा दिया है। निःसन्देह महादेवी की कविता न तो जीवन के प्रहर्ष में है, न जीवन के संघर्ष में। उसमें तो केवल उस चेतन की आराधना है जो जीवन के इतने हर्ष-विमर्षों का संचालक है।

महादेवी सांस्कृतिक कवि हैं। उनकी कविता शरदबाबू की सुरबाला और राज-लक्ष्मी जैसी वैष्णवी पात्रियों के अमृत कण्ठ की गीत-वाणी है। प्रसाद की राज्यश्री और देव सेना जैसी बुद्धकालीन आत्माएँ भी उस गीत-वाणी में मानो अपने को पा जाती हैं।

युग-युग से भारतीय नारी ने अपनी तपस्या से जिन अश्रुओं को जोतिर्मय कर दिया है उन्हीं अश्रुओं का आर्द्र गान ही तो महादेवी का गीति-काव्य है।

आज 'बाज़ार-दर' की तरह उठते-गिरते परिवर्तनशील जीवन के जिन हर्ष-विमर्षों को लेकर हम लोक यात्रा कर रहे हैं, और 'बाज़ार-दर' में सन्तुलत न होने के कारण असन्तुष्ट से हो उठे हैं, कभी-न-कभी वांच्छित सन्तुलन पाकर हम एक समान सुखी हो जाएँगे। किन्तु सम्पूर्ण सुख-सुविधाएँ पा जाने पर भी मनुष्य के हृदय में कहीं-न-कहीं कोई अतृप्ति या कसक बनी रहेगी, अन्यथा मनुष्य जी कैसे सकेगा? मनुष्य अपने जीवन में अभाव और अतृप्ति लेकर ही तो जीवित है, अन्यथा उसका स्पन्दन कभी ही रुक जाए। आज की जिन सामाजिक और राजनीतिक अव्यवस्थाओं के कारण जीवन में असन्तोष का स्वर भर उठा है, कभी-न-कभी उसका विलय हो जाएगा। तब हमारे सुख-दुःख ये नहीं रह जाएँगे जो हमारे काव्य में करुणा और मधुरता के रस बनकर बह रहे हैं। समाजवाद के संसार में भी कहीं न कहीं वैय-

वितक रूप से किसी नवीन अतृप्ति या अभाव का रह जाना सम्भव है, उसीके द्वारा हमारे काव्य में फिर एक नया रोमाण्टिसिज़्म आएगा। उसे न हो हम भविष्य का समाजवादी छायावाद कह लें। मनुष्य स्वर्ग ही क्यों न पा जाए, उसके एकान्त जगत् में कोई न कोई अतृप्ति या कसक बनी रहेगी। इसी अभावात्मक चित्तवृत्ति को भक्त कवियों ने परमात्म-बोध दे दिया था। महादेवी उसी शाखा की कवयित्री हैं।

युग की दिशा में प्रगतिशील होते हुए भी पंत संस्कृति की ओर से उदासीन नहीं हैं, बल्कि संस्कृति ही उनके युग का सम्पूर्ण निर्माण है। 'ज्योत्स्ना' और 'युगवाणी' इसका प्रमाण है।

दूसरी ओर महादेवी संस्कृति की ओर उन्मुख होते हुए भी युग की प्रगतिशीलता को स्वीकार करती हैं। किन्तु उनका कथन यह है: (अभी तो) "वास्तव में हमने जीवन को उसके सक्रिय संवेदन के साथ न स्वीकार करके एक विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण से छू भर दिया। इसीसे जैसे यथार्थ से साक्षात् करने में असमर्थ छायावाद का भावपक्ष में पलायन सम्भव है उसी प्रकार यथार्थ की सक्रियता स्वीकार करने में असमर्थ प्रगतिवाद का चिन्तन में पलायन सहज है। और यदि विचारकर देखा जाए तो जीवन में भावजगत् में पलायन उतना हानिकारक नहीं जितना जीवन से बुद्धिपक्ष में पलायन, क्योंकि एक हमारे कुछ क्षणों को गतिशील कर जाता है और दूसरा हमारा सम्पूर्ण सक्रिय जीवन माँग लेता है।

"यदि इन सब उलझनों को पारकर हम पिछले और आज के काव्य के एक विस्तृत धरातल पर उदार दृष्टिकोण से परीक्षा करें तो हमें दोनों में जीवन के निर्माण और प्रसाधन के सूक्ष्म तत्त्व मिल सकेंगे। जिस युग में कवि के एक ओर परिचित और उत्तेजक स्थूल था और दूसरी ओर आदर्श और उपदेशप्रवण इतिवृत्त, उसी युग में उसने भाव-जगत् और सूक्ष्म सौन्दर्यसत्ता की खोज की थी। आज वह भावजगत् के कोने-कोने और सौन्दर्यगत चेतना के अणु-अणु से परिचित हो चुका है, अतः स्थूल व्यवत उसकी दृष्टि को विराम देगा। यदि हम पहले मिली सौन्दर्य-दृष्टि से आज की यथार्थ-सृष्टि का संयोग कर सकें, पिछली सक्रिय भावना से बुद्धिवाद की शुष्कता को स्निग्ध बना सकें और पिछली सूक्ष्म चेतना की व्यापक मानवता में प्राणप्रतिष्ठा कर सकें तो जीवन का सामंजस्य-पूर्ण चित्र दे सकेंगे। परन्तु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के समान कविता का भविष्य भी अभी अनिश्चित ही है। पिछले युग की कविता अपनी ऐश्वर्य-राशि में निश्चल है और आज की प्रतिक्रियात्मक विरोध में गतिवती। समय का प्रवाह जब इस प्रतिक्रिया को स्निग्ध और विरोध को कोमल बना देगा तब हम इनका उचित समन्वय कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।"

पीछे हम देख चुके हैं कि पंत की प्रगति भी समन्वय की ओर है। किन्तु पंत और महादेवी के समन्वय के माध्यम में अन्तर है; पंत का माध्यम लौकिक सौन्दर्य (भूतवाद) है, महादेवी का माध्यम अलौकिक वेदना (अध्यात्मवाद)। यहाँ

महादेवी की काव्य-तरलता को वस्तुजगत् के स्पर्श से कुछ ठस हो जाने की आवश्यकता जान पड़ती है तो पंत की वाणी को। वेदना से कुछ तरल हो जाने की। इस प्रकार जीवन और कला को दोनों एक सम्यक्ता प्रदान कर सकेंगे। महादेवी के गीति-काव्य और पंत के वस्तु-काव्य के समन्वय से हिन्दी-कविता को एक नई आवश्यकता मिल सकती है।

जो करुणा महादेवी की कविता (भाव-पक्ष) का प्राण है, वही पंत की सृष्टि (लोक-पक्ष) में भी जीवन-मूरि है :

"चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में
अस्थिर है रूप-जगत का मद,
बस आत्मत्याग जीवन-विनिमय
इस सन्धि जगत में है सुखप्रद
करुणा है प्राण-वृन्त जग की,
अवलंवित जिस पर जग जीवन,
भर देती चिर स्वर्गिक करुणा
जीवन का खोया सूनापन।
करुणा रंजित जीवन का सुख,
जग की सुन्दरता अश्रुस्नात,
करुणा ही से होते सार्थक
ये जन्म-मरण सन्ध्या-प्रभात।"

—**'युगवाणी'**

किन्तु पंत ने आज मनुष्य की अस्तित्व-रक्षा के लिए तात्कालिक कर्त्तव्य को ही प्रमुखता से आगे उपस्थित किया है। अभी तो मनुष्य विषम विष से मूर्च्छित है, वह सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही की ओर से बेसुध है। उसमें स्थूल चेतना आ जाने पर वह सूक्ष्म चेतना को भी ग्रहण करने में समर्थ हो सकेगा। समाजवादी मनुष्य स्वस्थ मन से छायावाद को ग्रहण कर सकेगा।

जीवन का वर्तमान संघर्ष शाश्वत नहीं है, इसका कभी न कभी अन्त होगा, उस प्रकृतिस्थ भविष्य का स्वप्न भी पंत की पलकों में है :

"मौन रहेगा ज्ञान,
स्तब्ध निखिल विज्ञान !
क्रान्ति पालतू पशु-सी होगी शान्त
तर्क, बुद्धि के बाद लगेंगे भ्रांत।
राजनीति औ' अर्थशास्त्र
होंगे संघर्ष-परास्त।
धर्म, नीति, आचार—
रुँधेगी सबकी क्षीण पुकार !

जीवन के स्वर में हो प्रकट महान्—
फूटेगा जीवन रहस्य का गान।
क्षुधा, तृषा, औ' स्पृहा, काम से ऊपर,
जाति, वर्ग औ' देश, राष्ट्र से उठकर
जीवित स्वर में, व्यापक जीवन गान
सद्य करेगा मानव का कल्याण।''

—'युगवाणी'

पंत केवल क्रान्तमुख नहीं, शान्तमुख भी हैं। श्री शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में : ''क्रान्ति की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करने वाली काव्यधारा में भी दो प्रवाह हैं; एक है जिसका नेतृत्व भगवतीचरण वर्मा और 'दिनकर' कर रहे हैं, दूसरा है जिसके अभी एकमात्र प्रवर्त्तक-समर्थक पंत हैं।''

पंत क्रांति और शांति दोनों चाहते हैं, संहार और सृजन दोनों को युगवाणी दे रहे हैं। दिनकर और भगवतीचरण जीवन की कोई मूर्तिमत्ता नहीं दे रहे हैं, वे प्रायः आवेशपूर्ण हैं। पंत उन्मेषपूर्ण है और जीवन की मूर्तिमत्ता दे रहे हैं, उनमें कलाकारिता है।

पंत काव्य से गीत-गद्य की ओर आए, महादेवी गीत से गद्य की ओर आ गई हैं। अपने संस्मरणों में उन्होंने वस्तुजगत् को करुणा की वाणी दे दी है। गीति-काव्य में उन्हें जिस सुदृढ़ आधार की आवश्यकता थी, उसे उन्होंने अपने इन लोकचित्र में पा लिया है। हाँ, समाज के आँसुओं को उन्होंने अपनी वेदना से अपना लिया है, किन्तु राजनीतिक असंतोषों को काव्य बनाकर देने का प्रयत्न उन्हें अभीष्ट नहीं जान पड़ता। उनका कहना है : ''विचारों के प्रसार और प्रचार के अनेक वैज्ञानिक साधनों से युक्त युग में, गद्य का उत्तरोत्तर परिष्कृत होता चलने वाला रूप रहते हुए, हमें अपने केवल बौद्धिक निरूपणों और वादविशेष सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रतिपादन की आवश्यकता नहीं रही। चाणक्य की नीति वीणा पर गाई जा सकती है, परन्तु इस प्रकार वह न नीति की कोटि में आ सकती है और न गीति की सीमा में, इसे जानकर ही इस बुद्धिवादी युग को हम कुछ दे सकेंगे।'' यहाँ यह निवेदन करना है कि चाणक्य की नीति भी अंतर्द्रवित होकर काव्य का रस बन सकती है। राष्ट्रीय कविताएँ राजनीतिक भावप्रवणता ही तो हैं।

किन्तु पंत के शब्दों में स्थिति आज यह है कि मनुष्य भावप्रवण नहीं रह सकता :

''अपने मधु में लिपटा पर
कर सकता मधुप न गुंजन,
करुणा से भारी अन्तर
खो देता जीवन-कम्पन।''

—'गुंजन'

हम देखते हैं कि आज जीवन गद्यमय ही हो गया है। क्या वह फिर काव्य की ललित संज्ञा नहीं ग्रहण करेगा ?

कालाकाँकर में एक दिन मैंने पंतजी सेपूछा था—"तो क्या आपका अभिप्राय यह है कि आज की अशान्तियों का समाधान करके भविष्य में मनुष्य अधिक तृप्ति से गा सकेगा?" पंतजी ने कहा—"तब मनुष्य बोलना छोड़ देगा, वह गाना ही गाता रहेगा। अर्थात् मनुष्य का गद्य-कठोर जीवन भविष्य में संगीतमय हो जाएगा।"

निःसन्देह उसी दिन पंत का कलाकार अपने कवि को जगाकर एक बार फिर कहेगा :

"स्वस्ति, जीवन के छाया काल !
सुप्त स्वप्नों के सजग-सकाल !
मूक मानस के मुखर-मराल !
स्वस्ति, मेरे कवि बाल !"

25

महादेवी वर्मा और क्रिस्टिना रोज़ेटी

शचीरानी गुर्टू

['क्रिस्टिना की कृतियों में कुमारीत्व की अमल-धवल पावनता, भोली सरलता और यत्किंचित् अल्हड़पन भी है, जिसमें विराग की धूमिल अरुणिमा यत्र-तत्र बिखरी हुई है। महादेवी के काव्य में नारीत्व का क्रंदन, असफल पत्नीत्व की खीझ और द्विविधाग्रस्त अभावजन्य उपराम है, जिसमें नारी-सुलभ समर्पण-भावना और जीवन की गुत्थी न सुलझने के कारण दुर्भेद्य सघनता व्याप्त हो गई है। क्रिस्टिना नियति के क्रूर थपेड़ों से मर्माहत हो वेदना, अविश्वास और अदृष्ट की आशंका में डूबी हुई विरह के दर्दीले गीत गाती है, जिनमें हृदय की तड़पन, भावों की लड़खड़ाहट, आकुल प्राणों की कसक और आंतरिक आवेगों का संघात् है—महादेवी के भावोद्वेगों में मीठी कचोट होते हुए भी वचन-विदग्धता, अमूर्त व्यंजना और बिखरती, मचलती भावप्रवणता है, जो हृदय की गहराई में उतरती चलती है और जिसमें उठती-गिरती विपुल तरंगावलियों की सी अविराम धड़कन सुन पड़ती है।"]

"ओरे दुयार खुले देरे—
बाजा शंख बाजा।
गंभीर राते एसेछ आज
आँधार घरेर राजा।
वज्र डाके शून्य तले
विद्युतेरि झिलिक झले
छिन्न शयन टेने एने
आङिना तोर साजा।
झड़ेर साथे हठात् ऐलो
दुःख रातेर राजा।"

—टैगोर

"ओ रे द्वार खोल दे। शंख नाद कर। गम्भीर रात्रि में आज अँधेरे घर का राजा आया है। शून्य तल में मेघ भीषण गर्जना कर रहे हैं। विद्युत् कौंध रही है।

बिछा दे अपनी टूटी खाट। आज अकस्मात् दुख की रात का राजा आँधी-पानी के साथ आ पहुँचा है।"

जिस अज्ञात प्रियतम की अहर्निश बाट जोहती हुई ये कवयित्रियाँ पलक पाँवड़ें बिछाए—उन्मन और उदास—उसकी निदारुण विरह-व्यथा में तिल-तिल कर जल रही थीं—उससे दुर्दिन में हठात् भेंट हो गई, किंतु न जाने किस अपरिचित गंतव्य को उद्देश्य बना वह निर्मोही प्रणय-बंधन विच्छिन्न करके अपनी धुँधली-सी झलक दिखा चला गया और मिलन के प्रथम प्रहर में ही उससे सदैव के लिए विछोह हो गया। वे प्रिय को आँख भर देख भी तो न पाईं :

"इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।"

महादेवी और क्रिस्टिना रोज्ज़ेटी की काव्य-साधना बाह्य एवं अंतश्चेतना का एकीकरण है, जिसमें उनकी वैयक्तिक आत्मानुभूति की छाप, कल्पना की कमनीयता और ऐकांतिक आत्म-समर्पण की भावना है। उनकी काव्यगत आत्मा रहस्यमय अन्धकार की निविड़ता से ओत-प्रोत, किन्तु अरूप सौन्दर्य की प्रकाश-रेखाओं को यत्र-तत्र छिटकाती हुई—उनकी मूक अन्तर्ध्वनि एवं विराट् भावनाओं की स्वर-लिपि से अंकित-सी जान पड़ती है, जहाँ प्रणय के मधुर भार से आक्रांत विवश आकुलता और हृदय की छटपटाहट आँसुओं की राह बाहर छहर-छहर पड़ती है। जीवन की समस्त सुषुप्त स्मृतियाँ जागृत होकर मानो पार्थिव अवगुंठन से झाँक उस अपार्थिव सत्य को पा लेने को आकुल हैं, जो बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे सौन्दर्य-श्री से जगमगा रहा है, किन्तु जिसमें आत्म-साधना और स्वानुभूत-सत्य की सात्विक दीप्ति न होकर आंतरिक वेदना का समावेश होने से हृदय-पक्ष से भी अधिक मानसिक-पक्ष की प्रधानता है। महादेवी और क्रिस्टिना के काव्य में जो भावों की उत्कट तीव्रता, मर्मांतक वेदना और अन्तर का हाहाकार व्यक्त हुआ है—वह अलौकिक अथवा आध्यात्मिक विरह-गर्भित न होकर लौकिक प्रणय की सहजानुभूति से उद्भूत हुआ है और काल्पनिक आवरण में लिपटकर उत्तरोत्तर रहस्यपूर्ण और अविज्ञेय होता गया है। इन दोनों कवयित्रियों के हृदय निरंतर किसी अभाव का अनुभव करते हैं और उस खोई हुई वस्तु की खोज में भटक रहे हैं, जिसके सामीप्य से उनके निस्तब्ध भाव संगीत के स्वर में मुखरित होकर आनन्द की सरस सृष्टि कर सकते हैं :

"जो, तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग;
गाता प्राणों का तार-तार

अनुराग-भरा उन्माद-राग;
आँसू लेते वे पद पखार।
हँस उठते पल में आर्द्र नयन,
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसन्त—
लुट जाता चिर-संचित विराग;
आँखें देतीं सर्वस्व वार।"

जीवन-झाँकी

महादेवी और क्रिस्टिना के जीवन पर दृष्टिपात करने से एक बात सहज ही द्रष्टव्य है कि उनका काव्य वास्तव में उनके व्यक्तिगत जीवन में घटित घटनाओं का प्रतिविम्ब है। माता-पिता की स्नेहच्छाया में अबोध शैशव बिताकर जीवन की कठोर वास्तविकता जब उनकी बुद्धि के सयानेपन से आ टकराई तो अनमिल भावनाओं के कारण दो भिन्न हृदय प्रेम-सूत्र में न बँध सके और तभी से उनके मानस में नीरवता, बेचैनी और धुँधलेपन की छाया परिव्याप्त हो गई। यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट पर स्नेह-ज्योत्स्ना छिटकी पड़ रही थी तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलिका में अस्पष्ट रेखाएँ-सी अंकित कर गई। आत्म-संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक-प्रेम को ठुकराकर पीड़ा को गले लगाया—वह कालांतर में आंतरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ निखर तो गई, किन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरंतर कलेजे से चिपटाए रखने की मानो हठ पकड़ बैठीं :

"पर शेष नहीं होगी यह,
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा,
तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।"

जिस प्रकार महादेवी की आत्म-साधना और गम्भीर-चिंतन की एकरसता विवाह से भंग न हुई, उसी प्रकार क्रिस्टिना की जीवन-धारा भी प्रतिकूल परिस्थितियों की चट्टानों से टकराकर कभी निश्चित मर्यादा का उल्लंघन न करने पाई और उनकी अंतर्मुखी प्रवृत्तियाँ अधिकाधिक व्यापक होकर अग्रसर होती रहीं। एकांत चिंतनरत घर के किसी शून्य-कक्ष में बैठकर जब वह अपनी सुन्दर, कोमल अंगुलियों से कुछ बुनती होती और उसकी भोली, निरीह दृष्टि दूर कुछ खोजती हुई-सी क्षितिज के अंतर्पट पर जा अटकती तो उसका रूप अत्यन्त आकर्षक हो जाता। इसी स्थिति में कौलिंसन ने सर्वप्रथम उसे बैठे देखा था और वह तत्क्षण ही उसकी आकर्षक भावभंगिमा पर मुग्ध हो उठा था। क्रिस्टिना उस समय

अठारह वर्ष की थी और यद्यपि वह भी अपने बड़े भाई डी० जी० रोज़्ज़ेटी के मित्र जेम्स कौलिसन से प्रभावित हुए बिना न रही थी, तथापि धार्मिक विचारों और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की होने के कारण उसने इस स्वतन्त्र विचारों के नवयुवक से विवाह-सम्बन्ध अस्वीकार कर दिया था। इससे खिन्न होकर कौलिसन ने अपना अधिकांश समय भगवद्-आराधना में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया और फलस्वरूप क्रिस्टिना को बाध्य होकर विवाह के लिए उसे अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

उस समय क्रिस्टिना की लिखी हुई स्फुट कविताओं में जो भाव व्यक्त हुए हैं, उनमें लौकिक प्रेम से परे किसी दूरस्थ वस्तु को पाने की अतृप्त वासना है, जो वह स्वयं बताने और समझने में असमर्थ है। कौलिसन के मिलने से पूर्व एक और प्रणय-घटना क्रिस्टिना के जीवन में घट चुकी थी, जिसकी याद वह जीवन-पर्यन्त न भुला सकी और जो रह-रहकर उसके हृदय में एक मधुर टीस-सी जगा जाती थी। अपने अध्ययन-काल में जब कि वह अत्यन्त छोटी थी और अपने भाई के साथ बूढ़े पिता के तत्वावधान में पढ़ती थी तो चार्ल्स केले नाम का एक शर्मीला, प्रतिभा-सम्पन्न युवक भी वहाँ पढ़ने के लिए प्रतिदिन आया करता था, जो अत्यन्त विनम्र और चिन्तनशील प्रवृत्ति का होने के कारण क्रिस्टिना का उपयुक्त जीवन-सहचर हो सकता था। क्रिस्टिना से उसकी मित्रता बढ़ती गई और वृद्ध पिता की मृत्यु के पश्चात् तो वह मित्रता प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो गई, किन्तु धार्मिक विचारों में समानता न होने के कारण वह उसे पतिरूप में वरण न कर सकी।

कदाचित् अपने व्यथित मन को शान्त करने और हृदय के घाव को भरने के लिए ही क्रिस्टिना ने कौलिसन से विवाह-सम्बन्ध स्वीकार किया था, किन्तु जो प्राथमिक प्रेम की असफलता का करुण क्रंदन उसके अन्तर में समा गया था, वह कभी मिटने न पाया और निराशा की सघनता में ज्वलित व्यथा की शमा उसे प्रेम की शीतलता प्रदान न कर सकी। मृत्यु की-सी छाया उनके समस्त जीवन को आच्छन्न किए रही और कौलिसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बावजूद जो उसने कविताएँ लिखीं—वे उसके लिए न होकर प्रथम प्रणयी को लक्ष्य में रखकर ही लिखी गईं।

"मेरी आकांक्षा है कि मैं उस प्रथम दिन,
प्रथम घड़ी और प्रथमक्षण को याद रख सकती जब कि तुम मुझे मिले थे।
क्या ही अच्छा होता यदि मैं बता सकती कि उस समय मौसम कैसा था—
सुहावना या उदास और शीत पड़ रहा था अथवा गर्मी,
किन्तु वह तो अनबूझे ही विस्मृति के गर्त में समा गया,
मैं तब वर्तमान भविष्य की ओर देखने में कैसी अंधी थी
और अपने भाग्य-वृक्ष के प्रस्फुटन को लक्ष्य रखने में कैसी मंदबुद्धि,
जो न जाने कितने ही मई-मासों में भी पल्लवित न हो सकता था।"

("I wish I could remember that first day,
First hour, first moment, of your meeting me,

If bright or dim the season, it might-be
Summer or Winter for aught that I can say;
So unrecorded did it slip away,
So blind was I to see and to foresee,
So dull to mark the budding of my tree,
That would not blossom yet for many a May.")

कौलिसन से सम्बन्ध स्थापित होने के बाद दो-तीन महीने तक क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार उससे होता रहा और वह अपने मन को किसी प्रकार बहलाती रही। अगस्त मास में वह कौलिसन की माता और बहिन से मिलने के लिए प्लीज़ले-हिल गई, किन्तु वहाँ के उच्छृंखल वातावरण, आमोद-प्रमोद और छिछले हँसी-मज़ाक में उसका चित्त न रमा। प्लीज़ले से अपने चचेरे भाई विलियम माइकेल को एक पत्र में उसने लिखा : "यहाँ का प्रवास बहुत बुरा नहीं है, तो भी पोस्टमैन का आना यहाँ के जीवन में एक घटना है। कभी-कभी शोर-गुल से ऊब-कर मैं एकान्त में कुर्सी बिछाकर बैठ जाती हूँ और उन दिवा-स्वप्नों में विभोर हो जाती हूँ, जो नीरव भाषा में चुपचाप मेरे कानों में कुछ कह जाते हैं।" इंग्लैण्ड लौट आने पर कौलिसन से क्रिस्टिना का पत्र-व्यवहार बिलकुल बन्द हो गया और विलियम माइकेल को एक दिन बातों के सिलसिले में उसने बताया कि धार्मिक मामले में कौलिसन अपने विचारों को कभी नहीं बदल सकता, अतः उससे विवाह न करने का उसने निश्चय किया है।

बहुत सम्भव है ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से कौलिसन ने क्रिस्टिना के मन को आकृष्ट किया हो और उससे विवाह करने की इच्छा के मूल में मन के टूटे सपनों को पुनः साकार देखने की भावना उसके हृदय के किसी अज्ञात कोने में अंतर्निहित हो, किन्तु इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं कि जो सांघातिक चोट उसे अपने प्रथम प्रणय के अवसर पर लग चुकी थी, उसकी पीड़ा कभी कम न हुई और जीवन के स्वर्णिम स्वप्न, जो असमय में ही दुर्भाग्य के बवण्डर से मिट्टी के घरौंदों के समान धराशायी हो चुके थे, वे उसे इतना वीराने और सूना बना गए कि वह उनकी मिथ्या कल्पना में भी विभोर न हो सकी।

11 सितम्बर, 1866 को क्रिस्टिना ने चार्ल्स केले को लिखा था : "निःसन्देह, जो कुछ हुआ है—उसके लिए मैं स्वयं पश्चात्ताप कर रही हूँ, कन्तु मुझे यह जानकर सन्तोष है कि जिस स्नेह के मैं सर्वथा अयोग्य हूँ—उसका प्रतिदान मुझे अनायास ही मिल रहा है।"

क्रिस्टिना के निवास-स्थान अथवा विलियम माइकेल के यहाँ केले उससे मिलने के लिए प्रायः आया करता था और कभी-कभी अत्यन्त सभीत एवं सहमा हुआ-सा कोई प्रणय-उपहार अथवा उस पर लिखी हुई अपनी कोई कविता दे जाता था। क्रिस्टिना ने भी केले को सम्बोधित करके अनेक कविताएँ लिखी हैं, जिनमें उसका

प्रणयोन्माद उभर-उभरकर व्यक्त हुआ है।

"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और इस अपनी समस्त वेदना के बावजूद मुझे यह
जानकर प्रसन्नता है कि तुम इस बात से कम-से-कम अवगत तो हो।
तुम इस बात को भली-भाँति जानते हो और इस पर कभी सन्देह नहीं कर सकते।
प्रेम अपने-आपका चिर-भक्ष्य है।
मेरी खाई हुई शपथ अथवा धर्म-पिता का अभिनन्दन
मेरे प्रेम को अधिक सुस्पष्ट या अविचल घोषित नहीं कर सकता।
ओ म्लान चन्द्र ! जो क्रमशः घटता और बढ़ता है,
जीवन के क्षय का क्रम भी तो यही है
और जब परिश्रांत आह्लाद की अवज्ञा कर प्रेम अपने पंख फड़ फड़ाकर ऊपर
उड़ जाता है तो हम उसकी ज्ञात धड़कन भी बहुत कम महसूस कर पाते हैं।
प्रिय मित्र ! हमें चिर शांति में सो जाना चाहिए,
कुछ क्षण में ही आयु और क्लेश मिट जाएँगे।
और थोड़ी देर बाद ही प्रेम पुनः जीवित होकर नष्ट हो जाएगा।
जीवन, क्षय और मृत्यु, पुनः सब कुछ प्रेम ही प्रेम तो है।"

("I love you, and you know it—at least,
This comfort is mine own in all my pain ;
You know it and can never doubt again.
And love's mere self is a continual feast,
No oath of mine or blessing word of priest.
Could make my love more certain or more plain,
O weary moon, still rounding, still decreased !
Life wanes ; and when love folds his wings above
Tired joy and less we feel his conscious pulse,
Let us go fall asleep, dear friend, in peace ;
A little while, and age and sorrow cease,
A little while, and love reborn annuls
Life and decay and death, and all is love.")

सन् 1883 में 5 दिसम्बर की रात्रि को, जिस दिन क्रिस्टिना का जन्मोत्सव था, दुर्भाग्य से अचानक केले की मृत्यु हो गई। क्रिस्टिना ने जब यह दुःखद समाचार सुना तो वह तत्काल विलियम माइकेल को सूचित करने के लिए सोमरसेट होउस गई। विलियम माइकेल ने लिखा है: "उसकी कातर दृष्टि और अंतर के नीरव क्रन्दन से क्लांत मुख का पीलापन कभी भुलाया नहीं जा सकता। उसके प्राण भीतर-ही-भीतर खिंचे जा रहे थे, किन्तु बाहर आह तक न निकलती थी और यह वस्तुतः उसके गम्भीर स्वभाव के अनुरूप ही था।" इसके

बाद वह केले के घर गई। अंतिम बार उसने उसकी निश्चेष्ट मुखमुद्रा को सजल नेत्रों से देखा जिसके ओठों की मुस्कराहट क्रूर मृत्यु द्वारा अपहृत की गई थी और उसने अपने प्रणयी के उन निर्जीव हाथों पर श्वेत पुष्प रख दिए, जो उसके हाथों को पकड़कर अब जीवन में कभी अपना न बना सकते थे।

केले ने अपनी वसीयत में, जो सात महीने पूर्व तैयार की गई थी, अपनी वृहद् लाइब्रेरी, लिखने का डेस्क और होमर, पेट्रार्क आदि के अनुवाद क्रिस्टिना को भेंट किए थे और उन सजीव विस्मृति-चिह्नों को पाकर वह आनन्द-विह्वल हो उठी थी। केले की मृत्यु के पश्चात् वह ग्यारह वर्ष तक जीवित रही और इसमें सन्देह नहीं कि वह उसकी याद को कभी भुला न सकी। मरते हुए विलियम माइकेल से वह उसके सम्बन्ध में बहुत देर तक बातें करती रही और मृत्यु के शिथिल, उदास क्षणों में अतीत-स्मृतियों के उभरने के साथ-साथ अनुतापभरी आत्म-प्रतारणा की भावना भी उसमें जगी कि क्यों पहले तो केले को उसने प्रोत्साहित किया और फिर विवाह की स्वीकृति न देकर क्यों उसके जीवन को नष्ट कर दिया। केले की मृत्यु के पश्चात् क्रिस्टिना की लिखी हुई निम्न पंक्तियाँ उसके अन्तर्दाह को व्यक्त करती हैं।

"पुष्पों और काँटों की बिना परवाह किए।
एक क्लान्त-मन कृषक अपने संचित अनाज के मध्य विश्राम कर रहा है।
कदाचित् प्रातःकाल तक मेरी भी यही स्थिति हो।

* * * *

दिसम्बर के ठिठुरते शीत की भाँति शिथिल,
गए और बीते दिनों की भाँति विस्मृत,
जब कि वह केवल एक की स्मृति में बसा है।
और बाकी सब भूल गए हैं।
केवल एक ही उसे अभी तक याद रखता है।"

("Unmindfnl of the roses,
Unmindful of the thron,
A reaper tired reposes
Among his gathered corn;
So might I, till the morn!

* * * *

Cold as the cold Decembers,
Past as the days that set,
While only one remembers,
And all the rest forget—
But one remembers yet."

आसक्ति और विरक्ति

कहने की आवश्यकता नहीं कि महादेवी और क्रिस्टिना के दिल के अरमान जो परिस्थितियों के मरुस्थल में झुलसकर क्षारवत् हो गए थे—उनके हृदय में, यंत्रणा की ज्वाला धधका गए और जीवन की सुख, शांति एवं सहज चापल्य को अभावों की झोली में भर न जाने कहाँ छिप गए। निराश आशा की अंतिम दवा, वैराग्यपूर्ण निर्वेद, की घूंट पीकर उनकी प्यार की मधुरिमा साधना की कठोरता में परिणत हो गई। एक ओर उनमें विरक्ति की अचिंत्य भावना जगी और दूसरी ओर जीवन के बिखरे हुए मधुकणों को बटोर लेने की अतृप्त लालसा। उनके अंतस्तल की अस्पष्ट स्वर-लहरी में अन्यमनस्कता व्याप्त हो गई और प्रिय-वियोग की दुस्सह व्यथा भीतर-ही-भीतर न समाकर बाहर भी श्वासों की राह सिहर-सिहर पड़ी।

"कसक-कसक उठती सुधि किसकी
रुकती सी गति क्यों जीवन की
क्यों अभाव छाए लेता विस्मृति सरिता के कूल ?"

महादेवी की उपर्युक्त पंक्तियों में अन्तर की पीड़ा मेघाच्छन्न सघनता-सी अपने में पुँजीभूत जान पड़ती है। जब भावों के आवेग हृदय के तारों को हिला जाते हैं तो भूले हुए स्नेह की स्मृतियाँ अस्पष्ट स्वरों में झंकृत होकर असह्य वेदना और व्याकुलता की निश्छल कहानी-सी कह जाती हैं और जब हृदय का अभाव भाव से भरकर पूर्ण होना चाहता है तो आकांक्षा, विह्वलता और अपने-आपको न्योछावर कर देने की उन्मत्त भावना उनके मन में जग जाती है।

"मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का।
जाने क्यों कहता है कोई,
मैं तम की उलझन में खोई
धूममयी वीथी वीथी में
लुक-छिपकर विद्युत्-सी रोई
मैं कण-कण में ढाल रही अलि आँसू के मिस प्यार किसी का।
पुतली ने आकाश चुराया,
उर ने विद्युत-लोक छिपाया,
अंगराग सी है अंगों में
सीमाहीन उसी की छाया
अपने तन पर भाता है अलि जाने क्यों शृंगार किसी का !
मैं कैसे उलझूँ इति अथ में,
गति मेरी संसृति है पथ में,
बनता है इतिहास मिलन का,
प्यार भरे अभिसार अथक में,

मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का !"

मन में चिर-अशान्ति और जीवन की अपूर्णता का कटु-अनुभव लेकर महादेवी और क्रिस्टिना जीवन की व्यापक चेतनाओं के प्रति सजग हैं और उनकी बुद्धि अपनी भीतरी अभिव्यक्ति को सँवारने में सदैव सचेष्ट रहती है। क्रिस्टिना जिस प्रणयी के लिए इतनी पीड़ा सह रही है—वह स्वयं भी उसके प्रेम में छटपटा रहा है और ऐसे हठीले साधक का पीड़ा से सहज ही छुटकारा पाना सम्भव नहीं है। एक ओर प्रेम की साधना स्वीकार करने पर भी वह प्रेमी के हठ की अवहेलना करती है और अपने जी की जलन को नारी की निर्मम ममता में लपेट उसकी दयनीय स्थिति पर संवेदना प्रकट करती है।

"तब मैं उस पर जोर से चिल्लाई—
ठहरो, मुझे शान्ति से रहने दो,
इस बात से न डरो कि मैं तुमसे कुछ कहूँगी,
मुझे शान्ति से रहने दो और अधिक तंग न करो—
ऐसा न हो कि मैं भागकर तुम्हारा पीछा करूँ और तुम्हें दरवाजे से बाहर कर दूँ।
क्या तुम कभी मेरी जान न छोड़ोगे, जो अभी तक मुझे परेशान करते हो ?

* * * *

किन्तु सारी रात वह स्वर गिड़गिड़ाता रहा 'किवाड़ खोल दे।'
बार-बार उसका स्वर मेरे कानों से आ टकराता था, 'उठ, मुझे अन्दर आने दे।'
अश्रुसिक्त वाणी में वह मेरी अभ्यर्थना कर रहा था—
'मेरे लिए द्वार खोल दे, जिससे मैं तेरे पास आ जाऊँ।'
जबकि ओसकण बिखर गए थे और मध्य-रात्रि की सघनता शीत का जामा पहने थी तब सुन पड़ा—
'मेरे पैरों से रक्त बह रहा है, मेरा मुँह देख।
देख, मेरे हाथ, जो तुझे सुख पहुँचाना चाहते हैं, खून से लथपथ हैं।
मेरा हृदय तेरे लिए खून के आँसू बहा रहा है, द्वार खोल।'

* * * *

इसी प्रकार पौ फटने तक सुनाई पड़ता रहा;
फिर निस्तब्धता छा गई।
वह स्वर दुःखावेग से द्रवित हो मानों चुप हो गया,
तब उसके पदचाप की प्रतिध्वनि भी करुण उच्छ्वास-सी
मेरे पास से गुज़री,
वे पदचाप ठहर-ठहर कर पड़ते थे, जो उसकी मन्द-गति के द्योतक थे।
प्रातःकाल होने पर

मैंने घास पर देखा
प्रत्येक पैर का निशान खून से अंकित है
और मेरे द्वार पर रक्त के चिह्न अमिट रूप से चिह्नित हो गए हैं।"

("Then I cried upon him; Cease,
Leave me in peace;
Fear not that I should crave
Aught thou mayst have.
Leave me in pease, yea trouble me no more
Lest I arise and chace thee from my door.
What, shall I not be let
Alone, that thou dost vex me yet ?

*　　*　　*　　*

But all night long that voice spoke urgently :
'open to me.'
Still harping in mine ear :
'Rise, let me in ?'
Pleading With tears :
'Open to me, that I may come to thee.'
While the dew dropped, while the dark hours were could.
'My feet bleed, see My Face,
See my hands bleed that bring thee grace,
My heart doth bleed for thee,
Open to me.'

*　　*　　*　　*

So till the break :
Then died away
That voice in silence as of sorrow;
Then footsteps echoing like a sigh
Passed me by.
Lingering footsteps slow to Pass.
On the morrow
I saw upon the grass
Each footprint marked in blood, and on my door
The mark of blood for evermore.")

अविराम साधना में लीन जीवन के दीर्घ-पथ को अपने आँसुओं से अहर्निश

धोती हुई वह आसक्त होकर भी अनासक्त है और अपने 'स्व' को मिटाकर भी अपने कर्त्तव्य को भूली नहीं है।

''विगत रात्रि को मैंने एक स्पप्न देखा,
तब न अँधेरा था और न प्रकाश
शीतल ओसकणों ने मेरे सघन बालों को भिगोकर धूल-धूसरित कर दिया था।
तुम मुझे वहाँ ढूँढ़ने आए और तुमने कहा 'क्या तुम मेरा स्वप्न देख रहीं हो ?'
मेरा हृदय, जो तुम्हें देखकर उछल पड़ता था, अब मिट्टी हो चुका था।
मैंने उनींदे स्वर में उत्तर दिया,
मेरा तकिया गीला है, मेरी चादर बदरंग है और मेरा बिस्तर पत्थर-सा सख्त है।
तुम किसी और कृपालु साथी की खोज करो, जो तुम्हारे सिर के लिए कोमल तकिया दे सके और मेरे से अधिक सम्वेदना-मिश्रित प्रेम प्रदान कर सके।'
तुम हाथ मलते रहे, जब कि मैं कठोर धातु-सी दलदल ज़मीन में धँसती रही।
तुमने हाथों को बजाया, किन्तु खुशी में नहीं
तुम घिरनी की तरह घूमे, किन्तु तुम शराब के नशे में न थे।
मैं सारी रात तुम्हारा स्वप्न देखती रही;
मेरी आँखें खुल गई और मैंने अनिच्छापूर्वक प्रार्थना की,
जब पुनः नींद आई तो तुम्हें फिर स्वप्न में देखा।
अन्ततः मैं उठ बैठी और मैंने घुटनों के बल बैठकर भगवान से प्रार्थना की।
जो शब्द मैंने उस समय कहे—वह मैं लिख नहीं सकती,
मेरे शब्द धीमे थे, मेरे अश्रु सूख गए थे,
किन्तु अन्धकार में मेरी नीरवता वज्र की तरह कड़क उठी।
जब प्रातःकाल हुआ तो मेरा मुँह लटक गया था,
मेरे बाल सफेद हो गए थे और द्वार के प्रस्तर-खंड पर खून जम गया था,
जिसमें सनी हुई मैं लथपथ पड़ी थी।'

("I dreamed last night.
It was not dark, it was not light,
Cold dews had drenched my plenteous hair
Through clay, you came to seek me there,
And 'Do you dream of me ?' you said.
My heart was dust that used to leap
To you, I answered half asleep;

'My pillow is damp, my sheets are red,
There's a leadan tester to my bed;
Find you a warmer playfellow,
A warmer pillow for your head,
A kinder love to love than mine.'
You wrung your hands : while I, like lead,
Crushed downwards through the sodden earth;
You smote your hands but not in mirth.
And reeled but were not drunk with wine.
For all night long I dreamed of you;
I woke and prayed against my will,
Then slept to dream of you again
At length I rose and knelt and prayed.
I cannot write the words I said,
My words were slow, my tears were few;
But through the dark my silence spoke.
Like thunder : When this morning broke,
My face was pinched, my hair was grey
And forzen blood was on the sill
Where stifing in my struggle I lay !")

महादेवी और क्रिस्टिना की एकान्त-साधना में आत्म-समर्पण और कर्त्तव्य का उच्च आदर्श होते हुए भी वैयक्तिक वासनाओं के दमन का दम्भ नहीं है, प्रत्युत पूर्वानुभूत सुखों की स्मृति और उद्दाम यौवन उनके धैर्य और संयम के बाँध को तोड़कर उन्हें भ्रान्त बना जाता है और प्रिय के सामीप्य के लिए उनका हृदय मचल-मचल पड़ता है।

"सजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा, छाया सा, आता ?
सूने से सस्मित चितवन से जीवन-दीप जला जाता !
छू स्मृतियों के बाल जगाता,
मूक वेदनाएँ दुलराता,
हृत्तंत्री में स्वर भर जाता,
बन्द दृगों में; चूम सजल सपनों के चित्र बना जाता !"

जीवन का उन्मुक्त रूप अपनाकर और प्रेमी के प्रति निर्मम बनकर भी क्रिस्टिना भावातिरेक में अत्यन्त दीन हो जाती है और अपनी सुध-बुध खोकर उसके दर्श के लिए बेचैन हो उठती है।

"मेरे पास वापस चले आओ, जो तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई

पथ में आँखें बिछाये है।
अथवा न आओगे ? क्योंकि सब कुछ समाप्त हो जाएगा,
तुम्हारे न आने की लम्बी अवधि में कुछ भी सुख न पा सकूँगी।
जब तक कि तुम नहीं आ रहे हो, जो करना है सो करूँगी
यह सोच कर कि 'वह कब आएगा ?' मेरे प्राण ! 'कब';
क्योंकि सब व्यक्तियों में केवल एक व्यक्ति ही मेरी दुनिया है—
इस विस्तृत भूखण्ड में ओ प्रिय ! केवल तुम्हीं से मेरा संसार बसा है।
जैसे-तैसे तुमसे मिलकर भी मेरे हृदय में हूक सी उठती है—
क्योंकि मिलते ही तुमसे शीघ्र बिछुड़ने की व्यथा मुझे सताने लगती है।
अपने परस्पर सम्मिलन के स्वर्गीय दिनों का स्मरण कर मेरी आशा
चन्द्रमा की भाँति घटती और बढ़ती हुई असमंजस में अटकी है।
ओ मेरे ! बताओ न ? वे गीत अब कहाँ हैं, जो कि मैं उन दिनों गाती थी
जबकि जीवन मधुर था, क्योंकि तुम स्वयं भी उन्हें मधुर कहते थे।"

("Come back to me, who wait and watch for you
Or come not yet, for it is over then,
And long it is before you come again,
So far between my pleasures are and few,
While, when you come not, what I do I do
Thinking 'Now when he comes,' my sweetest 'when':
For one man is my world of all the men
This wide world holds; O love, my world is you.
Howbeit, to meet you grows almost a pang
Because the pang of parting, comes so soon;
My hope hangs waning, waxing, like a moon
Between the heavenly days on which we meet:
Ah me, but where are now the songs I sang
When life was sweet because you called them sweet ?")

भाव-जगत्

महादेवी और क्रिस्टिना के अंतस्तल की गहराई से निस्सृत गीतों में जो निर्व्यक्त भाव व्यक्त हुए हैं—वे छाया के सदृश धुँधले और रहस्य के सदृश अदृष्ट जान पड़ते हैं। वस्तुतः उनका हृदय और जीवन स्वयं एक अबूझ पहेली है, जिससे वे अपने-आपको ठीक-ठीक नहीं समझ पातीं और न अपने भाव-संकेतों को दूसरों को सरलता से समझाने में समर्थ ही हो पाती हैं। बाह्य-जीवन के घात-प्रतिघात

से टकराकर उनकी भाव-मंदाकिनी शत-शत धाराओं में उच्छल होकर दूसरों की मृदु-मधुर भावनाओं को थपकी दे-देकर गुदगुदा तो देती है, किन्तु उनके अंतरतम प्रदेश में उतर नहीं पाती। कहना न होगा—दोनों कवयित्रियों का जीवन स्वनिर्मित विश्वासों और भावनाओं के व्यवधान में बहता है। एक ओर वैराग्य-मिश्रित हल्की प्रतिध्वनि उठती है, दूसरी ओर क्रूर-नियति के प्रति विवशता का क्रंदन। कहीं प्रेम-शृंखलाओं में जकड़े मनुष्य की-सी वाध्यता है, कहीं दारुण दुःख और क्लेशों से विरत होकर अंतश्चेतना की विश्वासमय निर्बंध गति। उनके हृदय में व्यथा की घटाटोप सघनता है, जिसे वे अपनी आंतरिक-स्फूर्ति और उद्दीप्त आत्मचेतना से विच्छिन्न करके अचिंत्य आलोक में भरना चाहती हैं। कभी दीन-हीन और खोई-सी वे वेदना में डूब जाती हैं—कभी गर्वीले स्वाभिमान से सजग होकर वे लौकिक प्रेम की अवज्ञा करती हुई अलौकिक भाव-जगत् में पैठने का प्रयास करती हैं।

महादेवी की आंतरिक अनुभूतियाँ सूक्ष्म और कोमल हैं। उनके अंतर में हूक नहीं, मूक अंतर्व्यथा है; तीव्रता और आवेश नहीं, मधुर व्यंजना है। प्रारम्भ से ही चिंतनशील प्रवृत्ति की होने के कारण उन्होंने हृदय की कोमल भावनाओं को हल्के हाथों से स्पर्श करके सहलाना सीखा है और उनकी कल्पना का वैभव, आत्म-विश्वास एवं निर्विकार दृष्टि-निक्षेप उर्मिल-वृत्तियों को जगाकर उनकी अपरिमेय सूक्ष्म-दर्शिता का परिचय दे जाता है।

"दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचंचल!
सिंधु का उच्छ्वास घन है,
तड़ित, तम का विकल मन है,
भीति क्या नभ है व्यथा का
आँसुओं से सिक्त अंचल?
स्वर अकम्पित कर दिशाएँ,
मीड़ सब भू की शिराएँ,
गा रहे आँधी-प्रलय
तेरे लिए ही आज मंगल!
मोह क्या निशि के वरों का,
शलभ के झुलसे परों का
साथ अक्षय ज्वाल का
तू ले चला अनमोल सम्बल!
पथ न भूले, एक पग भी,
घर न खोए लघु विहग भी,

स्निग्ध लौ की तूलिका से
आँक सबकी छाँह उज्ज्वल !"

महादेवी की संवेदना इतनी तीव्र है कि जहाँ कोई भावना उनके अन्तर में जगी कि उन्होंने अपने कलामय पाश में आबद्ध कर लिया। वातायन के से सौरभ-श्लथ उच्छ्वास उमड़-उमड़कर समस्त वातावरण में मधुर सिरहन-सी जगा जाते हैं। कहीं कसक अधिक गहरी है, कहीं प्रणय-प्रकम्पित हृदय की धड़कन, कहीं शिशु का-सा सारल्य है और कहीं हठीली प्रेमिका का गर्वीला दम्भ। उनकी अन्तर्दृष्टि सूक्ष्मतम रहस्यों के अन्तर में प्रवेश कर जाती है। इन्द्रधनुष के से विविध-रंग कुछ धूमिल से घूँघट-पट से झाँकते हुए तुहिन-कणों की सी आभा बिखेर जाते हैं। और गीतों की छाँह से करुणा-विगलित भाव जलते हुए दीपक की मंद लौ के सदृश मुस्कराते से प्रतीत होते हैं। किन्तु इसके विपरीत क्रिस्टिना के काव्य में जो अन्धड़ की सी दुर्दमनीय प्रचण्डता है—वह उसकी कोमल भावनाओं को दबाकर उसे भी अपने वेग में मानो साथ उड़ाए ले जा रही है।

"प्राण-शक्ति और प्रकाश लुप्त होने से मेरे जीवन का मध्याह्न
बीत गया।
आनन्द-बेला समाप्त हो गई, सदैव के लिए चली गई।
जब दिन अवशेष था तभी सूर्य छिप गया और मेरे लिए रात्रि
की चिर-सघनता छोड़ गया।
हे प्रभु ! कब तक, कितने दिनों तक इस निराश पीड़ा को
पालती रहूँ ?
क्या मैं रोती रहूँ और प्रतीक्षा करती रहूँ ?
क्या चिरकाल तक आँसू बहाती हुई इसी प्रकार मर मिटूँ ?
क्या तेरी कृपा नष्ट हो गई ? क्या तेरा प्रेम मेरे लिए विनष्ट
हो गया ?
कितने दिनों तक मैं व्यर्थ ही इच्छा करके मरूँ ?"

("My noon is ended, abolished from life and light,
My noon is ended, ended and done away,
My sun went done in the hours that still were
day,
And my lingering day is night.
How long, O Lord, how long in my desperate pain
Shall I weep and watch, shall I weep and long for
Thee ?
Is Thy grace ended Thy love cut from me ?
How long shall I long in vain ?")

महादेवी अपनी अभिव्यक्तियों में उस सतह पर पहुँच गई हैं, जहाँ मर्मघाती वेकल स्वर उन्हें प्रतिकम्पित नहीं कर पाते। उन्हें पीड़ा भी प्रिय है और विरहाग्नि भी जलाकर शीतलता प्रदान करती है। प्रिय की दी हुई पीड़ा होने के कारण वे अपने मर मिटने के अधिकार को खोना नहीं चाहतीं :

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !"

वे प्रणय के स्वप्निल संसार में विचरण करती हुई अतृप्ति को अधिक महत्त्व देती हैं :

"मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर,
रहने दो प्यासी आँखें
भरती आँसू के सागर।"

किन्तु क्रिस्टिना के हृदय के सन्नाटे में जो करुणा-स्रोत काँटों से बिंधकर फूटे हैं—उनसे एकात्म-भाव स्थापित करने के लिए उसकी अन्तरात्मा मानो संघर्ष-सा करती है, किन्तु उसकी छटपटाहट और परवशता का भाव उभर-उभरकर फफोलों-सा फूल जाता है, जिसमें ज़रा-सी ठेस लगते ही रक्त-स्राव होने लगता है।

"मैंने एक एकाकिनी चिड़िया देखी,
जो अपने घोंसले में सूनी बैठी थी।
क्योंकि उसका साथी मर गया था या उड़ गया था।
यद्यपि अभी वसंत का आरम्भ ही था।
और समीप ही पुष्प-कलिकाएँ प्रस्फुटित हो रही थीं।
अनाज का खेत भी अभी बोया ही गया था,
किंतु वह जो कभी खुशी के गीत गाती थी अब बैठकर रोने के अतिरिक्त क्या करती ?
दुःख में मूर्छित सी अकेली बैठे रहना,
कितना कष्टदायक है, कितना भयावह !"

("I saw a bird alone,
In its nest it sat alone,
For its mate was dead or flown
Though it was early spring.
Hard by were buds half-blown,
With cornfields freshly sown;
It could only perch and moan

That used to sing;
Droop in sorrow left alone;
A sad sad thing.")

महादेवीजी के काव्य में कल्पना की रंगीन बारीकियाँ मन को बरबस मुग्ध कर लेती हैं। उनकी रंगीन-कल्पना भावुकता के साथ ऐसी घुल-मिल गई है कि उनके स्वच्छ अन्तर्पट पर मनोज्ञ चित्र उतरते चलते हैं और वे अपनी सूक्ष्मग्राहिणी प्रतिभा द्वारा उनका ज्यों-का-त्यों चित्रण कर देती हैं। भाव के मूर्त होते ही मानो रंग छलक पड़ते हैं और शब्दों में न समाकर सजल चित्रों की स्निग्धता में फैल जाते हैं। उनकी कविता में रहस्य-प्रवृत्ति का प्राधान्य है। अधिक चिंतनशील होने के कारण उनकी भावनाएँ उड़ते बादलों की-सी सघनता से ओत-प्रोत हृदय के करुण-तम उच्छ्वास और आँसुओं के तुहिन-कणों की धूमिलता में सहज अविज्ञेय बन गई हैं। अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी-भावना और रहस्य-चिंतन के आवरण उनके काव्य की आत्मा को इतना आच्छन्न कर लेते हैं कि उनके भावों में अस्पष्टता और क्लिष्ट कल्पना का अंश अधिक आ जाता है, जिससे अभीप्सित माधुर्य की व्यंजना नहीं हो पाती। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्य-गीत', 'यामा' और 'दीपशिखा' आदि पुस्तकों में सूक्ष्म-कल्पनाओं की सघनता और स्वनिर्मित अनेक-रूपता के साथ-साथ भावात्मक प्रवृत्तियों का संघर्ष है। कहीं कल्पना-बाहुल्य होने से उनके गीतों के पद भाराक्रांत होकर लिथड़ते-से हैं और कहीं शब्द उभर-उभर कर भावों की सहज गति में व्यवधान उत्पन्न करते हैं, किंतु इसके विपरीत क्रिस्टिना का अन्तर्दाह सच्चा है और उसकी लगन स्वाभाविक है। उसके हृदय में जो निर्झर की भाँति भाव उमड़ते हैं—वे अनुकूल स्थल पाकर प्रकट हो जाते हैं और कहीं भी कृत्रिमता का आभास नहीं हो पाता।

"अकेली और पगली सी रोती रह,
अपने हृदय को आँसुओं से भर ले।
क्योंकि तेरी व्यथा और आँसुओं का रहस्य कोई भी नहीं जान सकता।
जब तक प्रातःकाल न हो और सुखद ओसकण दिखाई न पड़ें, तब तक रोती रह।"

अथवा

"यह निरर्थक धारणा कि मैं क्या से क्या बन सकती थी जो मेरे मस्तिष्क पर रात-दिन छाई रहती है, वह ज़रा भी चैन नहीं लेने देती।
उत्तर की शीतल वायु ने मेरी सारी हरियाली उजाड़ दी,
मेरा सूर्य पश्चिम में छिप गया।"

("Weep, sick and loney,
Bow thy heart to tears.
For none shall guess the secret

Of thy griefs and tears,
Weep, till the day dawn.'
Refreshing dew."
Or
"The fruitless thought of what I might have been
Haunting me ever will not let me rest;
A cold north wind has withered all my green,
My sun is in the west.")

'रिमेम्बर मी' (Remember Me), 'स्वीट डेथ' (Sweet Death), 'माई ड्रीम, (My dream), 'साउण्ड स्लीप' (Sound Sleep) आदि कतिपय स्फुट गीतों में क्रिस्टिना के छटपटाते हृदय की निराशा और वेदना अंतर्निहित है। सन् 1862 में 'गोब्लिन मार्केट' और उसके तीन वर्ष पश्चात् 'दि प्रिंसेस् प्रोग्रेस' नाम की क्रिस्टिना की प्रमुख कृति सचित्र प्रकाशित हुई। 'गोब्लिन मार्केट', में दो ऐसी लड़कियों की कथा वर्णित है, जो एक सुनसान जंगल में घूमती हुई जलस्रोत के समीप पिशाचों के झुण्ड से मिलती हैं और अपने सुनहरे बालों की एक लट के वदले में कुछ जादू के फल खरीद लेती हैं। उनमें से एक लड़की तो इन फलों को चखने का साहस नहीं करती, किन्तु दूसरी उन्हें खा लेती है और तत्क्षण ही जर्जरित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। उसकी बहन अत्यन्त भयभीत होते हुए भी पुनः उन पिशाचों से मिलती है और कोई ऐसी विषनाशक जड़ी उनसे लेने में समर्थ होती है, जो मृत लड़की को पुनः जीवित कर देती है।

'दि प्रिंसेस़ प्रोग्रेस' में एक राजकुमार का आख्यान है, जो अकेला अपनी पत्नी से मिलने के लिए चल पड़ता है। उसकी पत्नी—राजकुमारी—बहुत दूर है और पति के विरह में पागल-सी क्षण-प्रतिक्षण पथ में आँखें बिछाए उसकी प्रतीक्षा करती रहती है। मार्ग में राजकुमार को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं—प्रथम तो वह एक जादूगरनी द्वारा बन्दी बना लिया जाता है, पुनः वहाँ से किसी प्रकार छूटने पर वह एक वृद्ध द्वारा, जो एक गुफा में आयुवर्द्धक रसायन पका रहा था, भट्टी में आग झपकने के लिए रोक लिया जाता है। वहाँ से विमुक्त होने के पश्चात् जब वह आगे बढ़ता है तो एक भयानक पर्वत निर्झर में डूबते-डूबते किसी प्रकार बच जाता है और अनेक विघ्नों को पार करके अत्यन्त कठिनाई से जब वह महल के समीप पहुँचता है तो उसे अपनी पत्नी का सामने से आता हुआ शव का जुलूस दीख पड़ता है, जो उसके वियोग में प्रतीक्षा करते-करते अन्त में प्राण छोड़ देती है।

कहते हैं—'दि प्रिंसेस् प्रोग्रेस' का कथानक क्रिस्टिना के अपने व्यक्तिगत जीवन पर घटित होता है, जिसमें प्रिय-वियोग का हाहाकार और प्यार की पीर के दंश की छटपटाहट है। राजकुमारी मरते हुए जो करुण-गीत गाती है—वह क्रिस्टिना के अन्तर में निगूढ़ प्रणय की व्यथित अभिव्यक्ति है।

"मेरे प्रिय ! जब मैं मर जाऊँ तो मेरे लिए व्यथा-भरे गीत न गाना
मेरे ऊपर गुलाब के पुष्प अथवा शोक-वेल न लगाना,
वरन् ओस-कण और वर्षा की फुहार से भीगी घास मेरे ऊपर
उगने देना ।
तुम चाहे तो मुझे याद रखना—चाहे भूल जाना ।
अब मैं छाया के दर्शन न कर सकूँगी,
अब मैं वर्षा की अनुभूति से वंचित रहूँगी,
अब मैं बुलबुल का करुण गीत, जो वेदना में डूबा हुआ होता
है, न सुन सकूँगी ।
सम-स्थिति वाली गोधूलि-वेला में स्वप्न-विभोर होने की बात
न जाने
मैं याद रख सकूँगी अथवा भूल जाऊँगी ।"

("When I am dead, my dearest,
Sing no sad songs for me;
Plant thou no roses at my head,
Nor shady cypress tree;
Be the green grass above me
With showers and dew drops wet,
And if thou wilt, remember,
And if thou wilt, forget.
I shall not see the shadows,
I shall not feel the rain;
I shall not hear the nightingale
Sing on, as if in pain;
And dreaming through the twilight
That doth not rise nor set,
Happy I may remember
And haply may forget.")

कहने की आवश्यकता नहीं कि क्रिस्टिना की कृतियों में कुमारीत्व की अमल-धवल पावनता, भोली सरलता और यत्किंचित् अल्हड़पन भी है, जिसमें विराग की धूमिल अरुणिमा यत्र-तत्र बिखरी हुई है। महादेवी के काव्य में नारीत्व का क्रंदन, असफल पत्नीत्व की खीझ और द्विविधाग्रस्त अभावजन्य उपराम है, जिसमें नारी-सुलभ समर्पण-भावना और जीवन की गुत्थी न सुलझने के कारण दुर्भेद्य सघनता व्याप्त हो गई है। क्रिस्टिना नियति के क्रूर थपेड़ों से मर्माहत हो वेदना, अविश्वास और अदृष्ट की आशंका में डूबी हुई विरह के दर्दीले गीत गाती है,

जिनमें हृदय की तड़पन, भावों की लड़खड़ाहट, आकुल-प्राणों की कसक और आंतरिक आवेगों का संघात है—महादेवी के भावोद्वेगों में मीठी कचोट होते हुए भी वचन-विदग्धता, अमूर्त्त व्यंजना और बिखरती, मचलती भावप्रवणता है जो हृदय की गहराई में उतरती चलती है जिसमें उठती-गिरती विपुल तरंगावलियों की-सी अविराम धड़कन सुन पड़ती है। इन सब विषमताओं के बावजूद इन दोनों के ही काव्य विषाद की हल्की, झीनी धूमिलता से आच्छन्न हैं, जो उत्तरोत्तर सघन होती जाती है और जिसके अतल में न जाने कितने अंतःस्वर अवाक् होकर उनके अंतर के मूक हाहाकार में एकाकार होने के लिए छटपटा रहे हैं।

26

महादेवी वर्मा और आलोचना-साहित्य की समस्याएँ

डाक्टर रामविलास शर्मा

['महादेवीजी अपने गीतों में 'देवी' के रूप में नहीं, एक 'मानवी' के रूप में दर्शन देती हैं। वे अपनी भाव-व्यंजना में इस धरती पर काम करने वाली मनुष्य नामक प्राणी ही नहीं हैं वरन् उसका एक भेद नारी भी हैं। उनका नारीत्व सामाजिक सीमाओं के अन्दर विकास के लिए पंख फड़फड़ाता है; उसकी यह व्याकुलता अनेक सांकेतिक रूपों में उनकी कविताओं में प्रकट होती है।

महादेवीजी की नारी-प्रकृति की एकसरस विशेषता उनका हठ है। उनके प्राण 'पागल' हैं तो हठीले भी हैं।

'अध्यात्मवादी' महादेवी का अभिमान देखने योग्य है जो निजत्व देने में असमर्थ होकर प्रिय से मिल नहीं सकतीं।

मिलन-मंदिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल 'गुंठन'
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिल-कण,
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं !'—]

श्रीमती महादेवी वर्मा के साहित्य पर इतना लिखा जा चुका है और उन्होंने स्वयं साहित्य की समस्याओं पर इतना लिखा है कि आज उनके सम्बन्ध में और कुछ लिखना आलोचना-साहित्य की समस्याओं का उल्लेख किए बिना सम्भव नहीं है। महादेवीजी छायावाद के मध्याह्न काल से और अपने जीवन के उषा-काल से साहित्य-रचना करती आई हैं। छायावाद और महादेवीजी के साहित्य में घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध की रूपरेखा क्या है, किस हद तक महादेवीजी छायावाद का प्रतिनिधित्व करती हैं और किस हद तक छायावाद उनके साहित्य से बल-संबल पा सका है या निर्बल हो गया है, यह आधुनिक आलोचना-साहित्य की नगण्य समस्या नहीं है। इस समस्या पर हिन्दी के गण्य-मान्य आलोचक एकमत हैं—ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में यहाँ एक-दो उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

छायावादी साहित्य और महादेवीजी की रचनाओं के परस्पर सम्बन्ध पर

प्रकाश डालते हुए नगेन्द्रजी कहते हैं :

"जैसा मैंने एक और स्थान पर भी कहा है, महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अंतर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम जो बाह्य-तृप्ति न पाकर अमांसल सौन्दर्य की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिंतन (अनुभूति नहीं), तितली के पंखों और फूलों की पंखड़ियों से चुराई हुई कला, और इन सबके ऊपर स्वप्न-सा पुरा हुआ एक वायवी वातावरण—ये सभी तत्त्व जिसमें घुले मिलते हैं, वह है महादेवी की कविता। महादेवी ने छायावाद को पढ़ा नहीं है, अनुभव किया है। अतएव साहित्य का विद्यार्थी उनकी विवेचना का आप्त वचन के समान ही आदर करेगा।" (विचार और अनुभूति; पृष्ठ 130)

इस धारणा के विपरीत श्री नंददुलारे वाजपेयी का विचार यह है :

"हिन्दी में महादेवीजी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्यकाल में हुआ था, किंतु आरम्भ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः एकदम रिक्त थीं। मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या होनी चाहिए। इस व्याख्या में आए 'सूक्ष्म' और 'व्यक्त' इन अर्थगम्भीर शब्दों को हम अच्छी तरह समझ लें। यदि वह सौन्दर्य सूक्ष्म नहीं है, साकार होकर स्वतंत्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अन्तर्गत नहीं ले सकेंगे।' ('यामा' का दार्शनिक आधार)।

नगेन्द्रजी और वाजपेयीजी की धाराओं का अंतर स्पष्ट है। नगेन्द्रजी को महादेवीजी के काव्य में छायावाद का शुद्ध रूप मिलता है; वाजपेयीजी को उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्रायः रिक्त दिखाई देती हैं।

इसे हम साधारण मतभेद कहकर टाल नहीं सकते।

वाजपेयीजी ने छायावाद की जो व्याख्या की है; उसके अनुसार अंग्रेज़ कवि स्कॉट और बायरन छायावाद के एक सीमांत पर दिखाई देते हैं तो वर्ड्सवर्थ भी छायावाद के दूसरे सीमांत पर ठहरा हुआ प्रकृत छायावादी नहीं मालूम होता। अंग्रेज़ी साहित्य में, वाजपेयीजी के अनुसार, प्रकृत छायावादी केवल शैले है जो 'प्राकृतिक सूक्ष्म सौन्दर्य-भावना का एकमात्र अधिष्ठाता' है (उपर्युक्त)। लेकिन वाजपेयीजी ने जिस कारण स्कॉट और बायरन को छायावाद के सीमान्त पर रखा है, उस पर विचार करने से शैले का भी आधे से ज्यादा साहित्य उसी सीमांत पर ठहरेगा।

बायरन और स्कॉट छायावाद के सीमान्त पर इसलिए हैं कि उनका सौन्दर्य सूक्ष्म नहीं है बल्कि 'साकार होकर स्वतन्त्र क्रियाशील है और किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है।' इस दृष्टि से शैले की अनेक कथाएँ और आख्यायिकाएँ भी छायावाद के सीमान्त पर ठहरेंगी।

अंग्रेज़ी साहित्य के इतिहासकार रोमांटिक साहित्य की परिधि इससे ज़्यादा विशद आँकते आए हैं। इतिहास ने रोमांटिक साहित्य की विशेषताएँ निश्चित कर दी हैं; अब यह माँग करना दुराग्रह होगा कि रोमांटिक-साहित्य हमारी धारणा के अनुसार यों होना चाहिए था।

अंग्रेज़ी के रोमाण्टिक साहित्य और हिन्दी के छायावादी साहित्य में महत्त्वपूर्ण भेद है। शैले और वर्ड्सवर्थ के रचनाकाल से पहले 16-17वीं सदी में शेक्सपियर, मिल्टन आदि सामन्ती विचारधारा के खिलाफ एक क्रान्ति कर चुके थे। 19वीं सदी के आरम्भ में औद्योगिक पूँजीवाद के प्रसार से मज़दूर-वर्ग का जीवन-संघर्ष तीव्र हो उठा था और उस समय की प्रगतिशील विचारधारा पूँजीवादी शोषण से टक्कर लेने लगी थी। रोमांटिक साहित्य में जहाँ पलायन है, वहाँ इस पूँजीवादी शोषण से संघर्ष न करने या उससे समझौता करने का फल है। हिन्दी का छायावादी साहित्य सीमान्त-विरोधी औद्योगिक क्रान्ति के बाद का साहित्य नहीं है। वह साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्ष काल का साहित्य है। उसमें सबसे सशक्त स्वर देश की स्वाधीनता और जनतन्त्र प्राप्त करने की आकांक्षा का स्वर है।

अंग्रेज़ी रोमांटिक-साहित्य के सबसे प्रगतिशील कवि शैले की विचारधारा अपना अग्रसर रूप मज़दूरों का आह्वान करते हुए प्रकट करती है कि वे पूँजीवादी सत्ता के बदले अपनी सत्ता स्थापित करें। 'मास्क ऑफ अनार्की' नाम की रचना में शैले कहता है :

"Rise like lions from you slumber,
In unvanquishable number,
Shake to earth your chains like dew,
Which in sleep had fallen on you,
Ye are many, they are few."

"नींद छोड़कर शेरों की तरह उठो; अजेय संख्या में उठो। नींद में जो ज़ंजीरें पहन ली थीं, उन्हें झटककर ओस-कणों की भाँति धरती पर गिरा दो। तुम बेशुमार हो; वे मुट्ठी भर हैं।")

शैले की चेतना समाजवाद की ओर उन्मुख थी जैसा कि मार्क्स ने शैले के बारे में लिखा था : 'वह जीवित रहता तो समाजवादी होता'।

हिन्दी के छायावादी कवियों में सबसे आगे बढ़ी हुई चेतना साम्राज्य-विरोधी सामन्त-विरोधी क्रान्ति की ओर उन्मुख है। निराला के 'बादल राग' में वह यों प्रकट हुई है :

"रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अङ्गना-अङ्ग से लिपटे भी

आतङ्क-अङ्क पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल !
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड़मात्र ही है उसका आधार,
ऐ जीवन के पारावार !"

अंग्रेजी रोमांटिक-साहित्य का एक सीमांत समाजवादी विचारधारा को छूता है तो दूसरा आदर्शवाद (Idealism) की विभिन्न धाराओं में डूबा हुआ है। हिन्दी के छायावादी साहित्य का एक सीमान्त साम्राज्य-विरोधी, सामन्त-विरोधी विचारधारा को छूता है तो दूसरी ओर सामन्तवाद का समर्थन करने वाली अनेक आदर्शवादी धाराओं में डूबा हुआ है। इनके अतिरिक्त छायावादी या रोमांटिक साहित्य के दूसरे सीमांत निर्धारित करना एक इतिहास-विरोधी कार्य होगा।

वाजपेयीजी ने अंग्रेजी के रोमांटिक-साहित्य और हिन्दी के छायावादी साहित्य के महत्त्वपूर्ण भेद का उल्लेख नहीं किया। उन्होंने जो सीमान्त निश्चित किए हैं, वे भी विज्ञान-सम्मत नहीं। ऐसी दशा में उनका यह संदेह अस्वाभाविक नहीं है : "मुझे आशा नहीं है कि छायावाद की मेरी यह व्याख्या निकट भविष्य में सर्वमान्य हो सकेगी।"

नगेन्द्रजी के लिए सीमान्तों का झगड़ा नहीं है। अंतर्मुखी अनुभूति, अमांसल सौन्दर्य, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिन्तन, पंखों और पंखड़ियों से चुराई हुई कला, वायवी वातावरण—ये महादेवीजी के काव्य की विशेषताएँ हैं।

ये विशेषताएँ किस तरह उत्पन्न हुईं, इस सम्बन्ध में नगेन्द्रजी लिखते हैं : "सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और मांस न ग्रहण कर सकने के कारण वह एक तो वांछित शक्ति का का संचय नहीं कर पायीं, दूसरे एकांत अंतर्मुखी हो गईं। इस प्रकार उसके आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है, इसको कैसे भुलाया जा सकता है ?"

अगर मानसिक दमन और अतृप्तियों से ऐसी कविता रची जा सके जो सुन्दर हो और साथ ही शुद्ध छायावादी भी, तो दमन और अतृप्तियों का स्वागत क्यों न किया जाए ?

अगर छायावादी कविता की विशेषताएँ मानसिक दमन और अतृप्तियों से उत्पन्न हुई हैं, तो छायावादी आलोचना की विशेषताओं का क्या कोई दूसरा स्रोत है ?

नगेन्द्रजी पहले तो यह मानते हैं कि महादेवीजी की कविता के आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है। फिर उनकी धारणा यह भी है कि महादेवीजी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है। तीसरे इस अतृप्तिवाद को और विराट् रूप देते हुए वह समस्त काव्य और ललित-कलाओं को उसी के अन्दर समेट लेते हैं। अतृप्त काम-वासना और साहित्य के सम्बन्ध में उनकी उक्ति है :

"और वास्तव में सभी ललित-कलाओं के—विशेषतः काव्य के और उससे भी अधिक प्रणयकाव्य के मूल्य में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने में आपत्ति के लिए स्थान नहीं है।" ('दीपशिखा')

इस तरह नगेन्द्रजी के लिए न सिर्फ 'दीपशिखा', न सिर्फ महादेवीजी का साहित्य, न सिर्फ छायावादी काव्य, वरन् तमाम ललित-कलाएँ और समूचा प्रणय-काव्य अतृप्त काम प्रेरणा से उत्पन्न होता है।

यूरोप में एक वर्ग ऐसे अवकाशभोगी लोगों का है जो जीवन में कर्म करने से विमुख है। उसका अधिकार दूसरों के कर्मफल पर है; कर्म करने का उत्तर-दायित्व वह अपने लिए नहीं मानता। इस वर्ग ने ऐसा जीवन-दर्शन उत्पन्न किया है जिसके अनुसार मनुष्य की तमाम सामाजिक और साहित्यिक क्रियाएँ काम-वासना से प्रेरित दिखाई देती हैं। यह वर्ग सामाजिक विकास की शक्तियों और उत्पादन करने वाले श्रमिक वर्ग का ऐसा वैरी बन गया है, श्रम से वह इतनी दूर जा पड़ा है कि सिवाय काम-वासना और उसकी तृप्ति के, उसके लिए जीवन में कोई महान् उद्देश्य नहीं रह गया। हिन्दुस्तान में साम्राज्यवाद के समर्थक वर्गों द्वारा पोषित लेखक यूरोप की इस पतित पूँजीवादी विचारधारा को यहाँ के सामन्ती नायिकाभेद से मिला देते हैं और कहते हैं : "देखिए, दोनों में कितना गहन मनोवि-ज्ञान है ? अतृप्त कामवासना से सत्यं, शिवं, सुन्दरं सुलभ होते हैं।" सब तज हरि भज ! अतृप्ति के बिना साहित्य का निर्माण असम्भव है !

इस व्याख्या में लगे हाथ एक और लाभ यह है कि वह शाश्वत है और साम्राज्यवाद, सामंतवाद—इस तरह के किसी अशाश्वत वाद-विवाद के झमेले में पड़ने की ज़रूरत भी नहीं रहती।

निस्संदेह अतृप्ति की भावना छायावादी कविता में मिलती है और वह महादेवीजी की रचनाओं में भी विद्यमान है लेकिन क्या छायावादी काव्य की मूल-प्रेरणा वही है ? यदि मूल प्रेरणा वही हो और छायावादी कविता वायवी वातावरण के स्वप्न बुनने के अलावा और कुछ न दे तो वह अवकाशभोगी वर्गों के अलावा कामकाजी जनता के लिए ज़्यादा लाभदायक सिद्ध न होगी। क्या महादेवीजी की समूची कविता इसी तरह की है ?

महादेवीजी के काव्य-साहित्य का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी आलोचकों ने साधारणतः उसके पीड़ावादी, पलायनवादी तत्वों पर दृष्टि केन्द्रित की है। कोई इन

तत्वों को शाश्वत काव्य-वस्तु सिद्ध करता है, कोई उन्हें लोकमंगल के अनुकूल बतलाता है, कोई उन्हें समाज-विरोधी कहता है। उन तत्वों के मूल्यांकन में अंतर है, लेकिन इस बारे में सभी एकमत मालूम होते हैं कि महादेवीजी की काव्यवस्तु का निर्माण इन्हीं पीड़ावादी, पलायनवादी तत्वों से हुआ है।

श्री विनयमोहन शर्मा महादेवीजी की अंतर्मुखी वृत्ति का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :

"छायावाद ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन। प्रगतिवाद (साम्यवाद) के नारे से प्रभावित हो जब छायावाद के मान्य कवियों ने अपनी आँखें पोंछकर भीतर से बाहर झाँकना प्रारम्भ कर दिया और अनन्त की ओर से दृष्टि फेरकर मार्क्स पर उसे केन्द्रित कर दिया तब भी महादेवी की आँखें भीगती रहीं, हृदय सिहरन भरता रहा, ओठों की ओट में आहें सोती रहीं और मन 'किसी निष्ठुर' की आरती उतारता ही रहा। दूसरे शब्दों में वे अखंड भाव से अंतर्मुखी बनी रहीं।" ('नई धारा', वर्ष 2, अंक 1)

विनयमोहनजी के अनुसार महादेवीजी की काव्यवस्तु का निर्माण भीगी आँखों, सिहरन भरते हुए हृदय, सोती हुई आहों और निष्ठुर की आरती से हुआ है। दूसरे शब्दों में महादेवी-काव्य का मतलब है—पीड़ा और पलायन। इसके सिवा वहाँ दूसरी वस्तु नहीं है।

श्री देवराज का मत है : "महादेवीजी ने अपनी कविता में कहीं भी युग-जीवन अथवा स्वयं जीवन के सम्बन्ध में विचार प्रकट करने की चेष्टा नहीं की है, उनके आलोचक के लिए यह बड़े संतोष की बात है।" (साहित्य-चिन्ता, पृष्ठ 202)

इसका यही अर्थ हो सकता है कि महादेवीजी की कविता जीवन और युग-जीवन दोनों से परे है। ऐसी हालत में तो वह मृत्यु का प्रतिबिम्ब होगी या ऐसे किसी तत्त्व का जो न जीवन है न मृत्यु!

श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' महादेवीजी के रहस्यवाद को जीवन से परे नहीं मानते। दोनों का परस्पर सम्बन्ध दिखलाते हुए वे कहते हैं : "महादेवी वर्मा ने अपनी सारी मनोभावनाओं को एक अप्राप्तव्य आराध्य के उपलक्ष्य से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। अतृप्त इच्छाएँ ही प्रलुब्ध होती हैं। इतना होने पर भी जगत् और जीवन के सम्बन्ध को हम विध्वंस नहीं कर सकते। उसी के अन्तर्गत रहकर हम जीवन में उत्तीर्ण हो सकते हैं और वस्तुतः जीवन की यही सच्ची साधना है। क्षुद्र से विराट् तथा नश्वर से शाश्वत होने के लिए अंश में ही पूर्णता तथा सीमा में ही असीमता उपलब्ध करनी पड़ेगी। अपनी सारी चेतना के साथ देखने से बद्ध भी अबद्ध मालूम पड़ता है। जीवन के विषाद तथा अवसाद चेतना की अंतर्ज्योति से स्वतः दीप्तिमय होकर आनन्द तथा उल्लास में परिवर्तित हो जाते हैं।" (जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, पृष्ठ 321-22)

सुधांशुजी के अनुसार महादेवीजी का आराध्य अप्राप्तव्य है। आराध्य अप्राप्तव्य तभी हो सकता है जब वह जीवन से परे हो। इच्छाएँ अतृप्त हैं; इसलिए प्रलुब्ध हैं। शायद अतृप्त इच्छाएँ कभी भी तृप्त नहीं हो सकतीं, क्योंकि आराध्य अप्राप्तव्य है। सारी 'चेतना' के साथ देखने से बद्ध भी अबद्ध मालूम पड़ेगा। इस प्रकार महादेवीजी की काव्यवस्तु अबद्ध और अप्राप्तव्य की अतृप्तिजन्य साधना ठहरती है।

श्री अमृतराय महादेवीजी के काव्य का परिचय इस प्रकार देते हैं :

'महादेवीजी ने स्वयं अपनी कविता का सबके अच्छा परिचय दिया है।

'मैं नीरभरी दुख की बदली'

उनकी इसी एक पंक्ति को मन में रखे हुए आप उनके सम्पूर्ण काव्य-साहित्य का अवलोकन कर डालिए और तब आप तुरन्त जान लेंगे कि यही भाव शिराओं में बहने वाले रक्त के समान उसमें सर्वत्र प्रवाहित हो रहा है।" ('नया-साहित्य', भाग 4)

महादेवीजी की काव्य-वस्तु का निरूपण करने में श्री अमृतराय और दूसरे आलोचकों में कोई अन्तर नहीं है। अमृतरायजी भी और सभी आलोचकों की तरह उस काव्य-वस्तु को पीड़ावादी पलायनवादी तत्त्वों से निर्मित मानते हैं। अन्तर है, उन तत्त्वों के मूल्यांकन और उनके विवेचन में। लेकिन यदि महादेवी वर्मा के काव्य-साहित्य में कहीं कोई सामन्त-विरोधी, जनवादी, स्वस्थ, जीवन के पोषक तत्त्व आए हैं, तो अमृतरायजी उतनी ही दृढ़ता से उन्हें अस्वीकार करते हैं जितनी दृढ़ता से नगेन्द्रजी या देवराजजी।

एक दूसरे लेख में वह कहते हैं : 'महादेवी वर्मा की कविता की पंक्ति-पंक्ति आँसुओं से गीली है, यहाँ तक कि उनका एक 'आँसुओं का देश' ही है, सबसे अलग। उनकी सारी कविताओं को एक में पिरोने वाली लड़ी आँसुओं की लड़ी ही हो सकती है। उन्हें आँसुओं से मोह है और उनसे वे अपना सिंगार करती हैं क्योंकि उन्हें अपनी व्यथा से मोह है।' ('नई समीक्षा', पृष्ठ 147)

एक बार यह निश्चय कर लेने पर कि महादेवीजी का काव्य पीड़ावादी, पलायनवादी तत्त्वों से ही निर्मित है, आलोचक इसका विश्लेषण आरम्भ करते हैं कि ये तत्त्व उनके काव्य में क्यों मौजूद हैं। नगेन्द्रजी का मत हम ऊपर देख चुके हैं जिसके अनुसार ये तत्त्व अतृप्त काम वासना का फल है। कुछ लोग अतृप्ति को मानते हुए उसे अध्यात्म-चिन्तन अथवा आध्यात्मिक अनुभूति से जोड़ देते हैं। जो लोग काव्य को सामाजिक परिस्थितियों से परे मानते हैं, वे स्वभावतः इस पलायन का कारण सामाजिक सम्बन्धों में न देखकर कवयित्री के व्यक्तिगत जीवन में ढूंढ़ते हैं या उनके व्यक्तिगत जीवन को ही आध्यात्मिक स्वर पर प्रतिष्ठित मान लेते हैं।

श्री गंगाप्रसाद पांडेय उनके व्यक्तित्व के बारे में लिखते हैं: "महादेवीजी का व्यक्तित्व आध्यात्मिक है इसमें सन्देह नहीं।" और "महादेवीजी के व्यक्तित्व से तुलना करने के लिए हिमालय ही सबसे अधिक उपयुक्त भी जान पड़ता है। उनके व्यक्तित्व का वही उन्नत और दिव्य रूप, वही विराट् और विशाल-प्रसार, वही अमल-धवल तथा अचल-अटल धीरता-गम्भीरता, वही करुणा एवं तरलता और सबसे बढ़कर वही सुखकर शुभ्र हास। यही तो महादेवी हैं।" ('आजकल' जुलाई, 1951)

इसके विपरीत 'सुधांशु' जी का मत है: "महादेवी वर्मा के जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोक-विमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है। जिसके अनुसंधान में कभी-तृप्ति नहीं।'

(जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, पृष्ठ 320)

और नगेन्द्रजी का विचार है: "महादेवीजी का एकाकी जीवन उनके काव्य में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। किसी अभाव ने ही उनके जीवन को एकाकिनी बरसात बना दिया है, सुख और दुलार के आधिक्य ने नहीं।" ('दीपशिखा')

एकाकीपन की चर्चा करते हुए श्री अमृतराय 'दीपशिखा' के बारे में लिखते हैं: "इस तरह पुस्तक की एक टेक है—एकाकीपन और दूसरी एक जिच। किसी भी साहित्यिक रचना के दो पक्ष होते हैं—एक सामाजिक और दूसरा वैयक्तिक और इसी नाते प्रकारांतर से सामाजिक। पहले पक्ष के विवेचन के लिए फ्रायडीय प्रणाली का उपयोग आलोचना के क्षेत्र में होता है। इस कविता के एक सुसम्बद्ध फ्रायडीय विवेचन के लिए पुस्तक में अकूत सामग्री मिलेगी।"

('नई समीक्षा', पृष्ठ 147)

अमृतरायजी कविता के दो पक्ष करते हैं—"सामाजिक और वैयक्तिक। वैयक्तिक पक्ष 'प्रकारांतर से' सामाजिक ठहरता है। पहले पक्ष के विवेचन के लिए (उनका मतलब वैयक्तिक पक्ष के विवेचन से है) आलोचना क्षेत्र में फ्रायडीय प्रणाली का उपयोग होता है। यहाँ पर यह कह देना ज़रूरी है कि फ्रायडीय प्रणाली के अलावा भी व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व की परख की वैज्ञानिक पद्धतियाँ मौजूद हैं और जो लोग फ्रायडीय प्रणाली का उपयोग करके व्यक्ति की समस्याओं को परखते हैं, वे कम-से-कम साहित्य के क्षेत्र में क्रांति-विरोधी साबित हुए हैं।"

अमृतरायजी एकाकीपन और जिच का जिक्र करने के बाद इनका सामाजिक विश्लेषण इस तरह करते हैं:

"अब हम एकाकीपन के सामाजिक पक्ष पर विचार करेंगे।—

"पंजीवाद व्यक्ति और व्यक्ति के बीच के सहज मानवोचित रिश्ते को हटाकर उसके स्थान पर एक ऐसे सम्बन्ध की प्रतिष्ठा करता है जिसमें मनुष्य एक पण्य-वस्तु के सिवा और कुछ नहीं रह जाता और इस प्रकार मानव और मानव के बीच का सम्बन्ध एक नये बिन्दु पर पहुँच जाता है जहाँ मानव-सम्बन्धों में फिर किसी

प्रकार का रस नहीं रह जाता। इस तरह एक ऐसी सामाजिक परिस्थिति पैदा होती है जिससे सहृदय व्यक्तियों के मन को ठेस लगना स्वाभाविक है। यह ठेस ही उन्हें मानसिक इच्छापूर्ति (Wish fulfilment) का मार्ग ढूँढ़ने पर विवश करती है। श्रीमती महादेवी वर्मा का वेदनामूलक रहस्यवाद भी ऐसी ही मानसिक इच्छापूर्ति है।" ('नई समीक्षा', पृष्ठ 148)

ये वाक्य पढ़ने पर मन में कई प्रश्न उठते हैं। पूँजीवाद मनुष्यों के सहज मानवोचित रिश्तों को हटाता है। पूँजीवाद से पहले के सामन्ती सम्बन्ध क्या सहज मानवोचित रिश्ते हैं?

पूँजीवादी सम्बन्धों से उत्पन्न होने वाली सामाजिक परिस्थिति में सहृदय व्यक्तियों के मन को स्वाभाविक रूप से ठेस लगती है और ठेस लगने पर वे मानसिक इच्छापूर्ति का मार्ग ढूँढ़ने पर 'विवश' होते हैं। पूँजीवाद जिस पलायनवादी साहित्य का नशा जन-साधारण में बाँटता है, क्या वह ठेस और विवशता का साहित्य है? यह साहित्य व्यक्ति की मानसिक इच्छापूर्ति का साहित्य है या एक वर्ग की भौतिक इच्छाओं—मजदूर वर्ग को गुलाम बना रखने की इच्छाओं—का साहित्य है?

यदि महादेवीजी का साहित्य यूरोप के मानसिक इच्छापूर्ति वाले साहित्य जैसा है तो क्या हिन्दुस्तान में वही परिस्थितियाँ मौजूद हैं जो यूरोप में हैं? अथवा उन परिस्थितियों के अभाव में क्या यह यूरोप के साहित्य का प्रभावमात्र है?

ये प्रश्न करते ही मालूम हो जाता है कि श्री अमृतराय के विश्लेषण में शब्दावली समाज-शास्त्रीय है; उसका तत्त्व दरअसल कोई ठोस विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करता।

उसी निबन्ध में वे आगे कहते हैं:

"जैसा हमने अभी ऊपर देखा कि पूँजीवादी सामाजिक प्रणाली में हर व्यक्ति दूसरे को मनुष्य नहीं बल्कि एक वस्तु समझता है जिसका वह क्रय-विक्रय कर सकता है, क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन-प्रणाली में हर व्यक्ति को यह बुनियादी आज़ादी होती है कि वह अपनी उत्पादक-शक्ति को मोल पर चढ़ाए। इस तरह सामाजिक बंधन रोज-बरोज ढीले होते जाते हैं क्योंकि वे अब व्यक्ति और व्यक्ति के सम्बन्ध नहीं हैं, और उनका आधार भी सहयोग न होकर होड़ है। होड़ पर टिकने वाले सम्बन्ध स्थायी नहीं हो सकते। इसी आत्मीयता की कमी के कारण कल्पना-विलासी व्यक्ति को स्वनिर्मित आत्मीयों का पल्ला पकड़ना पड़ता है। महादेवीजी ने व्यथा में ऐसा आत्मीय पाया है।" (उक्त, पृष्ठ 148-49)

यदि पूँजीवादी प्रणाली में हर व्यक्ति दूसरे को पण्य-वस्तु समझे जिसका वह क्रय-विक्रय कर सके तो ऐसे समाज में हर व्यक्ति एक साथ ही पूँजीपति भी होगा और मजदूर भी। वास्तव में इस प्रणाली के अन्तर्गत एक 'वर्ग' खरीदने वालों का होता है और दूसरा 'वर्ग' खरीदे जाने वालों का होता है। इसीलिए पूँजीवादी प्रणाली जहाँ पूँजीपतियों में होड़, एक-दूसरे को हड़पने और विनाश की ओर बढ़ने

की वृत्ति उत्पन्न करती है, वहाँ वह मज़दूरों में—खरीदे जानेवालों में—ऐसी जबर्दस्त आत्मीयता उत्पन्न करती है जिनकी मिसाल पहले के इतिहास में नहीं मिलती। श्री अमृतराय ने अपने अवैज्ञानिक विश्लेषण से वर्गों के सम्बन्ध को मनुष्य-मात्र का सम्बन्ध बना दिया है और मजदूर वर्ग की आत्मीयता, परस्पर भाईचारे को भुला दिया है। कहना न होगा कि यह समूचा विश्लेषण अपने में सही भी हो तो भी हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में बहुत ही आंशिक रूप से वह लागू हो सकेगा।

इसमें संदेह नहीं कि महादेवीजी के काव्य में पीड़ावादी पलायनवादी तत्त्व मौज़ूद हैं, लेकिन उनकी उत्पत्ति और स्थिति का सही कारण तब हम अच्छी तरह जान सकेंगे जब हम इनके विरोधी तत्त्वों पर दृष्टिपात करेंगे और दोनों के परस्पर सम्बन्ध को जानने की कोशिश करेंगे।

महादेवीजी और उनकी कविता का परिचय 'नीर भरी दुःख की बदली' या 'एकाकिनी बरसात' कहकर नहीं दिया जा सकता। उन्हीं के शब्दों में उनका परिचय देना हो तो मैं यह पंक्ति उद्धृत करूँगा :

"रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।"

निराला को छोड़कर किसी भी छायावादी कवि में जीवन की इतनी चाह नहीं है, जितनी महादेवी में। निराशावाद की अँधेरी रात में जीवन-प्रभात की यह चाह महादेवी की रचनाओं में बार-बार दीप्त हो उठती है। और जितना ही यह अँधेरा घना होता है, उतनी ही यह चाह और भी तीव्र हो जाती है। महादेवीजी ने अलंकृत शब्दावली और मनोहर रूपकों में जीवन और सौन्दर्य की इस आकांक्षा को बार-बार व्यक्त किया है :

"कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज,
सुभग! हँस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही-सा आज,
बीती रजनि प्यारे जाग!"

क्या जीवन से पराङ्मुख कोई भी व्यक्ति ऐसी सुन्दर पंक्तियाँ लिख सकता है? क्या स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहने से उस ठोस जीवन-आकांक्षा—मानवीय-प्रेम, मानवीय सौन्दर्य की आकांक्षा—की व्याख्या हो जाती है जो इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है?

महादेवीजी अपने गीतों में 'देवी' के रूप में नहीं, एक 'मानवी' के रूप में दर्शन देती हैं। वे अपनी भाव-व्यंजना में इस धरती पर काम करनेवाली मनुष्य नामक प्राणी ही नहीं हैं, वरन् उसका एक भेद नारी भी हैं। उनका नारीत्व सामाजिक-सीमाओं के अन्दर विकास के लिए पंख फड़फड़ाता है। उसकी यह व्याकुलता अनेक सांकेतिक रूपों में उनकी कविताओं में प्रकट होती है। नारीत्व के इन तत्वों को निकाल दीजिए, उनका काव्य-साहित्य उतना ही नीरस और निर्जीव हो जाएगा जैसा उन कवियों का जो पुरुष होकर रमणी-कंठ की नकल करते हुए

कहते हैं :

"लाई हूँ फूलों का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल।"

महादेवीजी की नारी-प्रकृति की एक सरस विशेषता उनका हठ है। उनके प्राण 'पागल' हैं तो हठीले भी हैं :

"उन्हीं तारक फूलों में देव !
गूँथना मेरे पागल प्राण—
हठीले मेरे छोटे प्राण !"

'अध्यात्मवादी' महादेवी का अभिमान देखने योग्य है जो निजत्व देने में असमर्थ होकर प्रिय से मिल नहीं सकतीं।

"मिलन-मंदिर में उठा दूँ जो सुमुख से सजल 'गुंठन',
मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में सलिलकण,
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं !"

जीवन से पराङ्मुख कहलाने वाली इस कवयित्री की शृंगार-भावना अद्भुत है। 'कुमारसम्भव' के रचयिता ने सुन्दरियों के चरण-स्पर्श की राह न देखकर स्वयं खिलनेवाले जिस अशोक का वर्णन किया था, मानो उसी को याद करके महादेवीजी लिखती हैं :

'रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग,
मेरे मंडन को आज मधुर ला रजनी गंधा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से
अलि दे मेरी कबरी सँवार !"

इतनी शृंगार प्रियता, फिर भी असफलता ! एक बार उनकी समझ में नहीं आता कि शृंगार में कौन-सी त्रुटि रह गई जिससे वह विफल मनोरथ रहीं :

"क्यों आज रिझा पाया उसको
मेरा अभिनव शृंगार नहीं ?"

और जब उन्हें भासित होता है कि मिलन-क्षण आ पहुँचा, तब उनकी विह्वलता और भाव-व्यंजना नारी-सुलभ शंका और उत्सुकता से चित्रमय हो उठती है :

"नित सुनहली साँझ के पद से लिपट आता अँधेरा;
पुलक-पंखी विरह पर उड़ आ रहा है मिलन मेरा;
कौन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन !"

महादेवीजी की कविता में नारी-सुलभ शृंगार-भावना ही नहीं है, प्रेम की विह्वलता और कष्ट सहने का साहस भी है। वह अपने एकाकीपन को चुनौती

देते हुए कहती हैं :

"जिसको पथशूलों का भय हो
वह खोजे नित निर्जर गह्वर;
प्रिय के संदेशों के वाहक
मैं सुख-दुख भेटूँगी भुजभर;
मेरी लघु पलकों से छलकी
इस कण-कण में ममता बिखरी !"

जो अपनी भुजाओं में सुख-दुःख भेंटने के लिए सामान रूप से तत्पर हो, उसके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी हर पंक्ति आँसुओं से गीली है। कभी-कभी दुःख और सुख का अनुपात ही बदल जाता है और दुःख घेरनेवाला न बनकर स्वयं सुख से घिर जाता है :

"सुख की परिधि सुनहली घेरे
दुख को चारों ओर
भेंट रहा मृदु स्वप्नों से
जीवन का सत्य कठोर !"

"चातक के प्यासे स्वर में सौ-सौ मधु रचते रास !"

कहने वाले कह सकते हैं कि यह सब सौन्दर्य और जीवन की कल्पना है; वास्तव में इस कल्पना का स्रोत तो अतृप्ति ही है। यह भी एक तरह की मानसिक इच्छापूर्ति है जो कुंठित व्यक्तित्व से उत्पन्न हुई है।

यदि जीवन और सौन्दर्य की चाह प्रकट करने वाली कविता दमित इच्छाओं के ही कारण हो तो जितने भी जीवन और सौन्दर्य के कवि हैं वे सब दमित इच्छाओं के शिकार साबित हों और जितने भी मृत्यु और कुरूपता के कवि हैं, वे सब तृप्त-इच्छाओं वाले समझे जाएँ।

महादेवीजी के व्यक्तित्व में नारी-हठ के साथ कहीं पत्थर-जैसी दृढ़ता भी छिपी है, यह उनके कई गीतों से स्पष्ट हो जाता है। उनके अंदर यह क्षमता है कि वह पीड़ा और आँसुओं के व्यापार को ही समाप्त न कर दें, बल्कि तितलियों के परों की रंगीनी और मधुप की गुनगुन छोड़कर वीर-नारी के समान दर्प के साथ चुनौती दें :

"बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले ?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !
जाग तुझको दूर जाना !"

क्या यह कोरी डींग है ? क्या यह भी एक तरह की सांकेतिक शब्दावली है

जिसका सार-तत्त्व पलायन है और बाहरी अलंकार ही संघर्ष के हैं ? क्या महादेवी वर्मा को जीवन में कठिनाइयों का, विशेषकर सामाजिक विरोध और अपवाद का सामना नहीं करना पड़ा ? मेरी समझ में ऐसी बात नहीं है। महादेवीजी की कर्मठता, समाज-सुधार और जनसम्पर्क की सीमाएँ हैं लेकिन इनका एकांत अभाव हो, ऐसी बात नहीं है। 'शृंखला की कड़ियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' आदि पुस्तकें इस बात का प्रमाण हैं। महादेवीजी का कवि और गद्य-कार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, वे दो बिखरी हुई विरोधी इकाइयाँ नहीं हैं।

महादेवीजी के व्यक्तित्व को अध्यात्मवादी मानने वाले उनके सबसे अधिक प्रशंसक गंगाप्रसादजी पांडेय की यह भौतिकवादी बात सही मालूम होती है :

"परित्यक्त तथा उपेक्षित नारियों के पीत-क्रीतमुख भारतीय समाज में, काले हिंदू लॉ के समक्ष उन्होंने स्व-स्वीकृति के बिना विवाह को, डंके की चोट के साथ समाज तथा संसार के कटुतम व्यंग-प्रहार सहते हुए भी चुनौती देकर ही अपने जीवन क्रम की नींव धरी है। उन्होंने जो उचित समझा सो किया; हठ के साथ किया। संसार का कोई भी प्रलोभन या भय उससे उन्हें विमुख नहीं कर सकता।" ('आजकल', जुलाई, 51)

महादेवीजी की अनेक रचनाओं से उनके सम्बन्ध में पांडेयजी की यह धारणा पुष्ट होती है। उसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। उनके व्यक्तित्व के बारे में इससे भिन्न एक पराजित नारी की कल्पना विशेष आधार पर टिकी नहीं जान पड़ती।

फिर क्या कारण है कि उनकी रचनाओं में पीड़ा का इतना बाहुल्य है, वे छायावाद की परिधि लाँघकर नये साहित्यिक और सामाजिक आन्दोलनों से घनिष्ठ सम्बन्ध कायम नहीं कर सकीं ?

इसका कारण यह है कि संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण विज्ञान-सम्मत नहीं है और उनके मनोबल और कर्म-सम्बन्धी इच्छा शक्ति की अपनी सीमाएँ हैं। इस पर कुछ और कहने के पहले यहाँ यह प्रश्न करना अनुचित न होगा कि अधिकांश आलोचकों ने महादेवीजी के साहित्य में पीड़ावाद ही क्यों देखा है और उसे बढ़ा-चढ़ाकर अध्यात्मवाद का रूप क्यों दिया है ? आज के भारतीय-समाज में नारी परतंत्र है, यह कहने की बात नहीं है। उसकी परतंत्रता का कारण सामंती संबंधों के अवशेष और समाज-संचालकों के सामंती संस्कार हैं। नारी की पराधीनता को यदि पीड़ावाद का रूप दे दिया जाए तो इससे सामंती बंधनों और सामंती संस्कारों की रक्षा होती है। नारी की दासता और परवशता के सहारे जिस 'अध्यात्मवाद' की रचना हुई है, वह ढह पड़े अगर नारी इन सामंती बन्धनों को तोड़ने के लिए कटिबद्ध हो जाय। आज हिन्दुस्तान में सामन्ती अवशेष साम्राज्यवादी हितों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं; इसलिए नारी की स्वाधीनता का प्रश्न भारतीय जनसाधारण की स्वाधीनता की समस्या का ही एक अंग है। इसलिए जो लोग

सेक्स में क्रान्ति की बातें करते हैं, वे इस समस्या को सुलझाने के बदले और उलझाते हैं और सामंती हितों को पुष्ट करते। भारतीय नारी सदियों की सामंती दासता से तभी मुक्त हो सकेगी जब वह शेष जनता के साथ साम्राज्य-विरोधी, सामंत-विरोधी, स्वाधीनता आन्दोलन में आगे बढ़कर हिस्सा लेगी। इससे इतर मार्ग से उसकी मुक्ति सम्भव नहीं है।

सामन्ती सम्बन्धों की परिधि में पुरुष का एक अपना निहित स्वार्थ होता है। मज़दूर वर्ग से बाहर अन्य वर्गों का पुरुष—जिनमें नारी स्वतन्त्र श्रमिक नहीं है—सामंती-सम्राज्यवादी बंधनों से पीड़ित होते हुए भी स्वयं नारी का स्वामी बनकर उसके श्रम का फल आत्मसात कर लेता है। इसीलिए ऐसे लेखक, जो सामन्त-विरोधी सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों से दूर हैं, स्वभावतः पीड़ावाद के समर्थक बन जाते हैं। यही कारण है कि इस पीड़ावाद के खिलाफ जहाँ किसी नारी की रचनाओं में प्रेम, सौन्दर्य, जीवन और विद्रोह के तत्त्व 'उभर' आते हैं, वे एक बार उन्हें देखकर भी नहीं देखते।

यह आकस्मिक बात नहीं है कि जहाँ प्रायः सभी पुरुष आलोचकों ने महादेवी जी के काव्य में पीड़ावादी-पलायनवादी तत्त्वों को ही देखा है—उनका नामकरण भले ही भिन्न-भिन्न हो—वहाँ एक स्त्री-आलोचिका ने उसके द्वंद्व को—परस्पर-विरोधी भावधाराओं के संगठन को—बड़ी खूबी से निर्दिष्ट किया है। अंग्रेज़ कवयित्री क्रिस्टिना रोज्ज़ेटी और महादेवीजी की तुलना करते हुए श्री शचीरानी गुर्टू अपनी पुस्तक 'साहित्य-दर्शन' में लिखती हैं :

"एक ओर वैराग्य-मिश्रित हल्की प्रतिध्वनि उठती है, दूसरी ओर क्रूर नियति के प्रति विवशता का क्रंदन। कहीं प्रेम-शृंखलाओं में जकड़े मनुष्य की-सी बाध्यता हैं, कहीं दारुण दुःख और क्लेशों से विरत होकर अंतश्चेतना की विश्वासमय निर्बंध गति। उनके हृदय में व्यथा की घटाटोप सघनता है, जिसे वे अपनी आंतरिक स्फूर्ति और उद्दीप्त आत्मचेतना से विच्छिन्न करके अचित्य आलोक से भरना चाहती हैं। कभी दीन-हीन और खोई-सी वेदना में डूब जाती हैं—कभी गर्वीले स्वाभिमान से सजग होकर वे लौकिक प्रेम की अवज्ञा करती हुई अलौकिक भाव जगत में पैठने का प्रयास करती हैं।" (पृष्ठ 247)

इस द्वंद्व से निकलने का एक ही मार्ग है—भारत में सामन्ती अवशेषों और साम्राज्यवादी हितों को समाप्त करना। इस मार्ग की तरफ बढ़ने में उनका वह दृष्टिकोण बाधक होता है जिस पर बौद्ध दर्शन, गांधीवाद और अन्य ऐसी विचार-धाराओं का प्रभाव है जो सामन्तवाद से समझौता करना सिखाती हैं।

महादेवीजी में जनसाधारण के प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही नहीं है, उन्हें पीड़ित जनता से हार्दिक सहानुभूति है। पंतजी 'ग्राम्या' में बौद्धिक सहानुभूति की रेखा तक आकर वापस लौट गए। महादेवीजी अपने गद्य में इस ओर उनसे कहीं अधिक आगे बढ़ी हैं। छायावादी कवियों में केवल 'चतुरी चमार' और

'बिल्लेसुर बकरिहा' का रचयिता निराला उनसे इस बात में आगे है। महादेवी जी की यह सहानुभूति बड़ी मूल्यवान है। उसके बल पर वे समाज में पीड़ित जनों के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र दे सकी हैं। फिर भी इस सहानुभूति की सीमाओं को न पहचानना और नारी-समस्या के प्रति उनके दृष्टिकोण की लेनिन के दृष्टिकोण से तुलना करना अपने को और दूसरों को धोखा देना है। (देखिए, श्री, अमृतराय का लेख—'गद्यकार महादेवी और नारी-समस्या', नया साहित्य, भाग 4)। लेनिन ने नारी समस्या को हल करने में सोवियत सफलता का रहस्य एक वाक्य में यों बतलाया था—"रूस में हमें स्त्री और पुरुष की समता स्थापित करने में सफलता केवल इसलिए मिली कि 7 नवम्बर, 1917 को हमारे यहाँ मज़दूरों का राज्य स्थापित हुआ।" (उप०) महादेवीजी—और उनके साथ अमृतरायजी भी अपने लेख में—इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे कि भारत में नवीन जनवादी प्रजातन्त्र कायम हुए बिना नारी समस्या हल नहीं हो सकती।

महादेवीजी छायावाद की प्रतिनिधि कवि हैं। उनमें छायावाद का निराशा-वादी पलायनवादी पक्ष है तो जीवन और सौन्दर्य की आकांक्षा का स्वस्थ मानव-वादी पक्ष भी है। उनके अन्दर एक विद्रोही आत्मा सोती है जो दृष्टिकोण और मनोबल की सीमाओं के कारण अपना पूरा चमत्कार नहीं दिखा सकी। उन्हें जनता से हार्दिक सहानुभूति है और वे उससे सम्पर्क स्थापित करती रही हैं—यह उनका सबसे बड़ा सम्बल है। जिस दिन यह सहानुभूति सक्रिय रूप लेगी, उनके द्वंद्व का भी उस दिन अंत हो जाएगा। महादेवीजी अपने साहित्यिक रचनाकाल में मध्याह्न वेला तक पहुँच गई हैं। यदि वे पंतजी की तरह पीछे कदम हटाकर अंतश्चेतनावाद की तरफ लौट चलती हैं, तो उनके कृतित्व का अंत इस तरह होगा जिससे भविष्य में नारी-जाति क्षोभ के साथ उनका स्मरण करेगी। यदि वे अपनी सहानुभूति को तर्कसंगत परिणाम तक ले जाती हैं और सक्रिय रूप से नारी स्वाधीनता और जन-साधारण की स्वाधीनता के आन्दोलन के साथ आगे बढ़ती हैं, तो उनकी वाणी सतेज होकर वैसे ही मुखर हो उठेगी जैसे 'वंगदर्शन' की भूमिका में या 'सांध्य-गीत' की उन अनुपम पंक्तियों में ('जाग तुझको दूर जाना' आदि)। महादेवीजी का भावी उज्ज्वल कृतित्व उन्हीं के हाथ है। उनकी काव्य-साधना से भारत-भाग्य काँटों की सेज पर सोते हुए गुलाब की तरह जागे, आलोचक यही मंगलकामना कर सकता है।

"कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज,
सुभग! हँस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज,
बीती रजनि प्यारे जाग?"

●